विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—५ । अगस्त-सितम्बर—१९८६ । अंक—८-९

रामकृष्ण-संघ शताब्दी अंक

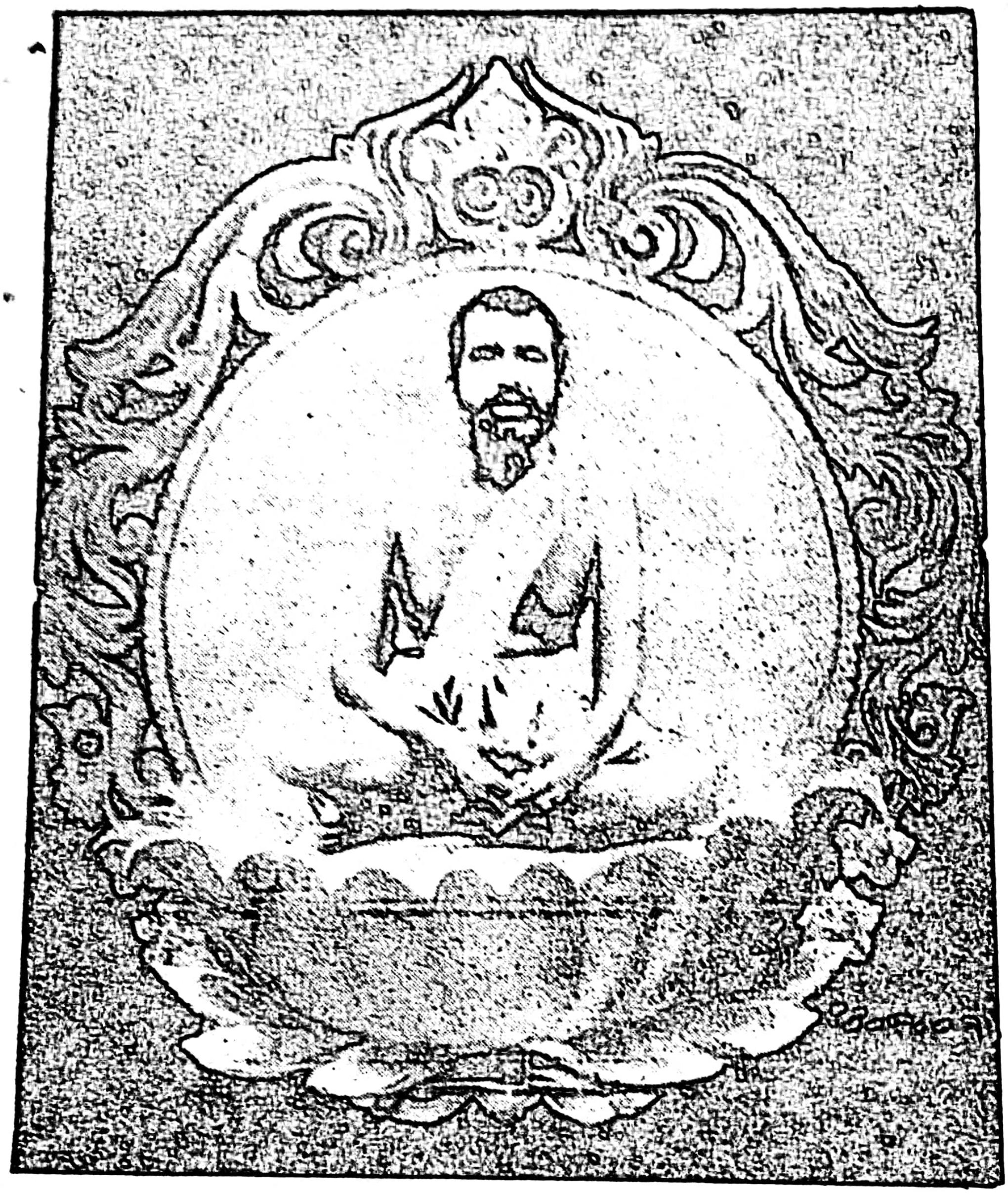

अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्णदेव

मूल्य : ६.००

रामकृष्ण मि[illegible], जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है—		१
२. श्रीरामकृष्ण स्तोत्र	स्वामी विवेकानन्द	४
३. यह मंदिर का दीप	(सम्पादकीय सम्बोधन)	६
४. दो पत्र	डा० ई० पी० चेलिशेव, प्रो० ह्वांग जिन चुवान	११
५. श्रीरामकृष्ण संघ	श्रीमत् स्वामी शिवानन्द	१३
६. रामकृष्ण संघ और भारत का पुनर्निर्माण	श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द	२७
७. श्रीरामकृष्ण परमहंसोपनिषद्	स्वामी हर्षानन्द	३१
८. प्रथम रामकृष्ण मठ : कुछ झलकियाँ	श्री 'म'	३६
९. गुरु	श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द	३९
१०. मंत्र दीक्षा का महत्व	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द	४६
११. रामकृष्ण भाव आन्दोलन	स्वामी बुधानन्द	५३
१२. श्रीरामकृष्ण परमहंस (कविता)	डा० मिथिलेश कुमारी	५८
१३. स्वामी रंगनाथानन्द से एक साक्षात्कार (इंटरव्यू)		५९
१४. रामकृष्ण संघ की समस्याएँ	स्वामी वन्दनानन्द	६३
१५. रामकृष्ण भावान्दोलन	स्वामी लोकेश्वरानन्द	७१
१६. श्रीरामकृष्ण संघ : आदर्श एवं वैशिष्ट्य	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	७८
१७. रामकृष्ण मठ-मिशन (कविता)	श्री द्वारका प्रसाद शर्मा	८४
१८. रामकृष्ण भावान्दोलन—नूतन दृष्टि : अखंड दर्शन	स्वामी सोमेश्वरानन्द (इंटरव्यू)	८५
१९. अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	९१
२०. रामकृष्ण मिशन और बिहार	डॉ० कालीकिंकर दत्त	१००
२१. रामकृष्ण मठ और मिशन		११०

कवर : श्री राय मनेन्द्र प्रसाद, पटना के अर्थ-दान से खरीदा गया।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा को एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—५ अगस्त-सितम्बर—१९८६ अंक—८-९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कर्मयोग यानी कर्म के द्वारा ईश्वर के साथ योग। अनासक्त होकर किया जाने पर प्राणायाम, ध्यानधारणादि अष्टांग योग या राजयोग भी कर्मयोग ही है। संसारी लोग अगर अनासक्त होकर, ईश्वर पर भक्ति रखकर, उन्हें फल समर्पण करते हुए संसार के कर्म करें तो वह भी कर्मयोग है। फिर ईश्वर को फल समर्पण करते हुए पूजा, जप आदि करना भी कर्मयोग ही है। ईश्वर लाभ ही कर्मयोग का उद्देश्य है।

(२)

जीवों पर दया? धत् मूर्ख! तू स्वयं कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा? दया करने वाला तू कौन है? नहीं, नहीं, 'जीवों पर दया' नहीं—'शिवबुद्धि से जीवों की सेवा!'

(३)

बड़े तालाब में बहुत से घाट होते हैं किसी भी घाट से उतरने पर एक ही पानी मिलता है। इसलिए 'मेरा घाट अच्छा है, तुम्हारा घाट अच्छा नहीं' इस तरह परस्पर झगड़ना निरर्थक है। इसी प्रकार सच्चिदानन्द-सरोवर में भी अनेक घाट हैं। सभी धर्म मानो एक घाट हैं। यथार्थ में व्याकुल होकर लगन के साथ इनमें किसी भी एक घाट के सहारे आगे बढ़ो, तुम अवश्य ही सच्चिदानन्द-सरोवर में उतर सकोगे। ऐसा कभी न कहो कि मेरा धर्म श्रेष्ठ है।

(४)

हर एक व्यक्ति को अपने स्वधर्म का ही पालन करना चाहिए। ईसाई को ईसाई धर्म का; मुसलमान को मुसलिम धर्म का पालन करना चाहिए। हिन्दुओं के लिए प्राचीन आर्य ऋषियों का सनातन मार्ग ही श्रेयस्कर है।

श्रीरामकृष्ण स्तोत्र

—स्वामी विवेकानन्द

ॐ ह्रीं ऋतं त्वमचलो गुणजित् गुणेड्यः ।
नक्तं दिवं सकरुणं तव पादपद्मम् ।
मोहंकषं बहुकृतं न भजे यतोऽहम् ।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥१॥

भक्तिर्भगश्च भजनं भवभेदकारि ।
गच्छन्त्यलं सुविपुलं गमनाय तत्त्वम् ।
वक्त्रोद्धृतन्तु हृदि मे न च भाति किंचित् ।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥२॥

तेजस्तरन्ति तरसा त्वयि तृप्ततृष्णाः ।
रागे कृते ऋतपथे त्वयि रामकृष्णे ।
मर्त्यामृतं तव पदं मरणोर्मिनाशम् ।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥३॥

कृत्यं करोति कलुषं कुहकान्तकारि ।
ष्णान्तं शिवं सुविमलं तव नाम नाथ ।
यस्मादहं त्वशरणो जगदेकगम्य ।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥४॥

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥५॥

भावार्थ—हे दीनबन्धो, तुम सगुण हो, फिर त्रिगुणों के परे हो, रात दिन तुम्हारे चरण कमलों की आराधना नहीं कर रहा हूँ, इसीलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ।

मैं मुख से आराधना कर रहा हूँ, ज्ञान का अनुशीलन कर रहा हूँ, परन्तु कुछ भी धारणा करने में असमर्थ हूँ, इसीलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ।

तुम्हारे चरण कमलों का चिन्तन करने से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है, इसीलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ।

हे दीनबन्धो, तुम ही जगत् की एक मात्र प्राप्त करने योग्य वस्तु हो, इसीलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । 'त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ।'

जो सभी धर्मों के स्थापक, सभी धर्मों के स्वरूप तथा अवतारों में वरिष्ठ हैं, उन श्रीरामकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।

सम्पादकीय सम्बोधन

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आइए, आज मैं आपको एक युग-चक्र-परिवर्तन की सौ वर्षों की कथा-यात्रा पर ले चलता हूँ।

आज से ठीक सौ वर्ष पूर्व। १५ अगस्त, सन् १८८६ ई०। रविवार। मध्यरात्रि समाप्त हुई। एक घंटा और बीत गया। सारी दुनिया काली रात की गोद में अचेत सोयी है। नहीं सो पा रहे हैं केवल कुछ वीत-रागी, आत्मतत्वान्वेषी, अमृत-पथ के राही युवकवृन्द—श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के तेजोद्दीप्त शिष्यगण। कलकत्ते के काशीपुर उद्यान भवन में ठहरे इन शिष्यों में एक आकुल जागरुकता है, एक बेचैन तत्परता है, एक अधीर घुमड़न है। उद्यान भवन की ऊपरी मंजिल के एक कमरे में एक दीपक शान्त-स्थिर भाव से जल रहा है। एक विचित्र विलक्षण प्रशान्ति पसरी हुई है। घड़ी धीरे-धीरे टिक्-टिक् करती बढ़ रही है। अब उसकी सुई दो मिनट और आगे रेंगती है......कि अचानक 'काली! काली! काली! ओऽऽऽम्!'—एक स्पष्ट, मधुर, सांगीतिक स्वर गूँज उठा। और इस स्वर-झंकार, इस दिव्य अनाहत नाद के साथ ही प्राय: पिछले चालीस वर्षों से फैली-पसरी असीम आनन्द, निरंजन नृत्य और स्वर्गीय संगीत की एक हाट उठ गयी। दैवी-साधना और ईश्वरीय संदेश की एक अखण्ड दीपशिखा किसी विराट् अनन्त आलोक-लोक में लीन हो गयी। श्रीरामकृष्ण ने अपनी इहलीला का संवरण कर महासमाधि ले ली। उनकी लीलासंवरण की शतवार्षिकी के पुण्य अवसर पर उनके पाद-पद्मों में हम अपने शत-शत प्रणाम अर्पित करते हैं।

लेकिन उस दिन श्रीरामकृष्ण ने मात्र अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया था, दैहिक लीला का संवरण किया था। वे मात्र एक कमरे से दूसरे कमरे में गये थे। उन्होंने कई बार श्री माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द एवं अपने कई अन्य शिष्यों को अपने दर्शन दिये और कई विषयों में उनका मार्ग-दर्शन किया। ये दर्शन आध्यात्मिक आश्वासन—पुनराश्वासन थे, इस बात के कि जो राम थे, जो कृष्ण थे, वही इस बार श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतरित हुए थे और अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण अब भी विराजमान हैं अपने सूक्ष्म रूप में—लोक कल्याण के लिए, विश्व मंगल के लिए। जो चाहे, जब चाहे, हृदय की आतुर पुकार से, विकल प्रार्थना से उनका दर्शन कर सकता है।

'बुझ जाता है दीप मगर आलोक नहीं मरता है।' उस दिन मिट्टी का एक दीपक टूट गया था। उसे टूटना ही पड़ता है। कभी-न-कभी उसे टूटना ही था। लेकिन उस दीपक की अमर अखंड ज्योति पिछले सौ वर्षों से और अधिक प्रखर होकर, और अधिक भास्वर होकर जगमगा रही है। वह ज्योति अंधकार से भरे वर्तमान विश्व के विकल, उद्भ्रान्त, पथहारा मानव समुदाय में एक नयी शक्ति, एक नयी चेतना और सबल आशा—विश्वास का संचार कर उसका पथ-प्रदर्शन कर रही है। टूटकर उस दीपक ने एक नया रूप, एक नया आकार ग्रहण कर लिया—ज्योति का रूप, आलोक का आकार। उसी रूप, उसी आकार की संज्ञा है—रामकृष्ण संघ।

"यह संघ भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का प्रत्यक्ष शरीर है और इस संघ में वे सदैव विराजमान है।... जो संघ की पूजा करते हैं, वे भगवान की ही पूजा करते हैं और जो इसे नहीं मानते, वे उनकी भी अवमानना करते हैं।"—उक्ति है त्रिकालदर्शी ऋषि स्वामी विवेकानन्द की, रामकृष्ण संघ के विषय में।

इस संघ की स्थापना भी प्रकारान्तर से स्वयं श्रीरामकृष्ण देव ने ही आज से सौ वर्ष पूर्व, अपनी महासमाधि से कुछ ही दिनों पहले, १८८६ ई० में ही की थी। काशीपुर के उसी उद्यान भवन में अपने ११ तरुण शिष्यों को एक दिन उन्होंने अपने हाथों से गेरुआ वस्त्र प्रदान किया था और उनके हाथों दिया था कमण्डलु—भिक्षा-पात्र। कहा था, शहर की गलियों में जाकर भिक्षाटन करो। शिष्यगण भिक्षान्न लेकर लौटे और उसे पकाकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण को नैवेद्य दिया। ठाकुर ने कुछ दाने अपने मुँह में डालकर कहा—बहुत अच्छा। अहा, यह भोजन बड़ा पवित्र है। और नरेन्द्र से उन्होंने कहा—"नरेन, इन बच्चों का भार मैं तुम पर छोड़े जा रहा हूँ। देखना कि ये जप-ध्यान करते रहें। इन्हें घर नहीं लौटने देना। इनकी रक्षा करना। इन्हें सत्पथ पर चलाना। मैं शीघ्र ही देह-त्याग करूँगा।" रामकृष्ण संघ की स्थापना वस्तुतः उसी दिन हो गयी। उस क्षण को, जब श्रीरामकृष्ण ने अपने उपस्थित ११ शिष्यों को संन्यास देकर एक अघोषित संघ की स्थापना की, एक नूतन युगधर्म का चक्र-प्रवर्तन किया, हम सब श्रद्धानत होकर प्रणाम करते हैं।

और रामकृष्ण मठ की स्थापना भी १८८६ में ही हो गयी। १६ अगस्त को भजन-कीर्तन, वैदिक मंत्रोच्चार और 'जय भगवान श्रीरामकृष्ण की जय' की ध्वनि के साथ वराह नगर के गंगा-तट पर श्रीरामकृष्ण की पार्थिव देह का अग्नि-संस्कार किया गया। फिर उनके शिष्यों ने उनकी अस्थियों और भस्मावशेष को कई कलशों में भरकर श्रीरामकृष्ण के एक प्रमुख गृही भक्त श्री बलराम वसु के मकान में स्थापित किया। कुछ भस्म-कलश ठाकुर के एक अन्य गृही भक्त श्रीरामचन्द्र दत्त के काकुड़गाछी स्थित योगोद्यान में भी स्थापित किया गया। यह उद्यान साधना-भजन के लिए उपयुक्त समझकर श्रीरामकृष्ण के संकेत पर ही श्रीदत्त ने खरीदा था और स्वयं श्रीठाकुर एकाधिक बार वहाँ जाकर ठहरे भी थे। श्री वसु के निवास पर स्थापित अस्थि-कलशों की शशि महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द) नित्य पूजा-आरती किया करते थे।

तभी एक दिन एक घटना घटी—विलक्षण और अद्भूत घटना। सितम्बर, १८८६ की एक संध्या। श्रीरामकृष्ण के एक गृही शिष्य श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र अपने आवास के पूजा-गृह में ध्यान-मग्न हैं। अकस्मात् श्रीरामकृष्ण उनके समक्ष उपस्थित होकर उनसे कहते हैं—"तुम यहाँ क्या कर रहे हो? मेरे बच्चे स्थानाभाव में इधर-उधर भटक रहे हैं। कुछ भी करने के पहले तुम उनकी देख-भाल करो।" सुरेन्द्र शीघ्र नरेन्द्र के पास जाते हैं और उनसे कहते हैं कि वे शीघ्र एक मकान ढूँढ़ें जहाँ श्रीरामकृष्ण के अस्थिकलशों की नियमित पूजा अर्चना की जा सके, जहाँ उनके संन्यासी शिष्यगण समवेत रूप से रह सकें और गृही भक्त भी जहाँ समय-समय पर आते-जाते रहें। तदर्थ वे आर्थिक भार वहन करेंगे।

नरेन्द्रनाथ ने वराह नगर में गंगा के तट पर एक सस्ता मकान भाड़े पर लिया। १८८६ ई० के सितम्बर के अंत तक उसमें श्रीरामकृष्ण के अस्थिकलशों को स्थापित कर मठ की स्थापना की गयी। और श्रीरामकृष्ण का धर्म-चक्र गतिमान हो उठा। यद्यपि वह मकान खंडहर जैसा था, रात में साँप फुफकार करते, सियार हुआ-हुआ करते, भोजन की समुचित व्यवस्था का नितान्त अभाव था तथापि श्रीरामकृष्ण के तरुण संन्यासी शिष्यगण वहाँ एक ईश्वरीय आनन्द से झूम कर रहने लगे, कीर्तन-भजन, जप-ध्यान, शास्त्र-पाठ और धर्म चर्चा में लीन होकर रहने लगे। उन्हें न भोजन की चिन्ता थी न वस्त्र की परवाह। यही वराह नगर मठ भावी रामकृष्ण मठ और मिशन का बीजरूप था।

१८८६ ई०। दिसम्बर का अंतिम सप्ताह। नरेन्द्र अपने कुछ गुरुभाइयों के साथ आते हैं बाबूराम के गाँव—हुगली जिलान्तर्गत आँटपुर। बैठते हैं एक रात बाहर के प्राङ्गण में गुरु भाइयों को लेकर और सुनाने लगते हैं ईसा मसीह की जीवन-गाथा। सुनाते हैं ईसा की वाणी—

'सियारों की अपनी माँद होती है, और चिड़ियों को अपने घोंसले होते है, किन्तु प्रभु के पुत्रों को अपना सिर छिपाने की भी जगह नही होती।' और फिर वे ईसा के शिष्यों की यात्रा-गाथा सुनाते हैं और अपने गुरु भाइयों को परम वैराग्य और त्याग में प्रतिष्ठित होकर जीवन-यापन करने का संकल्प लेने को प्रेरित करते हैं। धुनी जला दी जाती है। और सभी गुरू भाई एक साथ खड़े होकर, अग्नि और आकाश के नक्षत्रों को साक्षी रखकर संसार-त्याग का महान् व्रत लेते हैं, नया नाम, नया वेश ग्रहण करते हैं। नरेन्द्रनाथ हुए—स्वामी विवेकानन्द, निरंजन हुए—निरंजनानन्द, शशि—रामकृष्णानन्द, शरत्—सारदानन्द, राखाल—ब्रह्मानन्द, सारदा—त्रिगुणातीतानन्द, बाबूराम—प्रेमानन्द और काली हुए—अभेदानन्द।

इसके कुछ ही दिनों बाद संन्यास ग्रहण कर तारक हुए—शिवानन्द, हरि—तुरीयानन्द, लाटू—अद्भुतानन्द योगेन—योगानन्द, गोपाल—अद्वैतानन्द, सुबोध—सुबोधानन्द और गंगाधर—अखण्डानन्द। अंत में आये हरि प्रसन्न जो हुए—विज्ञानानन्द।

शुरू हुई इन १६ अग्निधर्मा युवा संन्यासियों की विश्व-स्पन्दनकारी ऐतिहासिक आध्यात्मिक यात्रा। स्वामी रामकृष्णानन्द मठ में रहकर ठाकुर की पूजा-आरती और मठवासी संन्यासियों की देख-रेख करने लगे। और निकल पड़े कुछ संन्यासी—अनजाने अनचीन्हे तरुण संन्यासी—परिव्राजक के रूप में भारत-भ्रमण करने, तीर्थाटन करने, तपस्साधना करने। स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा की—कष्टकर यात्रा। इस यात्रा में उन्होंने राजाओं के महलों से लेकर गरीबों की झोपड़ियों तक में ठहर कर भारत की आत्मा को परखा-पहचाना। १८९२ ई० में भारत के अंतिम दक्षिणी छोर पर स्थित कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर बैठकर भारतीयों की वर्तमान दुरवस्था पर ध्यान किया और उसका निदान ढूंढ़ा। फिर शिकागो (अमेरिका) की धर्म-सभा में भाग लेकर पराधीन भारत के आध्यात्मिक गुरुत्व की विजय-पताका फहराकर १८९७ ई० में युगनायक के रूप में भारत लौटे।

इस बीच १८९१ ई० के नवम्बर महीने में बराह नगर से आलम बाजार के एक भाड़े के मकान में मठ स्थानान्तरित हो गया। भारत लौटने पर १८९७ ई० की पहली मई को स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के गृही और संन्यासी शिष्यों की एक सभा बुलाकर 'रामकृष्ण मिशन' नामक एक समिति का गठन किया। इसके प्रस्ताव में कहा गया—मानव कल्याण के लिए श्रीरामकृष्ण ने जिन सब तत्त्वों की व्याख्या की थी एवं उनके कार्यों एवं जीवन के द्वारा जो प्रतिपादित हुए हैं उनके प्रचार एवं मनुष्य के दैहिक, मानसिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए जो तत्त्व प्रयुक्त हो सकते हैं उनमें सहायता करना इस मिशन का उद्देश्य है

१८९८ ई० में बेलुड़ में एक मकान सहित कुछ भूमि खरीदी गयी। इस भूमि पर भवन बनाकर जनवरी १८९९ ई० में बेलुड़ मठ की स्थापना की गयी। यह बेलुड़ मठ बराह नगर के गंगा तट के, जहाँ श्रीरामकृष्ण का दाह-संस्कार किया गया था, प्राय: ठीक सामने दूसरे पार में अवस्थित है। उस दाह संस्कार के दिन कौन जानता था कि जहाँ श्रीरामकृष्ण का पार्थिव शरीर अग्नि को अर्पित किया जा रहा है, मात्र अगले १२वें वर्ष में ही, उसके ठीक सामने वे अपने सूक्ष्म चैतन्य रूप में अवस्थित होकर सारे विश्व को धर्म संवलित एक समन्वित जीवन जीने की प्रेरणा और प्रकाश प्रदान करते रहेंगे।

१९०९ ई० में रामकृष्ण मिशन एसोशिएशन का १८६० ई० की २१वीं धारा के अनुसार पंजीकरण हुआ। यह बेलुड़ मठ ही रामकृष्ण मठ एवं मिशन का मुख्यालय है—रामकृष्ण संघ का प्राण-केन्द्र, शक्ति पीठ है।

यहाँ हमारे मन में एक प्रश्न उभर सकता है। क्या इस मठ एवं मिशन की स्थापना कर पहले से ही विराजमान

भारत के अनेक धार्मिक सम्प्रदायों की कड़ी में एक और सम्प्रदाय जोड़ने की चेष्टा नहीं है ? यदि नहीं, तो फिर क्या प्रयोजन था रामकृष्ण संघ की स्थापना का ? हमें इस प्रश्न पर विचारकरना ही चाहिए।

वेलुड़ मठ की स्थापना के कुछ ही पूर्व 'मठ की नियमावली' बनाने के क्रम में स्वामी विवेकानन्दजी ने लिखा था :

"भगवान श्रीरामकृष्ण द्वारा बनायी गयी प्रणाली का अवलम्बन कर अपने लिए मुक्ति प्राप्त करने तथा संसार का सव प्रकार कल्याण करने की शिक्षा पाने के उद्देश्य से इस मठ की स्थापना की गयी। नारियों के लिए भी इसी प्रकार का एक मठ स्थापित किया जायगा।" लेकिन फिर प्रश्न उठेगा कि श्रीरामकृष्ण द्वारा वनायी गयी प्रणाली कौन सी है ?

सन् १८८४ ई० की कथा है। एक दिन श्रीरामकृष्ण उपस्थित भक्तों को वैष्णव धर्म का सार समझाते हुए जीवों पर दया करने की बात कहते हैं। और फिर हठात् समाधिस्थ हो जाते हैं। समाधि से थोड़ा उतरने पर अर्द्ध बाह्य दशा-शून्य स्थिति में ही वे कहते हैं—"जीवे दया ? धत् ! तू कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा ? दया करनेवाला तू कौन है ? नहीं, नहीं, जीवों पर दया नहीं— शिव भाव से जीव-सेवा।" उसी दिन, उसी क्षण, मानो भावी रामकृष्ण संघ के महदुद्देश्य की, महामंत्र की अलिखित घोषणा हो गयी थी—'शिव भाव से जीव की सेवा करो।' क्यों ? स्वयं श्रीरामकृष्ण का कथन है : "मिट्टी की प्रतिमा में ईश्वर हैं और मानव शरीर में नहीं हैं ? नहीं, मनुष्य में ईश्वर का, परम चैतन्य का तो और भी अधिक प्रकाश है !"

श्रीरामकृष्ण यह भी कहा करते थे कि मानव जीवन का लक्ष्य है ईश्वर प्राप्त करना। किन्तु, साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि भूखे पेट से ईश्वर की आराधना नहीं हो सकती। फिर कभी उन्होंने कहा था, कामिनी कांचन के त्याग के बिना ईश्वर लाभ नहीं किया जा सकता। और फिर उन्होंने कहा था सभी धर्म ईश्वर की ओर ही ले जाते हैं—यतो मत ततो पथ। ऐसे ही कितने अमृत-वचन उन्होंने कहे थे।

नरेन्द्र नाथ ने इन सब सूत्रों को सुना था। इन पर मनन-चिंतन किया था। इन कथनों की उपयुक्तता पर गंभीरता से विचार किया था। और तब नर-शार्दूल नरेन्द्रनाथ का मन भावों से भर उठा था। आह, गुरुदेव ने कितनी अच्छी, कितनी उदार और कितनी नयी बातें कही हैं ! इन आदर्शों को जीवन में ढालकर ही नये स्वस्थ समाज की रचना हो सकती है।

अब तक के साधु-संत केवल अपनी मुक्ति पर बल देते रहे और समाज सुधारक नेतागण जीवों पर दया करने की घोषणा करते रहे। ये दोनों दृष्टियाँ एकांगी हैं। श्रीरामकृष्ण के पूर्व किसी संत ब्रह्मज्ञ पुरुष के मुख से यह नहीं सुना गया कि अपनी मुक्ति के साथ शिव भाव से, पूजा-भाव से जीवों की सेवा करो; अनासक्त भाव से, लोक मंगल के भाव से कर्म करो। यह नये युग के लिए सर्वथा विलक्षण, सर्वथा नूतन दृष्टि है, नूतन मंत्र है। इसीसे स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ काआदर्शवाक्य रखा—'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'। अपनी मुक्ति और विश्व मंगल के लिए रामकृष्ण संघ का धर्म-चक्र चलता रहेगा, चलता रहेगा, चलता रहेगा।

अब तक ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग इन चारों पथों से ईश्वर की प्राप्ति की बात कही गयी थी। अलग अलग ये रास्ते हैं। इनमें से किसी एक पथ पर चल कर ईश्वर लाभ कर लो। ये चारों मार्ग चार प्रकार की प्रकृति के लोगों को ध्यान में रखकर स्थिर किये गये हैं। किन्तु क्या कोई मात्र बुद्धि-प्रवण या भाव-प्रवण होता है ? श्रीरामकृष्ण की नवीनता इस बात में है कि उन्होंने इनमें से एक या अनेक या सबके द्वारा ईश्वर-लाभ करने की बात कही। इतना ही नहीं। उन्होंने समझा कि केवल ज्ञान से मनुष्य के शुष्क-नीरस हो जाने का और मात्र भक्ति से उन्मादग्रस्त, भावुक और विक्षिप्त हो जाने का भय रहता है। अतः उन्होंने ज्ञान

मिश्रित भक्ति या भक्ति मिश्रित ज्ञान व साधना की बात कही। साथ ही मनुष्य को ही नहीं, प्रत्येक जीव को शिव-स्वरूप समझकर उनकी सेवा करने अर्थात अनासक्त कर्म करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने एक समन्वित आध्यात्मिक पथ का निर्देश किया, एक रासायनिक और वैज्ञानिक साधना का मार्ग सुझाया जो इस युग के लोगों के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

श्रीरामकृष्ण का कर्म-दर्शन भी कितना विलक्षण है! उन्होंने साकार-निराकार दोनों रूपों से साधना की बात कही। फिर इसके साथ ही एक छोटा सहज सरल प्रश्न किया—"यदि मिट्टी की मूर्ति की पूजा की जा सकती है तो मनुष्य की पूजा क्यों नहीं की जा सकती? क्या केवल आँख मूँदने पर ही ईश्वर को देखा जा सकता है, आँख खोलने पर नहीं—यह कैसी बात है! ईश्वर सभी जीवों में, सभी अवस्थाओं में विराजते हैं। इच्छा होने पर ही ईश्वर का दर्शन किया जा सकता है"। इस प्रकार शिवदृष्टि से कर्म करने की एक अनूठी बात श्रीरामकृष्ण ने कही।

श्रीरामकृष्ण थे विविध पथों के यात्री। उन्होंने न केवल साकार, निराकार, शैव, शाक्त, वैष्णव, तंत्र आदि हिन्दुओं की विभिन्न धार्मिक पद्धतियों की साधना की बल्कि इस्लाम और ईसाई धर्मों की भी साधना कर सत्य का प्रत्यक्षीकरण किया और तब उन्होंने घोषणा की—यतो मत ततो पथ—जितने मत हैं वे सभी ईश्वर तक जाने के पथ हैं। यह केवल भावुकता से भरी वाणी या तर्क संकुल वाणी नहीं थी, बल्कि इसमें थी प्रत्यक्ष अनुभूति की प्रामाणिकता। और इसलिए यहाँ अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की राजनैतिक बात नहीं कही गयी बल्कि उनकी सहज स्वीकृति की आत्मीय गाथा गायी गयी है।

प्रत्येक धर्म, प्रत्येक पंथ में जो परम सत्य रहता है वही चिरस्थायी होता है। सभी धर्मों की मूल बात वही सत्य है। नेति-नेति नहीं, इति-इति। ईश्वर हैं, ईश्वर हैं। उन्हें पाया जा सकता है, उन्हें पाऊँगा। यही है श्रीरामकृष्ण की नूतन जीवन दृष्टि।

हाँ कामिनी-कांचन का त्याग किये बिना ईश्वर को नहीं पाया जा सकता। इसका अर्थ नारी से घृणा करना नहीं है। नारी को देखने की दृष्टि में परिवर्तन करना है। वह है शक्ति स्वरूपा—जगज्जननी का अंश। उस मातृरूपा नारी की भक्ति करो, श्रद्धा–सम्मान और उपासना करो। इसके साथ ही कामिनी से ठाकुर का तात्पर्य है—कामासक्ति। कांचन से तात्पर्य है अर्थासक्ति। (नर नारी को और नारी नर को काम-भाव से नहीं देखे।) जब तक ये दोनों एक दूसरे को देहासक्ति से, काम भाव से देखेंगे तब तक चित्तशुद्धि नहीं हो सकती और शुद्ध-चित्त हुए बिना ईश्वर को कथमपि पाया नहीं जा सकता—यह था ठाकुर का भाव।

तब गृहस्थ जन क्या करें? क्या यह सबके लिए संभव है? श्रीरामकृष्ण गृहस्थों को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि वे घर में दासी की तरह रहें। अर्थात् घर के सारे कार्य करते हुए भी अपने अन्तर्मन को ईश्वर में लगाये रखें। आसक्त न हों। दो-तीन बच्चों के हो जाने पर पति-पत्नी भाई बहन की भाँति परस्पर प्रीतिपूर्वक ईश्वरोन्मुखी भाव से रहें। भय क्या है? अपने को पापी क्यों समझोगे? जो ईश्वर सदैव हृदय में विराजते रहते हैं वे क्या पापी हो सकते हैं या ईश्वर के सान्निध्य में रहनेवाला मनुष्य क्या कभी पापी हो सकता है। कभी नहीं। केवल ईश्वर को पुकारो, उनका चिन्तन करो, उनके अभय पदों में मन को लगाये रखो। कैसी आश्वस्ति की वाणी है?

इन्हीं आदर्शों के अनुसार जीवन गठन करने के लिए, मानव जीवन का पूर्ण रूपान्तरण करने के लिए और लोक मंगल के लिए, रामकृष्ण की वाणी से विश्व को आलोड़ित, स्पंदित और परितृप्त कर देने के लिए रामकृष्ण संघ की स्थापना हुई— किसी नये सम्प्रदाय को खड़ा करने के लिए नहीं।

और तब शुरू होता है रामकृष्ण संघ का महान आध्यात्मिक अभियान और विराट् कर्म-यज्ञ। स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिमी जगत के देशों में जाकर जिस व्यावहारिक वेदान्त का हियहारी उपदेश दिया था उसे उनके गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द, स्वामी सारदानन्द आदि विश्व के कोने-कोने में फैलाने लगे। विदेशों में वेदान्त मठों की स्थापना होने लगी। स्वयं स्वामीजी ने कोलम्बो से अलमोड़ा तक वेदान्त के सार तत्व को जीवन में ढालने का अमृत संदेश दिया।

फिर शुरू हुआ सेवा-यज्ञ। स्वामीजी ने अपने गुरु भाई स्वामी अखण्डानन्द को अमेरिका से लिखा था— "दरिद्र, अज्ञ, निरक्षर पतित मनुष्यों में ही तुम्हारे ईश्वर निवास करते हैं। जान लो, इनकी सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म है।" समाज के इन्हीं उपेक्षितों के लिए राजस्थान में 'विद्यायतन' की स्थापना की गयी। १८९७ ई० में मुर्शिदाबाद में भीषण अकाल पड़ा। स्वामीजी ने कुछ रुपये देकर दो व्यक्तियों को राहत कार्य के लिए भेजा। स्वामी अखंडानन्द के निर्देशन में राहत कार्य शुरू हुआ। अकाल के बाद कई अनाथ बच्चों का भार आ पड़ा अखण्डानन्द के ऊपर। इन्हें लेकर सारगाछी में उन्होंने एक आश्रम खोला—स्थापित हुआ रामकृष्ण मिशन का प्रथम शाखा केन्द्र। इसी वर्ष स्वामीजी के परामर्श पर स्वामी रामकृष्णनन्द ने मद्रास में एक मठ की स्थापना की। यह रामकृष्ण मठ का प्रथम शाखा मठ है।

१८९८ ई. में स्वामीजी की शिष्या मार्गरेट नोबुल स्थायी रूप से भारत आयीं और ब्रह्मचर्य व्रत लेकर वे भगिनी निवेदिता हो गयीं। स्वामीजी के निर्देश पर वे नारी सेवा के कार्यों में पिल पडी। उन्होंने नारियों के कल्याण के लिए कलकत्ते में एक विद्यालय स्थापित किया जो आज निवेदिता स्कूल के नाम से प्रख्यात है। इसी समय कलकत्ते में प्लेग का भयानक आक्रमण हुआ। निवेदिता और स्वामी सदानन्द लोक सेवा में कूद पड़े— अपने प्राणों की किंचित् परवाह किये बिना।

१८९९ में स्वामीजी ने पुनः वेदान्त और रामकृष्ण भाव के प्रचार के लिए इंग्लैंड और अमेरिका की यात्रा शुरू की—स्वामी तुरीयानन्द और निवेदिता को साथ लेकर। १९०० ई. में वे भारत लौट आये। इसी समय स्वामीजी ने अपने शिष्य स्वामी कल्याणानन्द को, जो किशनगढ़ में दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा कर अपने गुरु के दर्शनार्थ लौटे थे, निस्सहाय रुग्ण साधु संन्यासियों की सेवा के लिए हरद्वार भेजा। उन्होंने कनखल में सेवाश्रम स्थापित किया जहाँ आज विशाल अस्पताल खड़ा हो गया है।

वाराणसी में स्वामीजी के निर्देश पर रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम की स्थापना हुई। इस आश्रम की व्यवस्था स्वयं श्री माँ सारदा देवी ने देख कर प्रसन्नता व्यक्त की थी और कहा था यह ठाकुर का ही कार्य है। आज यह सेवाश्रम प्रायः २०० शय्याओं से युक्त एक प्रख्यात अस्पताल के रूप में रोगी नारायणों की विलक्षण सेवा कर रहा है। स्वामी जी के निर्देशानुसार १९०२ई. की ४ जुलाई को स्वामी शिवानन्द ने वाराणसी में रामकृष्ण अद्वैत आश्रम की स्थापना की। दुर्भाग्यवश उसी दिन भारत के महान कर्मयोगी, अनन्त करुणामय और वेदान्त मार्तण्ड युगनायक स्वामी विवेकानन्द ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

स्वामीजी ने ६ नवम्बर १९०१ ई. को एक न्यास (ट्रस्ट) की स्थापना कर अपने ११ संन्यासी गुरुभाइयों को रामकृष्ण मठ (बेलुड़ मठ) का न्यासी (ट्रस्टी) बना दिया था। श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र स्वामी ब्रह्मानन्द इस न्यास के प्रथम महाध्यक्ष निर्वाचित हुए। जब मठ की शाखा प्रशाखाएँ चारों ओर फैल गयीं तब कार्यों में समन्वय के उद्देश्य से १९३५ ई. में रूल्स एंड रेगुलेशंस ऑफ द रामकृष्ण ऑर्डर १९३५ (रामकृष्ण संघ के नियम अधिनियम ९९३५) बनाये गये।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन एक ही संघ के दो अंग हैं। रामकृष्ण मठ का कार्य है आध्यात्मिक कार्य और मठ की देख-भाल का कार्य। और रामकृष्ण मिशन का कार्य है शिक्षा, चिकित्सा, सहायता तथा अन्य दातव्य कार्य एवं वेदान्त के आलोक में श्रीरामकृष्ण

द्वारा अनुसरित विश्व भ्रातृत्व प्रसार मूलक कार्यों को रूपायित करना। मठ के ट्रस्टी ही मिशन के शासी निकाय (गवर्निंग बॉडी) का गठन करते हैं तथा श्री रामकृष्ण में विश्वास रखनेवाले ही इसके सदस्य होते हैं। विधानतः भिन्न होने पर भी कायतः दोनों एक ही हैं।

अब तक रामकृष्ण संघ के दस महाध्यक्ष हो चुके हैं और अभी श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज, ग्यारहवें महाध्यक्ष, के कुशल निर्देशन में संघ सर्वतोभावेन गतिशील है।

सन् १९२६ ई. में श्रीरामकृष्ण संघ ने एक विशाल संन्यासी सम्मेलन स्वामी शिवानन्द के सभापतित्व में आयोजन कर पिछले ४० वर्षों की गतिविधियों का मूल्यांकन कर भविष्य की योजनाएँ बनायीं। और सन् १९८० ई. के दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी की अध्यक्षता में संघ के द्वितीय महाधिवेशन का विराट् आयोजन हुआ। इस अधिवेशन में 'संघ' शब्द को उन्होंने व्यापक अर्थ दिया—"संघ' शब्द का प्रयोग मैं व्यापक अर्थ में कर रहा हूँ। प्रायः इसका प्रयोग केवल संन्यासियों के संगठन को सूचित करने के लिए किया जाता है। मैंने इस शब्द का प्रयोग साधारण भक्तों को भी सम्मिलित करने के लिए किया है।" यह व्यापकता बहुत अर्थपूर्ण है।

रामकृष्ण संघ के गठन में श्री माँ सारदा का योगदान अविस्मरणीय है। वे ही हमारी संघ जननी हैं। उनकी प्रार्थना थी कि उनकी संतानों को वस्त्र, अन्न और आवास का कष्ट न हो। और उनकी प्रार्थना फलीभूत हुई। स्वामीजी की इच्छा थी कि "नारियों के लिए भी इसी प्रकार का एक मठ स्थापित करना होग।" उनका स्वप्न फलीभूत हुआ १९५४ ई. में—माँ सारदा देवी की जन्म शताब्दी के अवसर पर। स्थापित हुआ— सारदा मठ और स्थापित हुई मिशन की शाखा—रामकृष्ण सारदा मिशन।

—बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मों को राजनैतिक संरक्षण प्राप्त था। किन्तु रामकृष्ण भावान्दोलन को ऐसा कोई संरक्षण कभी नहीं मिला। जरूरत भी इसकी नहीं पड़ी। तथापि स्वप्नसंभवा रामकृष्ण संघ आज केवल भारत में ही नहीं सारे विश्व के धर्म-जगत में एक नाम, एक इतिहास, एक प्रतिष्ठान बन गया।

१८८६ ई. में वराहनगर के एक छोटे से किराये के मकान में जिस रामकृष्ण संघ का बीजारोपण हुआ था, आज १९८६ ई. में वह विशाल वटवृक्ष बनकर, अपनी १२१ शाखाओं में फैलकर अखिल विश्व को एक शीतल स्निग्ध छाँह प्रदान कर रहा है। इन शाखा केन्द्रों के द्वारा नर्सरी से डिग्री स्तर तक, शिक्षक प्रशिक्षण, रात्रि पाठशाला, नर्सिंग विद्यालय आदि विभिन्न रूपों के ७१८ स्कूल-कॉलेज एवं शिक्षा केन्द्र संचालित हो रहे हैं। १७८३ शय्याओं से युक्त कुल १३ बड़े-बड़े अस्पताल ७९ बहिरंग औषधालय (out door Dispensaries), १ सेनेटोरियम, १ टी. बी. क्लिनिक, २ मातृ एवं शिशु सेवा केन्द्र, १ प्रशिक्षण केन्द्र तथा १ पशु चिकित्सालय का परिचालन हो रहा है।

राहत कार्यों में मिशन आज सरकारी संस्थाओं से भी अधिक तत्पर, एवं क्रियारत है। भारत के गाँवों, वनवासियों, गिरिवासियों एवं पिछड़े वर्ग के इलाकों में भी आज मिशन के नये-नये केन्द्र खुल रहे हैं और वहाँ के निवासियों के सर्वाङ्गीण विकास के कार्य यज्ञीय स्तर पर सम्पादित हो रहे हैं। पश्चिम बंगाल के कामारपुकुर, जयरामवाटी, बाली दीवानगंज अंचलों के ३१ ग्रामों में, बिहार के राँची केन्द्र के दिव्यायन द्वारा लगभग ३० ग्रामों में, मध्यप्रदेश के रायपुर केन्द्र की उपशाखा नारायणपुर द्वारा हजारों आदिवासियों में कृषि, पशुपालन, शिक्षा, लघु व्यापार, कुटीर उद्योग, चिकित्सा आदि के लिए विशेष प्रशिक्षण एवं ऋण देने का कार्य किया जाता है। इसी प्रकार के कार्य दक्षिण और पश्चिम भारत के विभिन्न केन्द्रों द्वारा भी संचालित होते हैं। पल्ली मंगल, ग्राम क्षेम आदि ऐसे ही संस्थान हैं।

आध्यात्मिक भाव प्रसार के लिए कम से कम १० केन्द्रों से विभिन्न भाषाओं में धर्म ग्रन्थों और लगभग एक दर्जन पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। इनके द्वारा सारे विश्व में विद्युत गति से रामकृष्ण भावान्दोलन का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

रामकृष्ण संघ ने नये मानव-समाज के निर्माण का, सम्पूर्ण मानवता के सर्वाङ्गीन अभ्युत्थान का जो शिवात्मक संकल्प लिया था, सम्पूर्ण भारत के लिए जिस शान्ति-सुख, समता, बन्धुत्व और एकता तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष का जो एक हिमालयी व्रत लिया था, उसकी पूर्णता और सफलता के लिए हम उसकी ओर आशा और विश्वास भरी आँखों से देख रहे हैं। किन्तु, क्या हम इस महायात्रा के मूक दर्शक ही रहेंगे ? नहीं, हमें इस यात्रा का सहयात्री होना ही होगा, अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार इस महायज्ञ में अपनी समिधा डालनी ही होगी।

रामकृष्ण संघ आज विश्व-मंदिर में आशा का, विश्वास का, शक्ति और प्रेरणा का अकेला निर्धूम दीप बनकर अपना शीतल आलोक बिखेर रहा है। एक बड़ी अर्थवान् कविता है—

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह यह जागेगा प्रतिपल
रेखाओं में भर आभाजल
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !
यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

मेरे मित्रो, आज विश्व की ऐसी ही दशा है। रात गहरायी हुई है। हवा भी दिशा-भ्रमित हो गयी है। नैतिक मूल्यों के ह्रास से मानव समाज में अंधकार गहराता ही है। और फिर मनुष्य दिग्भ्रमित होकर भटकने लगता है। यही हमारा हाल है। ऐसी स्थिति में जब तक स्वर्णिम प्रभात नहीं आ जाता, सर्वत्र एक अरुण-किरण नहीं फैल जाती, तब तक मन्दिर में दिया को जलाये रखना ही होगा। आज के विश्व-मन्दिर का दीप यही रामकृष्ण संघ है। जलने दो इसे मौन, नीरव भाव से, अखंड निष्कम्प रूप से—जब तक एक नया प्रभात नहीं आ जाता, एक नया विश्व नहीं गठित हो जाता।

भगवान हम सब को ऐसी प्रेरणा दें कि श्रीरामकृष्ण संघ के विगत सौ वर्षों से प्रज्वलित दीप को आनेवाले सहस्र वर्षों तक और भी प्रखरतर करने के लिए हम अपना स्नेह अर्पित करते रहें—निष्काम और अनासक्त भाव से। जय श्रीरामकृष्ण ! जय श्री माँ सारदा ! जय स्वामी जी !

*

"समग्र संसार में मठों की स्थापना करनी होगी। किसी देश में आध्यात्मिक भावों के प्रचार की आवश्यकता है तो किसी देश में कुछ इहलौकिक सुख-स्वच्छन्दता की आवश्यकता है।········भारतवर्ष के लिए हमारा सबसे प्रथम तथा मुख्य कर्तव्य है—निम्न श्रेणी के लोगों में विद्या और धर्म का प्रचार करना। रोटी का प्रश्न हल किये बिना भूखे मनुष्य धार्मिक नहीं बनाये जा सकते। यह एकदम असम्भव है। अतएव, लोगों को रोटी का प्रश्न हल करने का नया मार्ग बताना सबसे मुख्य और सबसे पहला कर्त्तव्य है।"

—स्वामी विवेकानन्द

सोवियत रूस में श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द की लोकप्रियता

—डा० ई० पी० चेलिशेव

[पत्र-लेखक मास्को विश्वविद्यालय के एक विद्वान् अध्यापक, सोवियत रूस की साइन्स अकेडमी के एसोशियेट मेम्बर, सोवियत लेखक संघ के सदस्य, सोवियत शांति परिषद् के सदस्य एवं जवाहरलाल शांति पुरस्कार से सम्मानित विशिष्ट लेखक हैं। हाल में संगठित रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा समीक्षा समिति की अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार समिति के वे उपाध्यक्ष मनोनीत हुए हैं। उनके कलकत्ता आगमन के समय इस पद को ग्रहण करने के लिए उनसे अनुरोध करने पर, इस समिति के अध्यक्ष स्वामी लोकेश्वरानन्दजी को उन्होंने जो पत्र लिखा था, उसका राँची रामकृष्ण मिशन में कार्यरत स्वामी निखिलेश्वरानन्द द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। पत्र दिनांक २८ नवम्बर, १९८३ का है। —सं०]

आदरणीय स्वामीजी,

आपके दिनांक २८ नवम्बर, १९८३ के पत्र के लिए धन्यवाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के योगदान की यथोचित समीक्षा करने के लिए भारतवर्ष तथा बाहर के देशों के विद्वानों की एक अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन किया गया है जिसके अध्यक्ष प्रो० ए० एल० बाशम हैं। स्वामी विवेकानन्द का नाम सोवियत रूस में काफी लोकप्रिय है तथा हमारे देशवासी उन्हें काफी आदर की दृष्टि से देखते हैं। सोवियत लोग उन्हें महान लोकतांत्रिक, मानवतावादी तथा देशभक्त के रूप में सम्मान करते हैं जिन्होंने भारतवर्ष में उपनिवेश-विरोधी मुक्ति-आन्दोलन तथा राष्ट्रीय-चेतना के विकास में काफी योगदान दिया था। वे लोग यह भी मानते हैं कि उनका तथा श्रीरामकृष्ण का सन्देश जो वास्तव में एक ही है, मानव सभ्यता की, रक्षा के लिए अति आवश्यक है, जो कि वर्तमान समय में विनाशकारी आणविक युद्ध की आशंका से अति संकट में है। हमलोगों का यह विश्वास है कि आज के संतप्त विश्व में उनका सन्देश ही शांति, समन्वय तथा मेल-मिलाप ला सकता है। वे केवल धार्मिक नेता ही नहीं, उससे भी बढ़कर हैं। वे शांति समन्वय तथा भ्रातृत्व के मसीहा हैं। उनका सन्देश अतीत में तो भारतवर्ष तथा विश्व के लिए प्रासंगिक था ही, किन्तु भारत तथा समकालीन विश्व के वर्तमान सन्दर्भ में तो वह और भी अधिक प्रासंगिक है। इसी कारण से अनेक सोवियत विचारकों तथा विद्वानों ने श्रीरामकृष्ण तथा विशेषकर स्वामी विवेकानन्द के अध्ययन के लिए अपने को सर्मापित कर दिया है। मुझे गर्व है कि मैं अपने देश में इन अध्ययन करनेवालों में, अग्रणियों में से था तथा बीस वर्षों पूर्व कलकता से प्रकाशित 'स्वामी विवेकानन्द सेन्टेनरी मेमोरियल वाल्युम' में स्वामी विवेकानन्द पर एक लेख भी मैंने लिखा था।

श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द से संबंधित किसी भी कार्य से सम्बद्ध होने में मैं अत्यन्त गर्व का अनुभव करता हूँ। मैं और मेरे सहकर्मी भारत तथा अन्य देशों के विद्वानों के सहयोग से रामकृष्ण-विवेकानन्द के अध्ययन के लिए अपने को सर्मापित करते रहेंगे। सैद्धान्तिक रूप से, 'रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा समीक्षा समिति' के एक उपाध्यक्ष बनने के आपके प्रस्ताव को मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। रामकृष्ण-विवेकानन्द के अध्ययन को आगे बढ़ाने में मैं अपना योगदान देने का भरसक प्रयत्न करूँगा। मैं इसे पूरी मानवता के लिए एक बड़ी सेवा समझता हूँ।

श्रद्धासहित।

आपका
ह०/-
(इ० पी० चेलिशेव)

स्वामी लोकेश्वरानन्द
अध्यक्ष,
कार्यकारिणी समिति
रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा समीक्षा समिति
गोलपार्क, कलकत्ता - ७०००२९

चीन में रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का प्रचार

—प्रो० ह्वांग जिन चुवान

[रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा ने देश-काल, भौगोलिक सीमा, धर्म, राजनीति आदि की सीमा का अतिक्रमण किया है। अध्यापक ह्वांग-जिन चुवान, कम्युनिस्ट चीन के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैं। भारतवर्ष की इन्होंने कई बार यात्रा की है। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा समीक्षा समिति की अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार समिति के उपाध्यक्ष होने के लिए अपनी सम्मति प्रदान करते समय, उन्होंने जो पत्र लिखा था वह काफी महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेजी पत्र का स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। सं०]

इन्स्टीच्यूट ऑफ साउथ एशियन स्टडीज
चायनीज एकेडेमी ऑफ स्पेशल साइन्सेस
एण्ड पिकिंग युनिवर्सिटी
मई ५, १९८४

प्रिय स्वामी लोकेश्वरानन्द

सर्वप्रथम मैं आपके दिनांक १६, दिसम्बर, १९८३ के पत्र का उत्तर देने में देरी करने के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। इस पत्र से मैंने जाना कि आपलोगों ने (रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा समीक्षा समिति की) सलाहकार समिति का उपाध्यक्ष बनाकर मुझे सम्मानित किया है। मुझे स्वीकार करना होगा कि श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में मेरी गवेषणा तथा योगदान इतना सामान्य है कि इस समाचार से मैं विस्मित हुआ हूँ। निःसन्देह, यह भारतवर्ष तथा चीन दोनों देशों के विद्वानों तथा देशवासियों के बीच मित्रता का प्रतीक है।

अतीत में स्वामी विवेकानन्द ने, चीन के लोगों का, स्वाधीनता संग्राम के समय, दृढ़ समर्थन किया था, उनके प्रति गंभीर सहानुभूति प्रकट की थी तथा सम्पूर्ण विश्व के लोगों के साथ एकताबद्ध होने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया था। चीन के लोग इस प्रकार के व्यक्ति को भूल नहीं सकते एवं सब समय उनके प्रति वे गम्भीर श्रद्धा पोषण करते हैं।

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा समीक्षा समिति इन दोनों महान भारतीयों के सम्बन्ध में गवेषणा करने में तथा उनकी भावधारा के प्रचार के कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। मैं आशा करता हूँ कि हम-लोग निरन्तर सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से अपने घनिष्ठ सम्बन्ध और भी दृढ़ करेंगे। पद ग्रहण करते समय, इस सम्मान को प्रदान करने के लिए मैं आपका आभार प्रकट करता हूँ। श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द की भावधारा का प्रचार चीन तथा बाहर के देशों में करने का मैं और भी प्रयत्न करूँगा।

सश्रद्ध,

भवदीय
ह०/-
(ह्वांग जिन चुवान)

श्रीरामकृष्ण संघ

श्रीमत् स्वामी शिवानन्दजी महाराज
द्वितीय महाध्यक्ष
रामकृष्ण मठ एवं मिशन

[सन् १९२६ ई० में श्रीरामकृष्ण-संघ के प्रथम संन्यासी-सम्मेलन में सभापति पद से दिया हुआ भाषण]

श्रीरामकृष्णदेव की सन्तानों,

श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के इस प्रथम महासम्मेलन में भारत के भीतर और बाहर के प्रतिनिधियों को अपने मूल केन्द्र इस बेलुड़ मठ में आया देख, आज मेरे हृदय में एक अपूर्व उत्साह और आनन्द का संचार हो रहा है। श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के इतिहास मे इस प्रकार के महासम्मेलन में तुमलोग जिन विभिन्न आश्रमों के प्रतिनिधि होकर आये हो उन आश्रमों द्वारा किये जानेवाले कार्यों के विषय में एक दूसरे को परिचित कराने तथा परस्पर के भावों तथा विचारों का आदान-प्रदान कर अपने-अपने आश्रमों के कार्यों की परिपुष्टि करने में समर्थ होगे और भगवान श्रीरामकृष्ण के जो कोई साक्षात् शिष्य अब भी स्थूल शरीर में विद्यमान हैं, उनके श्रीमुखों से उस आध्यात्मिक आदर्श की बातें सुनोगे जिन्हें भगवान श्रीरामकृष्ण अपने जीवन में दिखा गये हैं। साथ ही उस आदर्श का विशेष रूप से परिचय पाने से इस संघ या संस्था के उद्देश्य में जिस एकता और सहयोगिता की आवश्यकता है, वह भी पूरी होगी और एकता आदि की दिनों-दिन वृद्धि होने में सहायता मिलेगी।

आज यदि स्वामी विवेकानन्द जीवित होते, तो वे अवश्य ही तुमलोगों की बड़े उत्साह और प्रेम के साथ अभ्यर्थना करते; और तुमलोगों की आलोचना के फलस्वरूप, जिसमें इस सम्मेलन के उद्देश्य सिद्ध हों, उसके लिए हृदय से आशीर्वाद की वर्षा करते। इसी प्रसंग में एक और महात्मा की बात याद आती है, जिन्हें श्रीरामकृष्णदेव आध्यात्मिक तत्वों की उपलब्धि के अधिकारी के लेखे ठीक स्वामी विवेकानन्द के बाद ही स्थान देते थे। मैं स्वामी ब्रह्मानन्द के विषय में कहता हूँ। जिस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव ने स्वामीजी को समग्र संसार में अपने भावों के प्रचार करने के लिए चुना था, उसी प्रकार स्वामी ब्रह्मानन्द के ऊपर उन्होंने अपने धर्म-संघ का एक बड़ा ही दायित्वपूर्ण कार्य सौंपा था। वास्तव में बात यह है कि वराहनगर वाले मठ में बीज के रूप में जो छोटी-सी संस्था स्थापित हुई थी, वही श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम सभापति राजा महाराज* के नेतृत्व में अब एक विशाल छायासमन्वित वृक्ष के रूप में परिणत हो गयी है। पिता जिस प्रकार संतान का लालन-पालन कर उसे शैशव से संसार-संग्राम के योग्य शिक्षित युवक के रूप में परिणत करता है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने भी मठ के संगठन और विस्तार के लिए किया है। हम आज यहाँ एकत्रित होकर इनका और केवल इन्हीं लोगों का क्यों, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी रामकृष्णानन्द तथा और भी अनेकों का अभाव विशेष रूप से अनुभव कर रहे हैं। हमारी संस्था इन लोगों की भी कुछ कम ऋणी नहीं है—संस्था के वर्तमान प्रसार, संगठन और उन्नति के लिए इन्होंने भी बहुत कुछ किया है। आज इस शुभ अवसर पर, इस

---

* स्वामी ब्रह्मानन्द।

सम्मेलन के उपलक्ष्य में इन सब लोगों के और सर्वोपरि हमारे गुरु महाराज के मंगल आशीर्वचनों की वर्षा हो, मैं सबसे पहले यही हार्दिक प्रार्थना करता हूँ।

मैं तुम लोगों को यह बतलाने के लिए नहीं खड़ा हुआ हूँ कि किस प्रकार इस महासम्मेलन का मूल उद्देश्य सिद्ध होगा—अर्थात् किस प्रकार सारे आश्रमों और प्रतिष्ठानों के बीच परस्पर सहयोगिता और सद्-भाव बढ़े, और न इस विषय में छोटी-मोटी बातों का विचार कर मैं कोई निश्चित कार्य-प्रणाली ही निर्दिष्ट करना चाहता हूँ। अपने जीवन का अधिकांश समय संघ के साथ बिताकर जो कुछ मैं समझ सका हूँ, मैं उसी सामान्य अभिज्ञता के सहारे दो-चार साधारण बातें कहूँगा, और तुमलोगों में परस्पर भावों का आदान-प्रदान होने के फलस्वरूप इस सम्मेलन के सफल होने में मुझसे यदि थोड़ी भी सहायता मिलेगी तो मैं अपने को धन्य मानूँगा।

तीस वर्ष पहले, जब भारत के भीतर और बाहर रामकृष्ण-संघ की विभिन्न कार्य प्रणाली भविष्य के गर्भ की बात थी, जब लोग केवल इतना ही जानते थे कि स्वामी विवेकानन्द हिन्दू धर्म के एक प्रचारक हैं और शिकागो की धर्म-महासभा में उन्होंने सनातन धर्म की विजयपताका फहरायी है, तब स्वामीजी ने त्रिकालदर्शी ऋषि की दिव्यदृष्टि से देख लिया था कि समग्र संसार में युग-चक्र के परिवर्तन का समय आ गया है और उनके गुरुदेव की महान् शक्तिशालिनी उपदेश-वाणी समग्र मानव-जाति पर एक अपूर्व प्रभाव विस्तार कर इस युग-चक्र के परिवर्त्तन में विशेष रूप से सहायता करेगी। जिस दिन उनके गुरुदेव ने, अपूर्व भावावेश में डूब, उनके दिन-रात समाधिस्थ रहने की प्रार्थना पर कहा था, "समाधि तो साधारण छोटी-सी वस्तु है—संसार दुःख, शोक और पाप से जर्जर हो रहा है और तू समाधि-सुख में डूबा रहना चाहता है? ले, बारह वर्ष की कठोर साधना के बाद जो कुछ भी मैं पा सका था, आज वह सब मुट्ठी खोलकर तुझे देकर फकीर हो रहा हूँ!"—इस प्रकार जिस दिन श्रीरामकृष्णदेव ने अपने योग्यतम शिष्य को अपनी सारी साधनाओं का फल प्रदान करके, संसार के महान् ऐतिहासिक स्वर्णावसर पर समस्त संसार में धर्मरत्न बाँटने का एक साधन बना लिया—केवल भगवान को सब भूतों में देखकर "बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय" जीवन उत्सर्ग करने की, समग्र जगत के कल्याण और सुख के लिए अपनी व्यक्तिगत सुख-शान्ति विसर्जन करने की शिक्षा दी थी, उस चिर-स्मरणीय दिन की बात उनके हृदय में सदैव जाग्रत रहती थी।

स्वामीजी ने अपने गुरुदेव की महासमाधि के कुछ काल के पश्चात् जगत् का सब प्रकार से कल्याण करने के उद्देश्य से अपने देशवासियों के लिए एक नयी भाव-धारा प्रवाहित की। वह प्रवाह, उनके जीवन से जो अनेक प्रकार की अपूर्व अनुभूतियाँ और अभिज्ञताएँ संचित हुई थीं, उन्हीं का स्वाभाविक उच्छ्वास था। किन-किन विशेष शक्तियों के प्रभाव से उनकी दृष्टि एक अपूर्व, नवीन, दिव्य जगत् के देखने में समर्थ हुई थी, इस पर विचार करने से हमें निम्नलिखित बातें दिखायी देती हैं।

(१) उनके विषय में उनके गुरुदेव की भविष्यवाणी, (२) उनकी स्वार्जित बहुवर्षव्यापी शिक्षा, कठोर साधना और उससे होनेवाली उपलब्धियाँ, (३) पाश्चात्य दर्शन और इतिहास तथा संस्कृत धर्मग्रन्थों में समान प्रवेश और ज्ञान, (४) श्रीगुरुदेव के अलौकिक जीवन का रात-दिन मनन करना, उसकी अलौकिक प्रभा से व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं तथा शंकाओं का समाधान तथा शास्त्रों की सत्यता का प्रत्यक्षीकरण और (५) अपनी मातृभूमि में सर्वत्र भ्रमण करने के कारण प्राचीन और अर्वाचीन भारत का तुलनात्मक ज्ञान, वर्तमान काल के भारतवासी स्त्री-पुरुषों के जीवननिर्वाह का ढंग, उनके आचार-व्यवहार, उनका विश्वास, उनकी कमी, उनकी चिन्ताप्रणाली इत्यादि बातों का भलीभाँति पर्यवेक्षण।

राजा-प्रजा, साधु-पण्डित सब के साथ समान भाव से मिलकर उन्होंने सारे भारत को एक समष्टि-रूप में देखा, और देखा कि अपने गुरुदेव का जीवन मानो उस महान् भारत की पुंजीकृत छोटी-सी प्रतिमूर्ति मात्र है। इसी से स्वामीजी के जीवन और कार्य में गुरु, शास्त्र और मातृभूमि—इन तीनों विभिन्न स्वरों ने मिलकर मानो एक अपूर्व एकतान संगीत की सृष्टि की है। इसीलिए तो वे जगत् को ये ही तीन रत्न लुटाने के लिए तैयार हुए।

उपर्युक्त ज्ञानार्जन के फल से वे समझ गये कि संसार में कौन-कौन सी विरोधात्मक भेदकारी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं—जिनका उच्छेद कर समन्वय करने के लिए इस युग में अवतार के आविर्भाव की आवश्यकता हुई थी। संसार के विभिन्न धर्मों के अन्तर्गत जो तुच्छ परन्तु प्रबल मूढ़ता पैठी हुई है, उसी की ओर सबसे पहले उनका ध्यान आकर्षित हुआ। केवल यही नहीं, उन्होंने देखा कि धर्म के विषय में लोगों के विचार अत्यन्त संकीर्ण हैं। प्राचीन ऋषिमुनि भिन्न-भिन्न धर्ममतों को एक ही सत्य की उपलब्धि के विभिन्न मार्ग मात्र समझते थे—उन्होंने देखा कि आजकल एक धर्म मतवाले दूसरे धर्मावलम्बियों के साथ लड़ने-झगड़ने को मानो चौबीस घण्टे कमर कसे रहते हैं। कूपमण्डूक की तरह एक सम्प्रदायवाले अपनी संकीर्ण सीमा का परित्याग कर और किसी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। दूसरे धर्म के विषय में लोगों की धारणा ही अत्यन्त संकीर्ण हो गयी है—मानो धर्म ही स्वयं सब प्रकार की चेष्टाओं को सीमा के बाहर होकर शिक्षित और उदारहृदय व्यक्तियों की दृष्टि में एक अवज्ञा की वस्तु सी हो रही है। आज हमलोगों की धारणा हो गयी है कि धर्म के साथ वास्तव जगत् का तथा हमारे दैनिक जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए उसका अनुष्ठान केवल उन्हें ही करना चाहिए जो समाज से बाहर हो गये हैं, जो संन्यासी हैं और जो लोकालय छोड़कर जंगलों में रहते हैं। लोग समझते हैं, वेदान्त के उच्चतम उपदेशों के साथ कर्म का कभी समन्वय नहीं हो सकता। कर्म और उपासना—त्याग और सेवा-धर्म के बीच में जमीन-आसमान का अन्तर स्थापित किया गया है। और इस भ्रान्तिपूर्ण धारणा के फल से ही प्रधानतः हमारे देश का जातीय अधःपतन हुआ है। ऐसी संकटमय अवस्था में संसार में एक ऐसे व्यक्ति के आविर्भूत होने की आवश्यकता उपस्थित हुई थी जो संसार के आगे ऐसे धर्म की व्याख्या करें जो विज्ञानसंगत हो और ऐसे विज्ञान का प्रचार करें जो आध्यात्मिक भाव से भरा हुआ हो।

स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट ही देखा कि ऐसे आदर्श महापुरुष उनके श्रीगुरुदेव ही हैं। उनके जीवन में सब प्रकार के विरोधात्मक भावों का अपूर्व समन्वय हुआ है। जिन धर्ममतों में सिर से पैर तक परस्पर विरोध है, उनमें भी अजीब ढंग से मिलाप होते उन्होंने अपने गुरुदेव में ही देखा। पहले श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं अपने जीवन में दिखाकर प्रमाणित किया कि जो आदर्श सब तरह के दार्शनिक मतवादों के परे है वहाँ पहुँचने में द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत—ये तीनों ही मुख्य भारतीय दार्शनिक मतवाद समान उपयोगी हैं। इसके बाद प्रचलित विभिन्न धर्ममतों की अर्थात् धर्म की शाक्त, वैष्णव आदि कई एक शाखाओं तथा ईसाई और इस्लाम धर्म की साधना कर इसी लक्ष्य पर पहुँचकर उन्होंने यह प्रमाणित कर दिखाया कि ये सभी धर्ममत सत्य हैं और हर एक की सार्थकता है—अन्तर केवल इतना ही है कि वे भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों के लिए उपयोगी हैं। प्राचीन समय में वैदिक ऋषियों ने अपनी दृष्टि से "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक ही है—पण्डित लोग उसका नाना प्रकार से वर्णन करते हैं) इस महामंत्र को देख पाया था; लोग इसे बहुत दिनों तक भूले हुए थे। आज श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में उस सनातन सत्य का फिर से दर्शन पाकर लोग धन्य हो गये। ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म इस परस्पर विरोधी दिखनेवाले भावों का श्रीरामकृष्णदेव के जीवन

में अपूर्व समन्वय देखकर लोग कृतार्थ हो गये। निर्विकल्प समाधि, जिनकी मुट्ठी के भीतर रहा करती थी, जो जी में आते ही कभी भी समाधिस्थ हो जाते थे, वे ही फिर भगवान का नाम लेते ही बच्चों की भाँति रो देते थे। जिन्होंने योग मार्ग जैसे जटिल पन्थ का अवलम्बन कर सत्य का साक्षात्कार किया था, उन्होंने फिर अपनी अपूर्व साधना का फल योग्य अधिकारी को देते हुए कठोर कर्मव्रत का अवलम्बन किया; और उस व्रत के निभाने में अपने जीवन की तिल-तिल करके आहुति दे दी। ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा से सम्पन्न नर-देवता का साक्षात्कार होने के कारण उनके योग्य शिष्य का हृदय उनकी ओर बड़े वेग से आकृष्ट हुआ। उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा, और स्पष्ट रूप से समझा कि यदि समस्त संसार पर उनके श्रीगुरुदेव की प्रतिभा की छाप पड़ जायगी, तो भविष्य में वह फिर नया जीवन प्राप्त करेगा—वह फिर से जाग उठेगा।

प्राचीन भारत के बौद्धसंघ की याद कर और वर्तमान उन्नतिशील पाश्चात्य जगत् के देश-विदेश में जा, वहाँ की आश्चर्यजनक संघबद्ध कार्यप्रणाली को देखकर ही संभवतः स्वामीजी के मन में श्रीगुरुदेव की उपदेशावली का कर्म-जीवन में प्रयोग करने के उपयुक्त क्षेत्र-स्वरूप मठ और मिशन की कल्पना का उदय हुआ होगा। उन्होंने शायद सोचा होगा कि यदि सुनिर्दिष्ट साधना-प्रणालियों तथा नियमों से काम लिया जाय, तो एक ऐसा कर्मक्षेत्र तैयार हो जायगा जो उनके श्रीगुरुदेव की छाया की भाँति एक विराट् संस्था के रूप में परिणत हो जायगा। स्वामी विवेकानन्द जिस प्रकार एक ओर उच्च कोटि के भावुक व्यक्ति थे, उसी प्रकार दूसरी ओर अपने उच्च भावों को कार्यान्वित करने में भी कुशल थे। इसीलिए पाश्चात्य देशों से भारत लौटते ही उन्होंने मठ-रूपी एक ऐसा आदर्श स्थापित करने की कल्पना की जिसके द्वारा स्त्री-पुरुष सभी श्रीरामकृष्णदेव के जीवन और विचारों का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से देख सके। इस कल्पना से उनके मन की मौलिकता और साहसिकता का सुन्दर परिचय मिलता है।

सन् १८९९ ई० में बेलुड़ मठ की स्थापना के कुछ ही पहले 'मठ की नियमावली' के नाम से अपने मन के जिन भावों को स्वामीजी ने लिपिबद्ध किया था, उसके आरम्भ में ही हम ये बात पाते हैं :—

"भगवान श्रीरामकृष्ण द्वारा बतायी गयी प्रणाली का अवलम्बन कर अपने लिए मुक्ति प्राप्त करने तथा संसार का सब प्रकार कल्याण करने की शिक्षा पाने के उद्देश्य से इस मठ की स्थापना की गयी। नारियों के लिए भी इसी प्रकार का एक मठ स्थापित किया जायगा।"

यही उनकी मठ-स्थापना के आदर्श की पहली बात है। यों तो यह बहुत ही मामूली-सी बात जान पड़ती है, पर थोड़ा ध्यान देने पर मालूम होगा कि वास्तव में यह कितनी सारगर्भित है। मठ और मिशन के अंग जहाँ जिस प्रकार और जो कुछ भी काम कर रहे हैं, उन सब फैले हुए श्रीरामकृष्ण संघों की—सारी श्रीरामकृष्ण संस्थाओं की—नींव यही है। यही उनका एकमात्र स्तम्भ स्वरूप है।

स्वामीजी के इस वाक्य पर कुछ और विचार कर देखें। पहले ही यह देखने में आता है कि स्वामीजी ने इस एक वाक्य में अपनी मुक्ति और संसार का कल्याण साधन—देखने में इन दो विरोधी भावों को एक ही साथ गूँथ रखा है। लोग साधारणतः समझते हैं, त्याग और सेवा, कर्म और उपासना एक साथ नहीं रह सकते, इनका परस्पर विरोध है! एक का प्राबल्य दूसरे के विकास में विघ्न डालेगा। पर स्वामीजी ने मठ की स्थापना करके इन दोनों, दिखने में विरोधी भावों का समन्वय करने की चेष्टा की है। उनके मतानुसार व्यक्तिगत युक्ति लाभ करने की चेष्टा समग्र मानव जाति की सेवा करने का कभी विरोध नहीं कर सकती। फिर सेवा-विषय को साधारण भाव से देखकर यदि उसके चरम आदर्श की बात को सोचा जाय, तो जो व्यक्ति

अपनी आत्मा-रूपी सत्य-सूर्य के ऊपर पड़े हुए कुहरे को साफ करने के लिए कमर कसे तैयार हैं, उनके भाव और आदर्श-सेवक के भाव में कोई भेद नहीं दिखायी देगा। यदि उच्चतम ज्ञान का अर्थ जीवात्मा और परमात्मा के बीच से सब तरह के भेदभावों को दूर कर देना हो—और यदि अपनी आत्मा के साथ सर्वत्र, समस्त भूतों में अवस्थित ब्रह्म को एकाकार करना ही चरम लक्ष्य हो, तो यह सरलता से समझ में आ जाता है कि जब साधक उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करता है, तब भूतमात्र की मन, वचन और कर्म से सेवा करने में अपने को न्योछावर करने के अतिरिक्त उसके लिए और कोई गति नहीं रह जाती। अज्ञान से पैदा होनेवाले क्षुद्र भावों को पारकर वह समग्र संसार को प्रेम से गले लगाता है। यही उसका सर्वोच्च दिव्य आत्मत्याग है। स्वामीजी चाहते थे कि उनके मठ के साधुगण कार्य सिद्धि के लिए श्री भगवान के हाथों में स्वेच्छापूर्वक अपने आपको यन्त्रवत् छोड़ दें—जब उनका कार्य समाप्त होगा तब वे आप ही अपने दिव्य ज्ञान द्वारा प्राप्त परमानन्द के भागी बनेंगे। श्रीरामकृष्णदेव भी बारम्बार हमलोगों से कहा करते थे—'अकेले मीठा आम खाकर मुँह पोंछ डालने की अपेक्षा और भी पाँच आदमियों को बाँटकर खाना बहुत अच्छा है।"

साधारण रूप से विचार करने पर भी हम देखते हैं कि स्वामीजी एक ऐसे संघ का, एक ऐसी संस्था का आदर्श चित्रित कर रहे हैं, जिसके किसी अंग में जरा भी कसर न रहे, जो अपने भावों की सिद्धि का प्रत्येक सुभीता पाये। हम देखते हैं, उनके इस संघ के आदर्श में किंचित् मात्र भी कहीं से कोर कसर नहीं है—वह सब तरह की भाव-सम्पदा से समृद्ध है। उनके द्वारा चित्रित इस संघ के आदर्श की बात सोचने पर सचमुच यही जान पड़ता है कि स्वामीजी बहुत बड़े आचार्य थे।

उनके मत से उस मठ के प्रत्येक साधक को ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म—इन चार प्रसिद्ध साधनाओं की अपने जीवन में एक साथ ही साधना करनी होगी—हाँ, रुचि और अधिकार के अनुसार जिसकी जिधर स्वाभाविक गति हो, उसे उधर कुछ अधिक ध्यान देना उचित है। इनमें से किसी एक को छोड़ देने से काम नहीं चलेगा। उनकी बनायी हुई मठ की नियमावली में कुछ आगे चलकर हम देखते हैं कि मठ के साधुओं को एक ओर जैसे ध्यान, धारणा और उपासना करने का वे आदेश देते हैं, दूसरी ओर वैसे ही उनके लिए विद्या-चर्या और कार्य की भी व्यवस्था करते हैं। उनकी बतायी हुई साधना-प्रणालियों में इन दो भावों का अपूर्व समन्वय करने की चेष्टा सर्वत्र देखने में आती है। स्वामीजी की राय थी कि मठ की कार्य-प्रणाली संकीर्ण न हो, बल्कि वह बहुत प्रकार के कल्याणप्रद मार्गों से चले। यह बात स्वामीजी के नीचे लिखे शब्दों से स्पष्ट ही जानी जाती है:—

"इस प्रकार समग्र संसार में मठों की स्थापना करनी होगी। किसी देश में आध्यात्मिक भावों के प्रचार की आवश्यकता है तो किसी देश में कुछ इहलौकिक सुख-स्वच्छन्दता की आवश्यकता है। इस प्रकार जिस जाति या व्यक्ति में जिस बात का बहुत ही अभाव हो, उसे दूर कर उसी मार्ग से होकर उसे धर्म राज्य में ले चलना होगा। भारतवर्ष के लिए हमारा सबसे प्रथम तथा मुख्य कर्त्तव्य है—निम्न श्रेणी के लोगों में विद्या और धर्म का प्रचार करना। रोटी का प्रश्न हल किये बिना भूखे मनुष्य धार्मिक नहीं बनाये जा सकते। यह एकदम असम्भव है। अतएव लोगों को रोटी का प्रश्न हल करने का नया मार्ग बताना सबसे मुख्य और सबसे पहला कर्त्तव्य है।"

स्वामीजी के इस सीधे-सादे वाक्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मठ के साधुओं के लिए वे जिन आध्यात्मिक साधनाओं की बात बता गये हैं, उनमें जीव-रूपी नारायण की सेवा सबसे मुख्य है। श्रीरामकृष्णदेव के जो भक्त स्वामीजी को उनके उपदेशों और जीवन का भाष्यकार मानते हैं, और जो ध्यान-धारणा की सहायता से इस जीवन में ही परमात्मा के दर्शन के प्रार्थी हैं, उन्हें जिन कार्यों को वे अपनी अभीष्ट-सिद्धि के मार्ग के

एकदम बाहर समझते हैं, और इतने दिनों तक जो कार्य केवल सांसारिक झंझट समझे जाते थे, वे सब कार्य अवश्य करने चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता का आदेश है कि केवल कर्म ही मनुष्य को उन्नत या अवनत नहीं कर सकता—मनुष्य किस भाव से कार्य करता है, इसकी ओर भी दृष्टि रखनी होगी और यह भाव ही तुम्हें या तो बन्धन में डालेगा, तुम्हारी अवनति करेगा या वही तुम्हें उन्नति और युक्ति की ओर ले जायगा।

यह बात भी युक्तिसंगत है कि यदि भक्ति और प्रेम की सहायता से साधक केवल एक प्रतिमा में ईश्वर की सत्ता का दर्शन पा सकता है, तो यदि वह उतनी ही भक्ति और प्रेम से मनुष्य की उपासना को—चेतन मनुष्य अवश्य ही जड़ वस्तु से श्रेष्ठ है—तो निश्चय ही वह और भी सुगमता से भगवत्प्राप्ति कर सकता है। मनुष्य ही तो भगवान की सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ जीव है और नर-नारायण की उपासना ही तो संसार में उच्चतम कोटि की उपासना है। इसमें क्या कोई सन्देह हो सकता है?

यही तो स्वामीजी की साधना के आदर्श का मूल-मन्त्र है। इसी का अवलम्बन कर कुछ और आगे वढ़कर स्वामीजी अपने मठ की कार्य-प्रणाली के विषय में एक बात और कहते हैं--उनकी राय में निम्नोक्त कार्य प्रणाली का धीरे-धीरे अवलम्बन करने पर उनके भाव बहुत कुछ कार्य में परिणत हो सकेंगे। स्वामीजी ने कहा है—

"अब उद्देश्य यह है कि इस मठ को धीरे-धीरे एक सर्वांग सुन्दर विश्वविद्यालय के रूप में परिणत करें। उसमें दर्शन-शास्त्र तथा धर्म की शिक्षा के साथ-ही-साथ एक औद्योगिक विद्यालय (Technical Institute) भी रखना होगा। यह पहला कर्त्तव्य है। बाद को उनके अन्यान्य अंगों को परिपुष्टि होती रहेगी।"

ओह! कितनी विराट्, कैसी जबरदस्त कल्पना है! प्राचीन काल से चले आये हुए धर्म के आदर्श में कर्म के लिए एकदम स्थान नहीं है। पर यहाँ तो उस आदर्श को कायम रखने की रत्ती भर भी चेष्टा नहीं दिखायी देती। स्वामीजी अपने देशवासियों को जो शिक्षा दे गये हैं, यहीं पर उनकी विशेषता है। पुराने जमाने में ऐसी संस्थाओं की बराबर बुरी अवस्था होती देखी गयी है। इन संस्थाओं की भी जिससे वैसी ही शोचनीय दशा न होने पाये, इस उद्देश्य से स्वामीजी का अपने मठों के अध्यक्षों से कहना है कि:—

इसलिए "वर्तमान समय में इस मठ के अध्यक्ष हैं और जो आगे होनेवाले हैं, वे सभी यह बात सदा स्मरण रखें कि यह मठ किसी तरह बाबाजी लोगों की ठाकुरबाड़ी के रूप में परिणत न होने पाये।

"ठाकुरबाड़ी से अवश्य दो चार आदमियों को थोड़ा बहुत लाभ होता है, पाँच-दस का कौतूहल दूर होता है, पर, स्मरण रहे, मठ तो सारे संसार का कल्याण करने-वाला है।"

स्वामी विवेकानन्द ने उपर्युक्त भाव की नींव डालकर इस मठ की स्थापना की। जो मठ ऐसे आदर्श की नींव पर स्थापित हुआ है, जिस पर इसके इष्ट-देवता भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन की झलक दिखायी देती है, वह उदारता की साक्षात् प्रतिमूर्ति हो, तो इसमें आश्चर्य या सन्देह की कौन सी बात है? समग्र मानव जाति ने ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म के अपूर्व समन्वय-स्वरूप श्रीरामकृष्णदेव के जीवन के जोड़ का दूसरा जीवन नहीं देखा है। इसलिए जिनलोगों ने श्रीरामकृष्ण-देव के चरित्र के साँचे में अपने आप को ढाया है अथवा जो तदनुरूप अपना चरित्र गठित करने में समर्थ हुए हैं, केवल वे ही लोग मठ के भावों से प्रभावित समझे जा सकते है। स्वामीजी ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए कहा है—

"ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म-इन चारों की समष्टि से चरित्र गढ़ना ही इस मठ का प्रधान उद्देश्य है। इसके लिए जिन साधनाओं की आवश्यकता है, वे ही इस मठ की साधनाएँ समझी जायँगी।"

इसीलिए वे दृढ़ता के साथ कहते हैं :—

"अतएव सबको स्मरण रखना चाहिए कि जिसमें इन चारों में से किसी की कमी है, उसका चरित्र श्रीरामकृष्ण-रूपी साँचे में ठीक-ठीक नहीं ढाला गया है ।

"और यह भी एक बात याद रखने की आवश्यकता है कि जो अपनी मुक्ति की चेष्टा करते हैं, उनकी अपेक्षा वे पुरुष महान् हैं जो दूसरों के कल्याण की चेष्टा करते हैं ।"

यही इस मठ की विशेषता है ।

श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव होने के पहले लोग समझते थे कि प्रत्येक मठ में किसी एक ही साधना प्रणाली का अनुष्ठान हुआ करता है । लोगों का पक्का विश्वास था कि ऐसा होना अनिवार्य है । परन्तु द्वैत विशिष्टाद्वैत और अद्वैत, इन तीनों प्रधान भारतीय दार्शनिक तत्त्वों को एक ही अनन्त ब्रह्मसत्ता की विविध अनुभूति के रूप में देखकर भगवान श्रीरामकृष्ण ने अतीन्द्रिय आध्यात्मिक अनुभूति की दृढ़ नींव के ऊपर एक ऐसे मठ की स्थापना करना संभव कर दिया, जहाँ से उस निरपेक्ष सत्य की उपलब्धि के उपाय-स्वरूप इन तीनों दार्शनिक मतों की समान सार्थकता उच्च कण्ठ से घोषित की जा सके । किसी एक ओर अधिक झुकाव होने से मठ के अन्दर कुछ एक दो त्रुटियों का प्रवेश हो जाना अनिवार्य है—इसी कारण, जिसमें यह दोष न आने पाये, स्वामीजी मस्तिष्क हृदय और हाथ इन तीनों से काम लेने के लिए समान भाव से जोर देते थे । वे जानते थे कि यदि कर्म के साथ धर्म-भाव की प्रेरणा न हो, यदि उसके साथ ही ध्यान-धारणा सद्सद्विचार तथा अन्यान्य आध्यात्मिक साधनाओं का अनुष्ठान न हो, तो वह कर्म केवल प्राणहीन समाज सेवा में ही स्थित रह जाता है । उच्च भाव और आदर्श से रहित इस प्रकार के प्राणहीन और जड़ यंत्र की तरह किये गये कर्म के द्वारा तो केवल बन्धन ही आते हैं । जब हमारा हृदय निर्मल रहता है और जब वह अपने पूर्ण विकास का अवकाश पाता है, तभी हाथ वास्तविक लक्ष्य के उद्देश्य से कार्य कर सकता है । उसी प्रकार यदि केवल विवेचना और शास्त्रचर्चा ही की जाय और उसके सिद्धांतों के अनुसार कार्य न किया जाय तो यह भी केवल असार मानसिक व्यायाम के रूप ही में रह जाती है । फिर इसी प्रकार यदि भक्ति सद्सद्विचार और कर्म से रहित हो तो वह भी व्यर्थ ही नहीं, वरन् प्रायः हानिकर भी सिद्ध होती है । सत्य को जानना, अंतकरण के सबमें गहरे प्रदेश में उसका अनुभव करना और जीवन की सब अवस्थाओं में उसके प्रकाश की उपलब्धि करना ही सर्वोच्च ब्रह्मोपलब्धि है— वास्तव में यह उस एक ही- अनुभूति के तीन प्रकार के भेद मात्र हैं । उनकी राय में वे ही आदर्श संन्यासी हैं, जो इच्छा करते ही गहरे ध्यान में मग्न हो रहें और पल भर बाद ही शास्त्र के जटिल अंशो की धारणा करने को तैयार हो जायें । वे ही संयासी फिर पूरे उत्साह से बाग में काम करें और वहाँ के फलमूल सिर पर लेकर बाजार में बेच आयें ।

मठ के कार्य किस प्रकार के होने चाहिए, इस विषय में भी स्वामीजी ने स्पष्ट रूप से कहा है—

"विद्या के अभाव से धार्मिक सम्प्रदाय की अवस्था शोचनीय हो जाती है, अतएव विद्या की चर्चा सदा चलायी जानी चाहिए ।

"त्याग और तपस्या के अभाव में विलासिता सम्प्रदाय को निगल जाती है, इसलिए त्याग और तपस्या के भाव को सदा उज्जवल रखना होगा ।

"प्रचार कार्य के कारण सम्प्रदाय की जीवनशक्ति बलवती बनी रहती है, इसलिए कभी प्रचार-कार्य से विरत होना चाहिए ।"

फिर कहते हैं:—

"संकीर्ण समाज में धर्म की गम्भीरता और प्रबलता दिखायी देती है । कम चौड़े पाटवाली नदी तेज बहती है । ढीले विचार— वाले सम्प्रदायों के भाव के विस्तार के साथ ही उसकी गम्भीरता और वेग का ह्रास होता जाता है ।

"पर आश्चर्य यह है कि समस्त् ऐतिहासिक दृष्टान्तों के परे भगवान श्रीरामकृष्ण के शरीर में समुद्रकी अपेक्षा भी अधिक गहरी और आकाश से भी अधिक विस्तृत भावराशि का समावेश देखा जाता है ।

"इससे प्रमाणित होता है कि अत्यन्त विशालता, अति उदारता और महाप्रबलता एक साथ एकत्र हो सकती है और उसी प्रकार समाज भी संगठित हो सकता है, कारण व्यष्टि की समष्टि का नाम ही समाज है ।"

निस्सन्देह श्रीरामकृष्णदेव की तरह विशाल और उदारभावापन्न पुरुष संसार में दुर्लभ हैं। पर यदि मठ के साधुगण श्रीरामकृष्णदेव को अपना आदर्श बनाये रखें और अपनी अपनी विभिन्न पद्धति के अनुसार अलग-अलग साधना-मार्गों का अवलम्बन करें तो भी उन्हें श्रीरामकृष्ण का अंग समझा जाय; हरएक को अपने व्यक्तिगत भाव-प्रकाश के लिए समान अधिकार दिया जाय तो यह कमी बहुत दूर हो सकती है और मठ के अखण्ड तथा संघबद्ध भाव की बहुत कुछ रक्षा हो सकती है। भले ही श्रीरामकृष्णदेव का इस समय शरीर विद्यमान न हो परन्तु जब तक यह उदार भाव बना रहेगा तबतक तह मठ अवश्य ही उनका सामीप्य अनुभव करता रहेगा। स्वामीजी ने और भी कहा है :—

"यह संघ ही उनका प्रत्यक्ष शरीर है और वे इस संघ में सदैव विद्यमान हैं। संघ एकमत होकर जो आदेश देगा, वही गुरुदेव का आदेश समझा जायगा। जो संघ की पूजा करते हैं, वे भगवान की ही पूजा करते हैं और जो इसे नहीं मानते, वे उनकी भी अवमानना करते हैं ।"

स्वामीजी यह भलीभाँति जानते थे कि इस प्रकार के उदार भाव की नींव पर प्रतिष्ठित संस्था में आपातत: विरोध होने की सम्भावना हो सकती है। मन बेमेल होने से ही बाहरी विरोध तथा वैमनस्य हुआ करता है। ज्यों-ज्यों भीतरी बेमेल बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों विरोध भी बढ़ता है। इसी कारण स्वामीजी ने उद्देश्य की एकता को ही संघ की अखण्डता का—एकता के बन्धन का—सबसे प्रधान उपाय बताया है। मठ के समस्त साधुओं को स्वामीजी द्वारा बताये हुए इस उपाय पर बारम्बार विचार करना उचित है—तथा अपने व्यक्तिगत जीवन में उस पर अमल करके उसकी सार्थकता की उपलब्धि करनी चाहिए। स्वामीजी ने कहा है—

"प्रेम, अध्यक्ष का आज्ञापालन, सहनशीलता और सर्वांगीण पवित्रता ही भ्रातृवर्ग में एकता स्थापित रखने का एकमात्र उपाय है।"

वास्तव में यदि हमलोग स्वामीजी की आज्ञा पालन करने में प्राणों की बाजी लगाकर चेष्टा करें, तो हमारे मठों और मिशनों में किसी प्रकार की दलवन्दियों अथवा किसी प्रकार के विरोध होने की आशंका नहीं है।

इसके बाद देखा जाता है कि और विषयों में प्रकृति उच्च होने पर भी मान और यश की आकांक्षा रूपी दुर्बलता से पिण्ड छुड़ाना और भी कठिन है—वड़े-वड़े लोग भी समय-समय पर इसके प्रलोभन में पड़कर कर्तव्य-च्युत होते देखे गये हैं। इस मान और यश की आकांक्षा से परस्पर एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या जाग उठती है—इसी से अन्त में संघ टूटकर नष्ट हो जाते हैं।

इसीलिए स्वामीजी कहते हैं :—

"हमारे श्रीरामकृष्णदेव यश या मान के लिए नहीं आये थे। फिर हम उनके सेवक हैं; हमें भी मान की इच्छा न करनी चाहिए। केवल स्वयं पवित्र रहकर दूसरों को पवित्र होने की शिक्षा देना ही हमारा प्रधान उद्देश्य है। यही उनकी आज्ञा का पालन करना है।

"इस मठ के प्रत्येक साधु को यह सोचना उचित है कि वह जो कुछ भी कार्य करे, उससे श्रीरामकृष्ण की महिमा प्रकाशित हो! वह जहाँ भी जाय और जिस किसी भी अवस्था में रहे, यह याद रखे कि वह श्रीरामकृष्णदेव का प्रतिनिधि है; दूसरे लोग उसके अन्दर से उनके दर्शन करेंगे।

"यदि यह बात सदा स्मरण रखी जाय तो पैर स्वय ही कभी बेवजह बेराह में न बहकेगा।" स्वामीजी के उपर्युक्त आदेश-पालन के लिए यदि प्राण-पण से चेष्टा की जाय, तो मठ के विभिन्न अंगों—भिन्न-भिन्न आश्रमों और समितियों—के भीतर उद्देश्य की एकता स्थापित होगी और उसी से पारस्परिक सहानुभूति, सद्भाव और सहयोगिता वर्धित होगी। समग्र मानवजाति के भीतर विद्यमान रहने वाली दुर्बलता और अवनति की छाया को मिटा डालने के लिए महातरंग का चक्र बड़े वेग से दौड़ रहा है, उसके सिरे पर भगवान श्रीरामकृष्ण हैं। हमें सब अवस्थाओं में, सब कामों में उनके सर्व-विरोध-समन्वयकारी, महामिलन-साधक, पूत-चरित्र का ध्यान कर काम में लग जाना उचित है।

मठ के समस्त अध्यक्षों और सेवकों के बीच प्रगाढ़ प्रीति का भाव रखना आवश्यक है, सेवकों को उचित है कि वे सदा अध्यक्षों का आदेश पालन करने के लिए सब तरह से तैयार रहें, उसी प्रकार अध्यक्ष भी हृदय के अंदर अनुभव करें कि हम अध्यक्ष नहीं है, हम इन सेवकों—इन कार्यकर्त्ताओं के भी सेवक हैं—आज्ञाकारी भृत्य हैं। अध्यक्ष के गुणों पर ही संघबद्ध संस्थाओं की सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है। हमारा स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया है कि उसमें संघबद्ध भाव से कोई काम करने की शक्ति का पूर्णतया अभाव है। यही हमारी जातीय या राष्ट्रीय प्रकृति या स्वभाव की एक विशेषता हो गयी है। परन्तु संघबद्ध भाव से कोई काम करके उसमें सफलता पाने की ताली है-- सम्पूर्ण ईर्ष्या-हीनता। अध्यक्षों और नेताओं को उचित है कि वे सदा अपने सहकारी और सहयोगी सेवक-भाइयों की राय लेकर उनके अनुसार अपनी कार्य प्रणाली को नियमित करें और सदा सबसे हिल मिलकर रहें।

स्वामीजी ने अध्यक्षों को लक्ष्य करके एक बार कहा था, "शासन करने कभी मत जाना। जो सब की सेवा करने को सदा तैयार रहता है, वही शासन करने के योग्य होता है। 'सिरदार तब सरदार।' दूसरे का नियंत्रण करने, दूसरों पर शासन करने—जिसे अमरीका के लोग 'bosing' कहते हैं—कभी मत जाओ। सब के सेवक बनो। तुम यदि नेता बनकर अपने को बहुत बड़ा नेता साबित करना चाहोगे तो कोई भी तुम्हारी सहायता को आगे नहीं बढ़ेगा। यदि किसी काम में सफल होना चाहते हो, तो पहले अपने 'अहं' भाव का विनाश कर डालो। कार्य की सफलता का एक और उपाय यह है कि एकाएक बहुत बड़े कार्य में हाथ मत डालो— धीरे-धीरे छोटे कामों से सूत्रपात करना चाहिए। जब देखो कि थोड़ी सी सफलता प्राप्त हुई तब कुछ आगे और बढ़ो।" प्रत्येक सेवक को अध्यक्ष की आज्ञाओं का किस प्रकार पालन करना चाहिए, इस विषय में स्वामीजी ने एक बड़े मार्के की, याद रखने योग्य बात कही है। यदि "अध्यक्ष कहे कि 'इस मगर को पकड़ो' पहले तुरन्त जाकर उसे पकड़ लो; फिर तर्क करो।" स्वामीजी ने बड़े ही खेद के साथ कहा था कि आजकल यदि भारत में सबसे बड़ा पाप अपना प्रभुत्व फैलाए हुए है तो वह है—आज्ञापालन का अभाव। सभी शासन करना चाहते हैं, शासन मानने को कोई भी तैयार नहीं। इसका प्रधान कारण है हमारे यहां के पुराने ब्रह्मचर्य व्रतपालन के नियमों का लोप हो जाना। पहले आज्ञाकारिता सीखो, सदा आरम्भ में आज्ञाकारी भृत्य का काम करना सीखो, तभी तुम्हें आज्ञाकर्त्ता बनने का अधिकार प्राप्त होगा। सेवक को अपने जीवन तक की माया छोड़कर अध्यक्ष का आज्ञापालन करने को तैयार रहना होगा।

इस विषय में स्वामीजी ने कहा है : —

"आज्ञाकारिता ही कर्मकारिता की ताली है। अतएव प्राणों का भय छोड़कर भी आज्ञापालन करना होगा। समस्त दुःखों की जड़ भय है। भय महापाप है। उसका सम्पूर्णतः त्याग करना होगा।"

मठ के अंगों और उसकी विविध शाखाओं में पारस्परिक सहयोगिता की वृद्धि के लिए स्वामीजी और भी कई बहुत ही उत्तम बातें बता गये है :—

"दूसरों की निन्दा करना ही भ्रातृभाव में विच्छेद

का मूल कारण है; अतएव किसी के प्रति ऐसा करना उचित नहीं। यदि किसी के विषय में कोई बात कहनी हो तो वह केवल उसे ही एकान्त में समझाकर कहना चाहिए।"

उनके सेवक या सेवक के सेवकों में कोई भी बुरा नहीं है। यदि कोई बुरा होता, तो यहाँ न आता। अतएव किसी को बुरा कहने के पहले 'मैं बुराई क्यों देखूँ?' यही सोचना उचित है। संघ में विच्छेद डालने की चेष्टा करने वाले मठ के साधुओं को सावधान करते हुए स्वामीजी ने जो चेतावनी दी थी, वह आज भी हमारे कानों में गूँज रही है :—

"अभ्युत्थान और शक्ति-संग्रह का एकमात्र उपाय संघबद्ध होना है। अतएव जो कोई शरीर, मन और वाणी के द्वारा इस संघ में विच्छेद डालने की चेष्टा करेगा, उसके सिर पर समस्त संघ का अभिशाप पड़ेगा और वह इस लोक और परलोक दोनों से ही भ्रष्ट हो जायगा।"

अब एक और विषय का प्रसंग छेड़ना चाहते हैं। आजकल श्रीरामकृष्ण संघ के कार्य रामकृष्ण मठ या आश्रम और रामकृष्ण मिशन — इन दो भागों में विभक्त होकर सम्पादित हो रहे हैं। इससे अनेक लोगों के मन में एक प्रकार का खटका-सा--भ्रम-सा होता है। मैं आज तुमलोगों को बता देना चाहता हूँ कि मूलत: मठ और मिशन में कोई अन्तर नहीं हैं। काम के सुभीते के लिए ही इन दो भिन्न-भिन्न नामों या विभागों की रचना की गयी है। साधारणत: अनेकों का यह विश्वास है कि मठ ध्यान-धारणा, अध्यापन—आदि का स्थान है तथा सेवा-कार्य मिशन के सुपुर्द-है। कार्यत: ऐसा हुआ अवश्य है, पर इस विषय में बहुत सी भूलें साधारण लोगों में बनी हुई हैं—उन्हें दूर करना आवश्यक है।

अभी-अभी मैंने स्वामीजी द्वारा बताये गये मठ के आदर्श और कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं, उन्हें स्मरण करते ही तुम्हारी समझ में आ जायगा कि उनकी राय में जिस प्रकार एक ओर भक्ति, पूजा, उपासना आदि है, उसी प्रकार दूसरी ओर कर्म भी हैं; एक ओर जैसे ध्यान-धारणा अध्ययन-अध्यापन को स्थान दिया गया है, वैसे ही समाज-सेवा के लिए भी स्थान है। पहले ही मैंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि स्वामीजी ने बेलुड़ मठ को एक सर्वांगपूर्ण विश्व-विद्यालय बनाना चाहा था—उसमें धर्म और दर्शन चर्चा के साथ ही साथ एक 'टेक्निकल इन्स्टिट्यूट बनाने की बात कही थी। उनके जीवित रहते इस संघ को मठ और मिशन—इन दो विभागों में विभक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई थी। अपने आदर्शों का कर्म-जीवन में प्रयोग करने के लिए पहली बार अमरीका से लौटने के कुछ ही समय बाद सन् १८९७ ई० में पहली मई को श्रीरामकृष्णदेव के गृही और संन्यासी शिष्यों को लेकर स्वामीजी ने एक समिति स्थापित की; उद्देश्य था—समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए सबसे मिलकर संघबद्ध रूप से चेष्टा करना। उन्होंने उस समिति का नाम 'श्रीरामकृष्ण मिशन' रखा। क्रमश: उसकी उन्नति और कलेवर-वृद्धि होने लगी—शाखा-प्रशाखाएँ फैलाने लगीं। अन्त में काम के सुभीते के विचार से सन् १९०९ ई० में सन् १८६० की २१वीं धारा के अनुसार इस समिति की रजिस्ट्री करायी गयी। उसी समय से केवल कानून की पाबन्दी के विचार से मठ और मिशन के बीच केवल नाम-मात्र का अन्तर रखा गया है। वास्तव में सर्व-साधारण के सुभीते के लिए ही मठ के एक अंश-विशेष का नाम रामकृष्ण मिशन रखा गया है। श्रीरामकृष्ण संघ का प्रत्येक साधु—चाहे वह जिस किसी कार्य-क्षेत्र में रहकर ही काम क्यों न करता हो—स्वामीजी जिसे वास्तव में रामकृष्ण मठ समझते थे, उसी में संश्लिष्ट है। अतएव वर्तमान मठ और मिशन के कार्यों के बीच में कोई काल्पनिक बाँध खड़ा करने की चेष्टा करना स्वामीजी की इच्छा के पूर्ण विरुद्ध है, और इस प्रकार की धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है। यह भी हमें ध्यान देना है कि जबतक वह धारणा हमारे मन से समूल नष्ट नहीं हो जाती, तब

तक हमारा कल्याण नहीं हो सकता। मठ और मिशन के आदर्शों में पार्थक्य देखने की चेष्टा ही अन्याय और अनुचित है—उसमें बहुतेरी बुराइयाँ हैं। मठ के समस्त साधुओं के प्रति स्वामीजी का यही आदेश है कि वे स्वतः अच्छे बनें और दूसरों को भी अच्छा बनने में सहायता करें; और मैंने पहले ही कहा है कि इस आदर्श को कार्यरूप में परिणत करने के लिए ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म—इन चारों प्रकार के साधना-मार्गों का सम्मिलित भाव से अवलम्बन करना होगा—स्वामीजी ने यह उपदेश दिया था। हाँ, उन्होंने यह भी कहा है कि इन चारों में से जिस ओर साधक का सबसे अधिक झुकाव हो, वह उसी को मुख्य मार्ग समझे। अतएव मठ और मिशन के आदर्श के बीच किसी प्रकार का भेद नहीं है। राहु और उसका सिर वास्तव में एक ही वस्तु होने पर भी केवल दो शब्दों के कारण जिस प्रकार हमारे हृदय में पार्थक्य का भाव जगाते हैं, ठीक वैसा ही मठ और मिशन के बीच पार्थक्य ढूँढ़ निकालने की चेष्टा भी है। इस संघ के जो साधु सेवा-कार्य में नियुक्त हैं, वे संघ के उन साधुओं की अपेक्षा किसी तरह कम नहीं हैं जो हिमालय की कन्दराओं में रहकर घोर तपस्या करते हैं।

जो लोग कुछ काल के लिए कर्मजीवन में पूर्णतया छुट्टी लेकर ध्यान-धारण और स्वाध्याय आदि में नियुक्त रहकर अपने आपको कर्मजीवन के और भी योग्य बना लेने की चेष्टा करते हैं, उन्हें भी हमलोग संघ के बहुत ही मूल्यवान अंग समझते हैं—संघ की उन्नति और उसकी जीवन-शक्ति को अटूट बनाये रखने के लिए इस प्रकार के सर्वकर्म त्यागी साधकों की भी विशेष आवश्यकता है। यह मठ क्या है—मानो सुन्दर फूलों का एक गुच्छा है – वह ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म रूपी विविध रंगों के सुगन्धित पुष्पों का बना हुआ है—इन भिन्न-भिन्न रंगों के समन्वय से ही उसका श्री सौन्दर्य इतना बढ़ा-चढ़ा है।

भाइयो, तुमलोगों से जो कुछ कहना था, वह कह चुका। हे श्रीरामकृष्ण की सन्तानगण, मेरी जो सामान्य अभिज्ञता है, उसके सहारे मैं तुमलोगों से कहना चाहता हूँ कि जबतक यह संघ भगवद्-भावों से अनुप्राणित रहेगा, तभी तक यह टिका रह सकेगा। प्रीति, उदारता, पवित्रता और निःस्वार्थ ही हमारे संघ की नींव है। यदि इसकी ठठरी के भीतर स्वार्थपरता घुन जाग तो फिर मनुष्य के कितने भी प्रयत्नों से इसकी रक्षा नहीं हो सकती। यह मठ तुम सब को उस महान् आदर्श में पूर्णता प्राप्त करने के लिए सब तरह के सुभीते दे रहा है और देने को सदा तैयार है। यदि तुम सभी लोग सम्पूर्ण रूप से मठ के अधीन रहकर उस पूर्णता की प्राप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगाकर तुल जाओ, तभी हमारे इस संघ के स्थायी और दीर्घायु होने में सहायता मिलेगी। स्वामीजी इस मठ के लिए अपने हृदय का रक्त दे गये हैं। उनकी आत्मा आज भी यहाँ विद्यमान है। यह श्रीरामकृष्णदेव की स्थूल देह है। जो महात्मागण हमसे पहले ही इस लोक को छोड़कर चले गये हैं, वे भी अपने सूक्ष्म शरीरों में यहाँ उपस्थित रहकर हर समय हमारी सहायता करने को तैयार हैं। अब हमें एक साथ ही सब पाल उड़ा देना उचित है। श्रीभगवान की कृपावायु बह रही है—पाल उड़ाते ही उस कृपावायु के सहारे हमारी नैया अपने अभीष्ट स्थान पर बहुत शीघ्र पहुँच जायगी।

धर्म की साधना ही भारत का महान् जीवन व्रत है। यदि संसार को देने के लिए हमारे पास कोई धन है, तो वह यही धर्म रूपी धन है। न जाने किस स्मरणातीत काल से इसी भूमि मे आध्यात्मिक भावों की बयार उठी है और सारे संसार की सभ्यता की गति को नियंत्रित करती रही है। हमारी उस अभागी जाति पर पिछली दस सदियों से, दुर्दैव की प्रेरणा से न जाने कितनी आँधियाँ आयीं और चली गयीं, पर यह अब भी जीवित है। इसका कारण केवल यही है कि धर्म ही हमारे जीवन का मेरुदण्ड-स्वरूप है। हम अपने व्यक्तिगत अथवा समाजगत जीवन में भले ही भिन्न-भिन्न आदर्श और कार्य लिये फिरते हों—पर श्रीभगवान ही

हमारे सब कार्यों के मध्यबिन्दु-स्वरूप है। यहाँ सच्चा महत्त्व धर्म के ही तराजू पर तौला जाता है। भगवान ने गीता में अपने अवतरण के विषय में कहा है कि जब कभी भी धर्म का ह्रास और अधर्म की बढ़ती होती है, तभी मेरा आविर्भाव होता है। उन्होंने इस प्रकार जिस अव्यय नियम पर संकेत किया है, उसी नियमानुसार इस युग में श्रीभगवान धर्म के लुप्त आदर्श का पुनरुद्धार करने के लिए पुनः आविर्भूत हुए हैं। उनके पहले भी सैकड़ों अवतार और युगाचार्यगण अँधेरे में प्रकाश दिखाने के लिए, जातीय जड़ता दूर करने के लिए तथा हमें ऊपर उठाने के लिए आये थे। पर इस वर्त्तमान युग में जैसी घोर अँधियारी रही है, उसकी अपेक्षा पिछले युगों का अन्धकार—जिसे दूर करने के लिए पहले अवतारों के आने की आवश्यकता हुई थी—नहीं के बराबर था। उसे एक प्रकार आलोक ही कह सकते हैं। स्वामीजी ने बेलुड़-मठ की स्थापना के कुछ पहले "हिन्दू धर्म क्या है?" नाम की एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की थी, उसमें उन्होंने लिखा है :—

"परन्तु वर्तमान युग की इस गहरी अमावस्या की रात्रि की तरह, जो बहुत ही अल्प समय के लिए बची है और जो लगभग बीत चुकी है, पिछली किसी भी अँधेरी रात ने इस पुण्य-भूमि को आच्छादित नहीं किया था। इस पतन की गहराई की अपेक्षा पूर्व के सब पतन गोष्पद-से छिछले थे।"

इसीलिए कहता हूँ कि हमें तथा समग्र जगत् को तमोमयी जड़ शक्ति के बन्धन से छुटकारा दिलाने के लिए श्रीभगवान ने अपनी अपार करुणा के वशवर्ती हो, पुनः पूर्णावतार ग्रहण किया है।

पहली बार अमरीका से लौटने के बाद सन् १८९७ ई० के आरम्भ में कलकत्ते की जनता ने स्वामीजी को जो अभिनन्दन-पत्र अर्पण किया था, उसका उत्तर देते हुए उन्होंने अपने श्रीगुरुदेव को लक्ष्य करके कहा था :—

"हमलोग संसार के इतिहास में सैकड़ों महापुरुषों की जीवनियाँ पाठ करते हैं। अब हमलोग जिस रूप में वे जीवनियाँ पाते हैं, उनमें उन महापुरुषों के शिष्य-प्रशिष्य द्वारा किये गये कितने ही परिवर्त्तनों और परिवर्धनों का परिचय पाया जाता है। हजारों वर्षों से उन महापुरुषों की जीवनियाँ घिस-माँज और काट-छाँटकर चिकनी बनायी गयी है, परन्तु जिस जीवन को मैंने अपनी आँखों से देखा है, जिसकी छाया में मैंने वास किया है, जिनके पैरों तले बैठ सब कुछ सीखा है, उन श्रीरामकृष्णदेव के सदृश उज्ज्वल और महिमान्वित जीवन मेरी राय में और किसी भी महापुरुष का नहीं है।"

श्रीरामकृष्णदेव के आविर्भाव से संसार में धर्म का जो भारी प्रवाह आया है, समाज के ऊपर उनके आने के पहले समाज में सर्वत्र छोटी-छोटी बावड़ियाँ दिखायी देती थीं। जब वह भारी बाढ़ आ रही थी तब किसी की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी थी, किसी ने भलीभाँति उसे देखा नहीं था, उसकी गूढ़ शक्ति के विषय में किसी ने सोचा नहीं था—क्रमशः वह जरा-जरा करके बढ़ने लगी—होते-होते वह अन्य सब छोटे-छोटे जलाशयों को मानो निगल गयी—अपने में मिलाकर अपना कलेवर बढ़ा लिया। इस प्रकार बहुत ही विशाल आकार और बड़ी भारी बाढ़ का रूप धारण कर समाज के ऊपर इतने जोर से गिरी कि उसकी गति को कोई रोक न सका।

वही श्रीरामकृष्णदेव, वही विराट्पुरुष—जिनकी बराबरी के दूसरे महापुरुष को संसार ने कभी नहीं देखा है—तुम्हारे पीछे खड़े हैं। हमारे पूर्व पुरुषों ने कितने ही महान् कार्य किये हैं—तुमलोगों को उनसे भी बड़े कार्य करने होंगे। हममें से प्रत्येक मनुष्य को विश्वास करना होगा कि संसार के सब लोग अपना कर्त्तव्य कर चुके हैं—अब संसार की पूर्णता के लिए जितना कार्य शेष रह गया है, उतना मुझे ही करना होगा। यह भार हमें अपने कंधों पर लेना ही होगा।

प्राचीन बौद्ध मठों ने संघबद्ध होकर संसार का कल्याण-साधन करने की सर्वान्तःकरण से चेष्टा की थी, उन्होंने

अपने अभीष्ट की सिद्धि में बहुत कुछ सफलता भी पायी थी। जिस समय से इतिहास लिखने की प्रथा आरम्भ हुई है, उसी युग से यह देखने में आता है कि बौद्ध संन्यासियों ने अपनी संघशक्ति के सहारे मनुष्य का वहाँ तक कल्याण किया था, जहाँ तक सम्भव है। यदि वर्तमान कुछ एक प्रधान धर्म सम्प्रदायों और दर्शन-शास्त्रों से अज्ञात इतिहास कभी लिखा जाय, तभी दुनिया यह जान सकेगी कि इन निर्भीक बौद्ध भिक्षुओं ने मठों की उन्नति और परिपुष्टि के लिए कितनी सहायता की थी। जब तक इन बौद्ध मठों में श्री बुद्धदेव के समय का आदर्श, पवित्रता और त्याग का भाव अक्षुण्ण रहा, तब तक बौद्ध भिक्षुगण जहाँ कहीं भी गये हैं, वहीं उनके प्रभाव की गति अबाधित रूप से बहती रही, परन्तु जब उनमें से वह त्याग का भाव घटने लगा, उनकी पवित्रता का ह्रास हो चला, तभी से श्री बुद्धदेव के धर्म में अवनति के लक्षण प्रकट होने लगे। इतिहास से हमें यह पहली शिक्षा लेनी होगी। दूसरी बात सीखने योग्य यह है कि भारत में बुद्धदेव के बाद भी समय-समय पर किसी-किसी व्यक्ति विशेष ने आध्यात्मिक उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचकर सिद्धावस्था प्राप्त की है; पर उन्होंने आसपास के लोगों के लिए कभी सोचने का यत्न नहीं किया। उन्होंने स्वयं एक महान् आदर्श प्राप्त कर लिया था इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु उनके द्वारा प्राप्त किये गये उस आदर्श को सामाजिक जीवन पर प्रतिफलित होने का उचित आधार न मिलने के कारण, उस व्यक्ति विशेष के अन्तर्धान होने से कुछ ही उपरान्त वह भी विलुप्त हो गया। इतिहास से हमें यह दूसरी शिक्षा भी ग्रहण करनी होगी। फिर पिछली कई सदियों के अन्दर हमारे इस देश में अनेक मठों और आश्रमों की स्थापना हुई है। यद्यपि, उन मठों और आश्रमों ने थोड़े से आदर्शियों को उनकी व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति में सहायता कर उनका उपकार किया है, तथापि वे मठ और आश्रम समग्र मानव-जाति का कोई कल्याण करने में समर्थ नहीं हुए हैं। कारण समग्र मानव-समाज की सेवा को उन्होंने अपनी आध्यात्मिक साधना प्रणाली में सम्मिलित नहीं किया था। इतिहास हमें यह तीसरी शिक्षा देता है।

स्वामीजी ने, अपने इस मठ का आदर्श निश्चित करने के पहले इन शिक्षाओं का भलीभाँति मनन किया था। इसके बाद वे 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'—अपनी आत्मा की मुक्ति और संसार के कल्याणसाधन रूपी सर्वोच्च आदर्श के लिए जीवन लगाना, यही हमें बता गये हैं।

श्रीरामकृष्ण की सन्तानो! तुम सभी लोग सर्वान्तःकरण से उच्च आदर्श के साँचे में अपना जीवन ढालने की चेष्टा कर रहे हो। तुम लोगों में से प्रत्येक पर मेरा अटूट विश्वास है। तुम इस आदर्श को कार्यरूप में परिणत करने के लिए, अपने व्यक्तिगत सुख-स्वच्छन्दता के प्रलोभन को— चाहे वह कितना ही बलवान क्यों न हो—अपने मन से हटाने की चेष्टा में तनिक भी कमी नहीं कर रहे हो; और मैं अपने दिव्य नेत्रों से देख रहा हूँ कि भगवान श्री रामकृष्ण जो हमारे जीवन की ज्योति और पथ-प्रदर्शक हैं—तुम्हारे पीछे-पीछे रहकर तुम्हारे भीतर से कार्य कर रहे हैं। तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, उसके पीछे उनका मंगलमय हाथ लगा हुआ है। यह केवल उन्हीं की कृपा है कि इतने अल्प समय में तुम लोगों के कार्य, में इतनी सफलता प्राप्त हुई है। जबतक तुम लोगों का उनपर विश्वास रहेगा, जब तक तुम लोग अपने आपको उनके हाथों का यन्त्र-स्वरूप समझते रहोगे, तब तक संसार की कोई भी शक्ति—चाहे वह कितनी भी प्रबल क्यों न हो—तुमको अपने स्थान से तनिक भी डिगा न सकेगी। हममें से प्रत्येक व्यक्ति परम पिता पर दृढ़ विश्वास रखकर यह कह सकता है, "मैं अपने भाव पर दृढ़ रह अपने निर्दिष्ट स्थान पर मजबूती के साथ होकर संसार को हिलाऊँगा—उसमें जागृति पैदा करूँगा।" मैं सर्वान्तःकरण से तथा दृढ़ता के साथ तुमसे कहता हूँ कि सामयिक असिद्धि से तुम कभी विचलित या हतोत्साह न होओ। बार-बार की असफलता को अपने लक्ष्य पर पहुँचाने वाला सोपान

समझो। सिद्धि और असिद्धि दोनों में ही समान भाव से रहकर उनमें विश्वास रखते हुए कार्य करते रहो—तुम्हारी जय अवश्यंभावी है—पूर्ण निश्चित है। मेरी प्रार्थना सदा यही है कि तुम लोग उन पर निर्भरशील बने रहो। धनुष्य पर से छोड़े गये तीर की तरह, निहाई पर पटके गये हथौड़े की तरह, लक्ष्य पर चलायी गयी तलवार की तरह तुम अचूक सन्धान बनो। तीर यदि निश्चित लक्ष्य पर नहीं पहुँचता, तो वह असन्तुष्ट नहीं होता, हथौड़ा यदि निश्चित स्थान पर नहीं पड़ता तो वह अप्रसन्न नहीं होता; तलवार भी यदि लड़ाके के हाथ से टूट जाय तो वह अपने लिए विलाप नहीं करती, परन्तु बनने, व्यवहार में आने और टूटने के समय एक प्रकार का आनन्द होता है—फिर, जब उनका नाम समाप्त हो जाता है और जब वे पड़े रहते हैं, तब भी वही आनन्द रहता है।

मैं तुम सब लोगों के लिए भगवान श्री रामकृष्ण के आशीर्वाद की याचना करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वे तुम लोगों को इसी जीवन में सत्य की उपलब्धि के लिए उचित बल और साहस प्रदान करे।

इस महासम्मेलन में प्रेम और शुभेक्षा का स्रोत बहता रहे, यही मेरी कामना है। अन्त में मैं अब भारत के प्राचीन महर्षिगण द्वारा उच्चारित वेदवाणी की प्रति-ध्वनि, के साथ अपने वक्तव्य का उपसंहार करता हूँ :—

मधु वाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धव :।
माध्वीर्नः सन्तु ओषधीः।
मधु नक्तम् उतोषसी।
मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिताः॥
मधुमान् नो वनस्पतिः॥
मधुमान् अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥
ॐ मधु ॐ मधु ॐ मधु।

मधुमय होकर बहे सदा यह सुन्दर सुखद समीर।
मधुमय बने बहे धरती पर शीतल सरिता-नीर॥
ओषधियाँ सब मधुमय होवें, हरें दुःखद जन पीर।
रैन-दिवस मधुमय हो जावें, मधुमत हो रवि वीर॥
भूतल के कण-कण में छाये मधुमय स्वर गम्भीर।
पूर्ण वनस्पति मधुमय होवें, हरे हमारी पीर॥
गायें अपना मधु बरसावें, सदा हमारे तीर।
मधु से पूर्ण चराचर होवे, मधुमय जगत्-शरीर॥
ॐ मधु ॐ मधु ॐ मधु।

●

"यह नवीन युगधर्म समग्र जगत्, विशेषतः भारतवर्ष के लिए कल्याणप्रद है तथा इस नवीन युगधर्म के प्रवर्तक भगवान श्रीरामकृष्ण पूर्वकालीन श्रीयुगधर्मप्रवर्तकों के पुनःसंस्कृत प्रकाशस्वरूप हैं—हे मानव, यही विश्वास करो, इसको धारणा करो।"

—स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण संघ और भारत का पुनर्निर्माण

श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द

[रामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय महाधिवेशन (१९८० ई०) में रामकृष्ण संघ के तत्कालीन महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज का अंगरेजी में दिया गया उद्घाटन भाषण। हिन्दी रूपान्तरकार हैं— विवेक शिखा के सहायक संपादक श्याम किशोर।—सं०]

श्रीरामकृष्ण की सन्तानों,

मैं तुम सबका यहाँ स्वागत करता हूँ। कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष के द्वारा अभी तुम्हारा स्वागत हो चुका है। मठ एवं मिशन की ओर से यहाँ मैं तुम सबका स्वागत करता हूँ। वे, जिन्होंने प्रथम महाधिवेशन में भाग लिया, वे प्रख्यात आत्माएँ, श्रीरामकृष्ण की संततियाँ, वे आदि संरक्षक, स्थूल रूप में वे हमलोगों के बीच नहीं हैं। किन्तु मुझे विश्वास है कि इसे देखने के लिए कि इस संगठन का हम उचित दिशा-निर्देशन कर रहे हैं, वे यहाँ हैं। यद्यपि स्थूल आंखों से उन्हें देखने में हम सक्षम नहीं हो सकते हैं तथापि मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे यहाँ हैं।

व्यक्तिगत रूप से हम सभी अलग-अलग हैं किन्तु समग्र रूप से एक ही हैं। हम श्रीरामकृष्ण के—रामकृष्ण संघ के—अंश हैं और उस संघ को मैं अपने प्रणाम निवेदित करता हूँ। व्यक्तिगत रूप से, अलग-अलग व्यक्ति के रूप में, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ एवं स्वामीजी की ओर से मैं तुम सब को अपने आशीर्वाद देता हूँ। वे देखें कि हमारा जीवन उद्देश्यपूर्ण एवं सफल है, और स्वार्थसिद्धि में बर्बाद नहीं हुआ है, बल्कि सबके कल्याण एवं सुख के लिए—बहुजन हिताय बहुजन सुखाय—व्यतीत हुआ है। इसे आगे बढ़ाने के लिए वे सब तुम्हें बल प्रदान करें।

अब मेरा व्याख्यान दिया जाने वाला है। चूँकि मैं थोड़ा वृद्ध और शारीरिक रूप से लाचार हूँ, अतः अपना व्याख्यान पढ़ने में मैं सक्षम नहीं हो सकूँगा। मेरा व्याख्यान स्वामी वन्दनानन्द के द्वारा पढ़ा जाएगा। स्वामी वन्दनानन्द के द्वारा पठित उद्घाटन-भाषण का मूलरूप :

श्रीरामकृष्ण के अंतरंग शिष्य एवं संघ के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी शिवानन्दजी महाराज के नेतृत्व में लगभग चौवन वर्ष पूर्व इसी स्थान पर रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन का प्रथम महाधिवेशन आयोजित किया गया था। अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप में गुरु महाराज के दूसरे अंतरंग शिष्य, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन सचिव, स्वामी सारदानन्दजी महाराज थे। अधिवेशन का उद्देश्य सदस्यों के बीच विचार-विनिमय करना, उनकी निष्ठा को आदर्श के प्रति सुदृढ़ करना, तथा इसके कार्यान्वयन के लिए नयी शक्ति का संचार करना और फिर उन लोगों के बीच बन्धुत्व एवं सहकारिता के बन्धन को सशक्त करना था। वर्तमान महाधिवेशन का लक्ष्य एवं उद्देश्य भी यही, अर्थात् संघ को इन्हीं मार्गों पर सुदृढ़ करना है। 'संघ' शब्द का प्रयोग मैं व्यापक अर्थ में कर रहा हूँ। प्रायः इसका प्रयोग केवल संन्यासियों के संगठन को सूचित करने के लिए किया जाता है। मैंने इस शब्द का प्रयोग साधारण भक्तों को भी सम्मिलित करने के लिए किया है।

प्रथम महाधिवेशन का आयोजन जिस समय हुआ था, हम लोग विदेशी शासन के अधीन थे और समाज में जीवन की स्थितियाँ किंचित् भिन्न, यद्यपि अधिक प्रशंसनीय, थीं। अब विगत तैंतीस वर्षों से हम एक

स्वतंत्र राष्ट्र हो गये हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश, यद्यपि कुछ हद तक स्थितियाँ सुधरी हैं, तथापि अन्य अनेक दिशाओं में स्थितियाँ बदतर भी हो गयी हैं। देश के प्रत्येक हिस्से में, हर समाज में आदर्श एवं नैतिकता की दृष्टि से स्थितियों को हम बदतर पाते हैं। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है; तुम सब इसे अच्छी तरह जानते हो। किसी ईमानदार एवं खरे मनुष्य के लिए ऐसे वातावरण में रहना बहुत कठिन हो गया है। वर्तमान परिस्थितियाँ अपरिहार्य प्रतीत होती हैं, क्योंकि जब किसी सभ्यता में अध:पतन एवं विघटन की प्रवृत्ति की शुरुआत हो जाती है, इसके प्रवाह को रोकने की हमारी क्षमता तथा इसके ठहराव से पहले अपनी निष्पत्ति तक यह प्रवृत्ति तीव्र गति से आगे बढ़ती जाती है। ऐसी परिस्थिति आज केवल भारत में ही नहीं; बल्कि सारे संसार में है। यह धर्म की उपेक्षा एवं भौतिकवाद के अनुसरण का फल है जो पश्चिमी देशवासियों के जीवन का लक्ष्य बन गया और वहाँ से भारत सहित समस्त विश्व में फैल गया।

अगर भारत धर्म का परित्याग कर दे, तो तत्काल ही इसका अन्त हो जाएगा, क्योंकि शताब्दियों से धर्म इसके सांस्कृतिक जीवन का प्रमुख आधार रहा है। इसलिए, इसके आदर्श को बदलना अब न संभव है, और न यह आवश्यक ही है। हम प्राय: सुनते रहते हैं कि हमारा वर्तमान पतन हमारे धर्म के कारण हुआ है, किन्तु स्वामी विवेकानन्द का कथन ठीक इसके विपरीत है। उनका कहना है, धर्म का उसके सच्चे अर्थ में अनुसरण नहीं करना ही हमारे पतन का कारण है।

इस मामले को पुन: व्यवस्थित करने के लिए, हमें मात्र कुछ अंधविश्वासों का अनुसरण नहीं कर, धर्म के वास्तविक अर्थ की ओर लौटना होगा। धर्म के वास्तविक अभिप्राय को हमें जानना चाहिए। जिस सच्चे धर्म से हम भटक गये थे, उसकी ओर ले जाने के लिए पिछली सदी में इस देश में दो महान् आध्यात्मिक विभूतियों—श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द—का प्रादुर्भाव हुआ था। श्रीरामकृष्ण ने यह उपदेश दिया कि जीवन का लक्ष्य ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करना है। आधुनिक वैज्ञानिक विचारों से प्रभावित संशयी मनुष्यों के समक्ष उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा था कि ईश्वर सत्य है और उन्होंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है, तथा सम्यक् विधि के द्वारा कोई भी उसका प्रत्यक्षीकरण कर सकता है। इस घोषणा ने ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दुनिया के समस्त संदेहों एवं आपत्तियों को समाप्त कर दिया। श्रीरामकृष्ण के अनुसार, चरम सत्य का प्रत्यक्षीकरण अथवा उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति ही धर्म है। उन्होंने धर्मग्रंथों के वास्तविक अर्थ को बताया जिसे भुला दिया गया था अथवा जिसकी व्याख्या अनुचित ढंग से की गयी थी। उन्होंने पुन: कहा कि सभी धर्म ईश्वरोपलब्धि की ओर ले जाते हैं और वह भी प्रत्यक्ष अनुभूति के द्वारा, जो आधुनिक वैज्ञानिक मानसिकता को संतुष्ट करने का एकमात्र प्रमाण है। त्याग के तीव्र भाव, जिसने श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में सोने और मिट्टी को समान बना दिया था, के द्वारा उन्होंने धन के पीछे भागने वाले वर्तमान समाज को यह दिखाया था कि सभी प्रकार के धन-संचय एवं दूसरों की ज़मीन को हड़पना 'अहंकारों का अहंकार' है। उन्होंने यह भी बतलाया कि लोगों की जाति, धर्म और रंग का विचार किये बिना एक ही आत्मा सबमें निवास करती है। वही आत्मा अमीर और गरीब, ऊँच और नीच, मूर्ख और पंडित तथा प्रत्येक नर या नारी—चाहे वे जिस किसी जाति के या की हैं—में विद्यमान रहती है। ये भिन्नताएँ काल्पनिक तथा मनुष्य के द्वारा निर्मित हैं। ये भिन्नताएँ समुद्र की सतह पर तरंगों के समान हैं; जिसके नीचे केवल पानी है। यहाँ इसी प्रकार, ये भिन्नताएँ मात्र सतही हैं, सबके भीतर एक ही आत्मा विद्यमान है। इस दृष्टिकोण से, सभी मनुष्य एक हैं और राष्ट्रों, धर्म अथवा जातियों के बीच किसी प्रकार का संघर्ष जिसे आज हम सारे संसार में देखते हैं, नहीं होना चाहिए। इस शिक्षा के परिणामस्वरूप, उन्होंने 'शिव-भाव से जीव सेवा करने को कहा, और इस भाव से 'जीव' की सेवा

ईश्वरानुभूति प्राप्त करने की ओर ले जायगी। इस प्रकार उन्होंने कर्म एवं पूजा में सदियों पुराने परस्पर विरोधों के बीच समन्वय स्थापित किया। कर्म पूजा में परिवर्तित हो सकता है, यदि उसे सही भाव से किया जाय।

श्रीरामकृष्ण का यह सार्वभौमिक संदेश सिर्फ भारत के लिए ही नहीं, बल्कि सारे संसार के लिए है। हमें सम्पूर्ण जगत् के साथ इसका भागी होना चाहिए, क्योंकि मात्र यही एक साधन है जिसके द्वारा हम अपना भी कल्याण कर सकते हैं, क्योंकि 'विस्तार ही जीवन है और संकोच ही मृत्यु'। 'हमने इसे पहले भी बार-बार किया है और इस युग में हमें इसे एक बार फिर करना है।' सारा विश्व श्रीरामकृष्ण के संदेश की प्रतीक्षा कर रहा है—यह इस तथ्य से देखा जा सकता है कि जहाँ कहीं ठाकुर का संदेश पहुँचा है, वहाँ इसे बड़े चाव के साथ ग्रहण किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने—'शिव-भाव से जीव सेवा करो'—श्रीरामकृष्ण की इस एक विशेष शिक्षा पर जोर दिया और अपने द्वारा स्थापित मठ और मिशन के सामने—आत्मनो मोक्षार्थं जगद्हिताय च (अपनी मुक्ति एवं विश्व का कल्याण)—इस आदर्श को रखा जो विश्व में शांति स्थापित करने के लिए वर्तमान युग में परमावश्यक था। उन्होंने अद्वैत वेदान्त को, जो उस समय तक वन के आश्रमों एवं मठों तक सीमित था, मानव के दैनिक जीवन में लाना चाहा था। इसके कार्यान्वियन के लिए उन्होंने श्रीरामकृष्ण की शिक्षा—'शिव-भाव से जीव-सेवा करो'—को प्रधान सूत्र पाया।

स्वामीजी ने पाया कि मोक्ष के राष्ट्रीय आदर्श को बिना ठेस पहुँचाए देश को पुनर्जीवित करने के लिए इस आदर्श के द्वारा वे लोगों में कार्यशीलता ला सकते थे। उनके लिए इस दिशा का पहला कदम जनसमूह एवं स्त्रियों को शिक्षा देना था। सचमुच, वे कहा करते थे कि जनसमूह एवं नारियों की उपेक्षा ही भारतवर्ष के पतन के दो प्रमुख कारण हैं; 'मैं मानता हूँ कि जनसमूह की उपेक्षा ही सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप है और वही इसके पतन के कारणों में से एक है। जब तक भारत की जनता को एक बार पुनः अच्छी शिक्षा, अच्छा भोजन तथा अच्छी देखभाल नहीं प्रदान की जाती है, तब तक राजनीति का कोई परिमाण किसी काम का नहीं है। अगर हम भारत को नया जीवन प्रदान करना चाहते हैं, तो हमें उनके लिए अनवरत काम करना होगा।' हमें पिछड़े हुए लोगों को सांस्कृतिक स्तर पर उठाना है और यह नहीं सोचना है कि 'उन्हें छूना अथवा उनके साथ बैठना दूषित करता है'। यह उस वेदान्त की शिक्षा नहीं है जिस पर हमें इतना गर्व है। फलस्वरूप, अपने आध्यात्मिक आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने में हम विफल रहे हैं, और इसी ने भारत को विनष्ट किया है। ऊँची जातियों एवं धनी वर्गों को इन पिछड़े और दरिद्र लोगों पर किये गये अपने दुर्व्यवहार तथा अत्याचार को समाप्त कर देना चाहिए और उनकी सेवा कर अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहिए। एक मात्र यही इस देश के पुनर्निर्माण में हमारी मदद करेगा। हमें शिक्षा एवं संस्कृति प्रदान करनी चाहिए, उनके बीच अपनी आध्यात्मिक यथार्थताओं को फैलाना चाहिए, तथा कृषि, कुटीर-उद्योग आदि के आधुनिक तरीकों को लागू कर उनके आर्थिक स्तर को ऊपर उठाना चाहिए। भारत की आधुनिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए, देश के प्रत्येक हिस्से में, समाज के सभी स्तरों तक श्रीरामकृष्ण के सर्वव्यापक संदेश को फैलाना और भाग्यहीन पिछड़े तथा जनजातीय लोगों को ऊपर उठाना, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से उन्हें सम्पन्न करना तथा सभी प्रकार की स्वार्थपरता, जो सम्पूर्ण राष्ट्र के विनाश के लिए देश में—विशेष रूप सेकुछ ही में—हावी है, को दूर करने के लिए समाज में आदर्श एवं नैतिक सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

नारियों को भी अच्छी तरह शिक्षित होना चाहिए जिससे बिना पुरुष के हस्तक्षेप के वे अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकें। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, हम

पाते हैं कि इस दिशा में कुछ प्रगति हुई है, किन्तु इससे भी अधिक करने की आवश्यकता है। स्वामीजी ने कहा था, 'शक्ति के बिना विश्व का पुनरुद्धार सम्भव नहीं है........ श्रीमाँ का अवतार भारत में उस अद्भुत शक्ति का संचार करने के लिए हुआ है और उस शक्ति को केन्द्र बनाकर संसार में एक बार पुनः गार्गी और मैत्रेयी आविर्भूत होंगी।' उन्होंने कुछ शिक्षित स्त्रियों से संन्यास का जीवन धारण करने तथा लड़कियों की शिक्षा को नियंत्रित करने की, जिससे वे आदर्शमयी नारियों की तरह प्रशिक्षित हो सकें, अपेक्षा की। उनकी इच्छा थी कि संन्यासिनियाँ इस प्रकार के कार्य को गाँव-गाँव में ले जायें, जिससे सारा देश, विशेषकर पिछड़े हुए लोग, लाभान्वित हो सकें। तुम सब जानते हो कि स्वामीजी द्वारा इच्छित इस प्रकार का एक संगठन अपना अस्तित्व ग्रहण कर चुका है तथा स्त्रियों के उन्नयन के लिए भारत के विभिन्न भागों में स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहा है।

मैं इस बात का उल्लेख करना चाहूँगा कि सदियों से पोषित अपनी राष्ट्रीय प्रकृति के सहारे ही भारत प्रगति करेगा। धार्मिक आचार के बिना भारत में कुछ भी सफल नहीं होगा। धर्म में भी, जो कुछ भी भारत के सार्वभौम आदर्श के प्रतिकूल है, वह भारत के लिए प्रिय एवं स्वीकार्य नहीं होगा। मैंने जो कुछ कहा है, उनका संन्यासी एवं गृहस्थ शिष्य दोनों के द्वारा अब तक कमोवेश व्यवहार किया गया है। मैं विशेष रूप से गृही शिष्यों का उल्लेख करता हूँ, केवल व्यक्तियों का नहीं, वल्कि अनेक संस्थाओं का भी स्मरण कर रहा हूँ जो श्रीरामकृष्ण के नाम से सम्बद्ध होकर अस्तित्व में आयीं तथा गृहस्थ भक्तों द्वारा स्थापित हुईं और संचालित हो रही हैं। वे यहाँ आमंत्रित हुए हैं ताकि इस महाधिवेशन तथा इसकी कार्यवाहियों से वे पूरी तरह लाभान्वित होने का अवसर पा सकें। मैं श्रीरामकृष्ण के सभी अनुयायियों से आग्रह करता हूँ कि वे दोनों प्रकार से, व्यक्तिगत रूप से तथा देश के विभिन्न भागों में इसी तरह की संस्थाओं के समान अधिक-से-अधिक संस्थाओं की स्थापना कर, राष्ट्र के पुनर्निर्माण में उत्साहपूर्वक लग जायें, क्योंकि संन्यासियों द्वारा किये गये कार्य यद्यपि अपने-आप में प्रचुर हैं, तथापि देश की आवश्यकताओं की तुलना में, वास्तव में, अभी भी वे बहुत कम हैं। साधारणतया तुम लोगों के सामने मैंने आजकल के अपने देश की आवश्यकताओं तथा उनके प्रति हमारी जिम्मेवारी को रखा है। इस महाधिवेशन में अन्य वक्तागण इन आदर्शों और समाज में इन्हें संगठित रूप से क्रियान्वित करने के व्यावहारिक तरीकों पर तुम्हें प्रकाश डालेंगे।

अन्त में, मैं तुमलोगों से स्पष्ट कहना चाहूँगा कि इतिहास में हम पाते हैं कि प्रत्येक विशाल सभ्यता के मूल में महान् एवं महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक पुरुष थे, जिनके जीवन तथा संदेश ने एक नयी सभ्यता का आरम्भ करने की आवश्यक प्रेरणा दी और इस प्रकार एक नयी व्यवस्था, एक नये समाज के निर्माण की प्रेरणा दी। यह ईसाई-सभ्यता, मुस्लिम-सभ्यता, बौद्ध-सभ्यता और हिन्दू-सभ्यता के साथ भी लागू होता है। श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक संदेशों में एक नयी सभ्यता के उद्घाटन की अंतःशक्ति है जिसके संकेत हम विश्व के विभिन्न भागों में चारों ओर देख रहे हैं। महान् विचारकों द्वारा लिखे गये बहुत से ग्रंथों में उनके संदेश तथा भारतीय जीवन-पद्धति की चर्चा की गयी है। इसलिए, हमलोगों के ऊपर इस आदर्श के अनुसार जीने तथा उनके संदेशों को फैलाने का बहुत बड़ा दायित्व है जिससे एक नयी सभ्यता, एक नयी व्यवस्था—एक ऐसा समाज जिसमें संघर्ष एवं घृणा नहीं, वल्कि मैत्री एवं प्रेम हो—शीघ्रातिशीघ्र अस्तित्व में आ सके।

इस पवित्र स्थान पर श्रीरामकृष्ण, श्री माँ, स्वामीजी एवं उनके गुरुभाइयों की ओर से मैं तुम सबका स्वागत करता हूँ। उनके आशीर्वाद हम सब पर बरसें। मुझे विश्वास है कि उनकी कृपा से हम सभी समस्याओं का, जो हमारे समक्ष खड़ी हैं, समाधान करने तथा कोई त्रुटि, जो विगत चौवन वर्षों के अन्तराल में घुस आयी

होगी, को निकाल देने में सक्षम हो जायेंगे और अपने तथा विश्व के कल्याण के लिए और अधिक कर्मठता के साथ संघ को आगे बढ़ायेंगे।

अंत में, मैं प्रार्थना करता हूँ:—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
... ...
समानी व आकूतिः समान हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

(अपने गंतव्य की प्राप्ति में तुम सब एक होओ; एकविध वाक्य का प्रयोग करो; तुमलोगों का मन समूह समान रूप से व्यक्त हो।------तुमलोगों का विवेक उत्तम हो; तुमलोगों के हृदय समान हों; तुमलोगों के संकल्प समान हों; और तुम सब परम एक होओ। ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!)

*

श्रीरामकृष्ण परमहंसोपनिषद्

—स्वामी हर्षानन्द

[उपनिषदों को, जिनका लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति के आकांक्षिओं के समक्ष परमसत्ता के स्वरूप एवं उसे उपलब्ध करने के साधन को उद्घाटित करना है, उचित ही आत्मा का हिमालय कहा गया है। श्रीरामकृष्ण एक जीवन्त उपनिषद् थे जिन्होंने इस बात पर बल दिया कि मानव-जीवन का प्रयोजन ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करना है, कि ईश्वर के साथ संलाप किया जा सकता है तथा उन्हें पाने के लिए व्याकुलता की मुख्य आवश्यकता है। रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष श्रीमत स्वामी हर्षानन्द जी ने महान् गुरु श्रीरामकृष्ण के प्रमुख उपदेशों को औपनिषदिक मंत्रों के रूप में सूत्रबद्ध किया है तथा अँग्रेजी में मुक्त अनुवाद के साथ इन सूत्रों के महत्व पर लघु टीका भी प्रस्तुत की है। वेदान्त केसरी, मद्रास में पूर्व प्रकाशित इस उपनिषद के अंग्रेजी में प्रस्तुत अनुवाद एवं टीका का हिन्दी रूपान्तर किया है डॉ० केदारनाथ लाभ ने।]

प्रस्तावना

उपनिषदें भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों में से अनेक सिद्धान्तों के आधारभूत शास्त्रीय ग्रंथ हैं। यद्यपि उपनिषदों की संख्या बहुत अधिक है जिनके भिन्न-भिन्न नाम और भिन्न-भिन्न उपदेश हैं, किन्तु हिन्दू विचार-परम्परा ने सदैव उन्हें— कम से कम सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ही सही —एक इकाई के रूप में माना है।

'उपनिषद्' शब्द की व्याख्या गोपनीय एवं पवित्र उपदेश के रूप में की गयी है जिसे शिष्य ने अपने आध्यात्मिक गुरु के निकट (उप = निकट) उनके चरणों के नीचे (नि = नीचे) बैठकर प्राप्त किया है। यह उपदेश शिष्य के अज्ञान को नष्ट करता है, उसे बन्धन-मुक्त करता है तथा परम सत्य की ओर ले जाता है (सद् = नष्ट करना, मुक्त करना, ले जाना)। चारुतापूर्ण

संक्षिप्तीकरण जैसे यु.एन.ओ., नाम या डी.एन.ए.(UNO, NAM, DNA,) करने की धुन को आधुनिक युग की विशेषता कहा जाता है। उसी प्रकार की व्याख्या करने का प्रयास यहाँ किया जा सकता है: उपनिषद् वह धर्म-ग्रंथ है जो विश्व के मरुस्थल में अत्यन्त प्यासे व्यक्ति के लिए मधुर पेय जल (उ=उदक=जल) की भाँति है, जो पुनर्जन्म के वृक्ष को काटने में किसी व्यक्ति की सहायता कुठार (प=परशु=कुठार: कुल्हाड़ी) की भाँति करता है, जो संसारिक जीवन के थके यात्रियों को एक मधुर गृह (नि = निलय = गृह) का आश्रय प्रदान करता है और अन्ततोगत्वा उसकी आदिम अज्ञानता को विनष्ट(सद् = नष्ट करना) कर देता है।

श्रीरामकृष्ण के उपदेश इन सभी परिभाषाओं या व्याख्याओं के अनुसार पूर्णतः उपयुक्त हैं। इसलिए यहाँ उन्हें उपनिषद् के नाम से अभिहित तथा क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है।

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

'पूर्णब्रह्म परमात्मन् हम दोनों (गुरु-शिष्य) की साथ-साथ (ज्ञान को उद्घाटन कर) रक्षा करें। वे (कृपापूर्वक ज्ञान का फल प्रदान कर) हम दोनों की रक्षा करें। हम दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें। हम दोनों की पढ़ी हुई विद्या तेजोमयी हो। हम दोनों एक दूसरे का छिद्रान्वेषण नहीं करें।'

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

वैशिष्ट्य

।।अथ श्रीरामकृष्णपरमहंसोपनिषदं व्याख्यास्यामः।।
।।संस्थाऽपरोक्षानुभवरूढ़ा साधनप्रधाना च।।१।।

१. अब हमलोग श्रीरामकृष्णोपनिषद् की व्याख्या करेंगे। यह (उपनिषद्) प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभूति की गहराई में समाहित और अत्यधिक साधनोन्मुखी है।

भाष्य

तत्पश्चात् यह इसकी विशेषता है। रामकृष्ण ने मुख्यतः ईश्वर के दर्शन की व्याकुलता या तीव्र लालसा से उपलब्ध प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर उपदेश दिये। काली माता के प्रथम दर्शन के पूर्व उन्होंने आध्यात्मिक साधना की रूढ़िवादी या परम्परागत विधियों का पालन नहीं किया। बाद में उन्होंने पहले से ही उपलब्ध उच्चतम रहस्यात्मक अनुभूति की मात्र सम्पुष्टि के लिए उनकी प्रचुर साधना की। चूँकि उनका 'मुख हृदय की परिपूर्णता से ही बोलता था' इसलिए उनके उपदेश स्फूर्तिदायक रूप से सरल तथा अत्यधिक व्यवहार्य हैं।

द्विविध ब्रह्म

निर्गुणं निराकारं च ब्रह्म। तदेव भक्तजनानां शीतलभक्तेः प्रभावात् सगुणः साकारः परमेश्वरो भवति हिममिव जलात् शैत्यात्। स एव परमेश्वरो निखिल- जगदन्तर्यामी च।।२।।

२. परं ब्रह्म निर्गुण या निराकार है। वही भक्तों के शीतलतादायक प्रभाव के कारण वैसे ही सगुण साकार परमेश्वर हो जाता है जैसे अतिशय ठंढ़ के कारण जल स्वयं बर्फ बन जाता है। वही परमेश्वर अखिल विश्व में निवास करनेवाला अन्तर्यामी भी है।

भाष्य

परम्परागत ढंग का अद्वैत वेदान्त ब्रह्म के दो रूपों—निर्गुण और सगुण—को मानता है, । सगुण को निर्गुण से हीन माना गया है। स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण इस मत का समर्थन नहीं करते हैं। यह वही ब्रह्म है चाहे वह सगुण हो या निर्गुण। निर्गुण से उद्भूत सगुण ब्रह्म के वर्णन अद्भुत हैं। संयोग से, यह ध्यान में रखना चाहिए कि श्रीरामकृष्ण के दर्शन में ईश्वर के भक्तों को ज्ञानियों के समक्ष समान रूप से महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

सगुण ब्रह्म के रूप

राम-कृष्ण-शिव-विष्णु-गॉड्-अल्ला-इत्यादि-विविधनाम-भिर्निर्दिष्टं परं तत्त्वमपि स एव। स एव लक्ष्मी-दुर्गा-काली-सरस्वतीत्यादि देवीनामभिरपि निर्दिश्यते ॥३॥

३. वस्तुतः वह परम ब्रह्म ही है जो राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, गॉड और अल्लाह जसे विभिन्न नामों से निर्दिष्ट किया जाता है। फिर उसी ब्रह्म को लक्ष्मी, दुर्गा, काली, सरस्वती आदि-आदि देवियों के विभिन्न नामों से संकेतित किया जाता है।

भाष्य

यह ऋग्वेद की उक्ति, 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'—सत्य एक है, पंडितगण इसे अनेक नामों से पुकारते हैं– की मात्र प्रतिध्वनि या आवृति नहीं, बल्कि उसका विस्तार भी है। हिन्दू मन्दिर के विभिन्न देवी-देवता एक ही परमेश्वर के अलग-अलग रूप या पक्ष हैं जैसे चीनी से बनी विभिन्न गुड़ियाएँ सभी केवल चीनी ही हैं और उन सबका स्वाद मीठा होता है। इससे यह आशंका दूर हो जानी चाहिए कि हिन्दूधर्म बहुदेववादी धर्म है।

शक्ति विषयक धारणा

व्यवहारदशायां यत्र पुरुषोऽज्ञो द्वैतमिव पश्यति तदा काल्यादिदेव्यः परस्यैव ब्रह्मणः शक्तय इति मन्तव्यम्। दाहिका शक्तिर्यथाऽग्नेः। वस्तुतस्तु तयोरत्यन्तमभेदः एव ॥४॥

व्यावहारिक जीवन में, (परम सत्य के प्रति) अज्ञानता के कारण जहाँ जीव संसार को द्वैत के रूप में देखता है, तब (उस अवस्था में) उसे समझना चाहिए कि काली आदि देवियाँ, सभी—अग्नि की दाहिका शक्ति की भाँति—परम ब्रह्म की शक्तियाँ हैं। तत्वतः उनमें कोई भेद नहीं है।

भाष्य

वेद पर आधारित हिन्दू दार्शनिक सिद्धान्तों से अपरिचित व्यक्ति न केवल हिन्दुओं के बाहरी बहुदेववाद से, बल्कि नरनारी के जोड़े के रूप में उनके द्वारा की जानेवाली ईश्वर की आराधना से, चकरा जाता है।

अन्ततोगत्वा विविधतापूर्ण अखिल विश्व ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं है। अतएव, मूलतः यह एक तत्त्व है, एक शक्ति है। यदि जगत में विविधता दिखाई पड़ती है तो वह अज्ञान, अविद्या या माया के कारण से। जब तक माया की यह अवस्था बनी रहती है और मनुष्य स्वाभाविक रूप में द्वैत देखता है तब तक वह स्वभावतः उसी दृष्टि से ईश्वर की भी परिकल्पना करता है। चूँकि ऐसी धारणाएँ दृश्य (देखे हुए) से अदृश्य (अनदेखे) या ज्ञात (जाने हुए) से अज्ञात (अजाने) की ओर अग्रसर होती हैं, और अदृश्य या अज्ञात की धारणा दृश्य और ज्ञात के आलोक में होती है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि ईश्वर और उसकी शक्ति या प्रतिरूप की धारणा मानव-समाज में सदियों पूर्व विकसित हुई है। कहीं इस द्वैत को शाश्वत न समझ लिया जाय इसलिए श्रीरामकृष्ण ने अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति, दूध और उसका उजलापन, स्थिर और गतिमान सर्प जैसी उपमाओं का प्रयोग कर बार-बार ईश्वर और उसकी शक्ति में मूलभूत एकता की ओर ध्यान दिलाया है।

जीवन का लक्ष्य

॥परमेश्वर दर्शनमेव मानव जीवनस्य चरमोद्देशः तथैव मुक्तेः साध्यत्वात्। परमेश्वरस्तु द्रष्टुं स्प्रष्टुं च शक्यः। तेन सहालापोऽपि साध्यः। सर्वे धर्माः समानास्तमेव गमयन्ति च ॥५॥

५. पूर्ण रूप से समझ लो कि परमेश्वर ही जीवन का परम लक्ष्य है, क्योंकि इसी के द्वारा मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। किसी भी प्रकार से परमेश्वर को देखा जा सकता है तथा उनका स्पर्श किया जा सकता है। यहाँ तक कि उनसे बातचीत भी की जा सकती है। सभी धर्म समान हैं और सभी उन्हीं को प्रकट करते हैं।

भाष्य

नैतिक मान्यताओं का हिन्दू सिद्धान्त मानव जीवन के लिए चार लक्ष्य प्रस्तुत करता है और उन्हें 'पुरुषार्थ' कहता है। वे हैं; धर्म, अर्थ काम और मोक्ष। यद्यपि अर्थ और काम को मानवीय दुर्बलताओं के प्रति छूट के रूप में, जीवन के लक्ष्य की प्रतिष्ठा दी गयी है, किन्तु मोक्ष ही जीवन का वास्तविक और चरम लक्ष्य है। श्रीरामकृष्ण के अनुसार, सगुण ईश्वर—जगत्पिता परमेश्वर—की भक्ति के द्वारा संसार में आवागमन के चक्र से मोक्ष या मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। ये ईश्वर कोई वायवीय प्राणी या मात्र पौराणिक अटकलबाजी नहीं हैं। वे वास्तविक हैं और रहस्यात्मक अनुभूतियों की उच्चतम अवस्था में देखे जा सकते हैं। केवल यही नहीं, कोई व्यक्ति उनसे बातें भी कर सकता है और उनका स्पर्श तक कर सकता है। सम्पूर्ण मानव इतिहास में सैकड़ों आध्यात्मिक प्राणियों ने इसकी गवाही दी है।

यद्यपि उपदेश की भाषा तथा तरीके में स्वभावतः अन्तर है तथापि यही वे ईश्वर है जिनके विषय में धर्म चर्चा करते या उपदेश देते है। फलतः अन्तिम विश्लेषण में सभी धर्म समान हैं। वे दूसरे अर्थ में भी समान हैं: जो कोई भी अपने धर्म का निष्कपट भाव से अनुसरण करता है वह एक ही समान अनिर्वचनीय परम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करता है। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं इन भिन्न-भिन्न मार्गों का अनुसरण कर इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त की थी।

पूर्णता के पथ

।।अपि तु मायाजवनिकाच्छन्नः सः सुखेन द्रष्टुं न लभ्यः। कामकाञ्चनकामनैव मेघापार्येऽशु मानव। ज्ञानमिश्रितभक्तिश्च मायानाशोपायः। स एव सर्वमित्यतो दीन-दरिद्र-रोगी-अज्ञादीनां नारायणदृष्ट्या सेवापि अद्यतनकालेऽनुत्तमोपायश्चित्तशुद्धिद्वारा तं साक्षात्कर्तुम् ।।६।।

६. किन्तु माया के आवरण से आच्छन्न होने के कारण ईश्वर आसानी से नहीं देखे जाते हैं। काम और कांचन स्वयं माया है। जब माया मिट जाती है, ईश्वर अपने आप स्वयं को प्रकट कर देते हैं, जैसे बादल के (जो सूर्य को ढके रहता है) चले जाने पर सूर्य अपने को प्रकट कर देता है। ज्ञान मिश्रित भक्ति ही माया के नाश का उपाय है। चूँकि ईश्वर ही सब कुछ है अतः शिव दृष्टि से दीन, दरिद्र, रोगी तथा अज्ञानी जनों की सेवा कर चित्तशुद्धि के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार करना भी वर्तमान युग के लिए उत्तम उपाय है।

भाष्य

यह सच है कि ईश्वर हमारी अन्तरात्मा हैं। और तब भी हमलोग उन्हें आसानी से नहीं देख सकते हैं। क्यों? क्योंकि माया के आवरण ने उन्हें ढँक रखा है। मान लो कि कोई व्यक्ति हमारे अत्यन्त निकट खड़ा है, किन्तु यदि उसने अपना चेहरा तौलिये से ढँक रखा है तो हम उसे नहीं देख सकते है। इसी भाँति, ईश्वर को हमसे छिपा रखने के लिए माया आवरण का कार्य करती है।

यह माया क्या है? श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि देह-भोग की कामना और आर्थिक लाभ के लिए पिपासा स्वयं माया है। वेदान्त कहता है कि माया ईश्वर के वास्तविक स्वभाव को छिपा लेती है और उन्हें इस आकर्षक संसार के रूप में प्रकट करती है। श्रीरामकृष्ण के कथनानुसार अंतिम विश्लेषण करने पर प्रलोभनों का यह संसार 'कामिनी और कांचन' के सिवा अन्य कुछ नहीं है। ईशावास्योपनिषद् (श्लोक १५) इस संसार का वर्णन सत्य के मुख को छिपाये हुए हिरण्मय-पात्र के रूप में करती है। अतः असल में काम और कांचन का संसार ही माया है। एक बार यदि इस माया को अलग या परे कर दिया जाता है तब ईश्वर, अन्तर आत्मन्, अपने को स्वतः प्रकट कर देता है।

इस माया को समाप्त करने लिए हमारे धर्मशास्त्रों में दो सुप्रसिद्ध साधनाएँ या आध्यात्मिक साधनाओं की

विधियाँ निर्धारित की गयी है—ज्ञान और भक्ति। चूंकि सभी कर्मों की जड़ में द्वैत-भाव ही है तथा ये कर्म कामनाओं के द्वारा संचालित होते है और अपने परिणामों से बँधे रहते हैं, इसलिए ज्ञान मार्ग में आध्यात्मिक-साधकों को सभी प्रकार के कर्मों का परित्याग कर देने का प्रबल परामर्श दिया गया है। केवल यही नहीं, उनसे अपेक्षा की गयी है कि वे अपनी देह और मन तक को अस्वीकार कर दें और दृढ़तापूर्वक कहें कि वे मात्र शुद्ध चैतन्य आत्मा हैं। दूसरी ओर, भक्ति मार्ग में साधक को ईश्वर के ऊपर स्वयं को समर्पित कर देना है क्योंकि केवल वे ही उसकी माया मिटा सकते है और मिटायेंगे तथा उसे मुक्ति प्रदान कर सकते है और करेंगे। (गीता ७.१४)

इस प्रकार, ये दोनों मार्ग, एक ओर आत्म-प्रयत्न पर तथा दूसरी ओर ईश्वर की कृपा पर जोर देने के कारण, एक दूसरे से यथार्थतः विपरीत मालूम होते हैं। हाँ, कोई इस तर्क के द्वारा, कि ये दोनों मार्ग भिन्न प्रकार के साधकों के लिए दिये गये उपाय हैं, इस पहेली को सुलझाने का प्रयास कर सकता है। तब भी, अपरिपक्वता के कारण, ज्ञान मार्ग का अवलम्बन करनेवाला कोई एक व्यक्ति शुष्क अंहकारी हो सकता है, जब कि भक्ति मार्ग का अनुसरण करनेवाला दूसरा व्यक्ति एक भावुकतावादी या उन्माद-ग्रस्त के रूप में पतित हो जा सकता है। इस खतरे को भाँप कर श्रीरामकृष्ण ने ज्ञानमिश्रित भक्ति का समर्थन किया है। नाम-जप (ईश्वर के नाम की आवृत्ति) तथा व्याकुलता (प्रभु के दर्शन की तीव्र लालसा) भक्ति के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व हैं जिनकी श्रीरामकृष्ण ने सबल अनुशंसा की है। विचार अर्थात् ईश्वर ही एकमात्र सत्य हैं, न कि यह संसार, क्योंकि इसका स्वरूप अनित्य है और वैराग्य अर्थात् संसार की सभी वस्तुओं को ईश्वर की सम्पत्ति मानकर उनके प्रति अनासक्ति—ये ज्ञान के तत्व हैं जिनके लिए साधकों को उन्होंने समान शक्ति से आदेश दिया है। ज्ञान और भक्ति का यह संतुलित समन्वय माया को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है।

श्रीरामकृष्ण ने शिव भाव से जीव की सेवा करने का सिद्धान्त प्रस्तुत कर साधना के दर्शन में एक नया आयाम भी जोड़ दिया है। यदि एक ही ब्रह्म या आत्मा या ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में विद्यमान रहता है, तब, दीनों, दरिद्रों और रोगियों की इस भाव से सेवा करना, जैसे मनुष्य उनमें विद्यमान ईश्वर की सेवा कर रहा है, सेवा के कार्य को, दया के वशीभूत मात्र सामाजिक उत्तरदायित्व से की जानेवाली सेवा से उठाकर साधना का आध्यात्मिक कर्म बना देता है। यहाँ फिर, सर्वव्यापक आत्मा को देखना ज्ञान का अंश है, और शिव भाव से सेवा करना भक्ति का अंश है। इस प्रकार की साधना आधुनिक मनुष्य के चित्त के लिए सर्वथा अनुकूल है।

कथञ्चित् तं ज्ञात्वा दृष्ट्वा भवबन्धनाद्विमुक्ताभवत।
विमुक्ता भवतेत्युपनिषत्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥७॥

७. किसी तरह, ईश्वर को जानकर, उन्हें देखकर और उनका स्पर्श कर भव-बंधन से मुक्त हो जाओ! मुक्त हो जाओ! यही उपनिषद् (पवित्र गूढ़ उपदेश) है!

भाष्य

हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अनुसार, विभिन्न जातियों के विभिन्न प्रकार की ८४,००,००० योनियों से गुजरने के बाद कोई जीव मनुष्य देह में जन्म-ग्रहण करता है। अतएव, मनुष्य जन्म को दुर्लभ सौभाग्य माना जाता है। पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त करने की कामना का होना और भी दुर्लभ है क्योंकि अधिकांश मानव केवल ऐन्द्रिक सुख में ही अभिरुचि रखते हैं। किसी ज्ञान सम्पन्न महापुरुष का सम्पर्क एवं आध्यात्मिक निर्देश प्राप्त करना जीवन में अत्यन्त दुर्लभ सुयोग है। अतः जिन्होंने इन तीनों वरदानों को प्राप्त कर लिया है उन्हें जीवन के परमार्थ की प्राप्ति तक कुछ उठा नहीं रखना चाहिए।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

□

प्रथम रामकृष्ण मठ : कुछ झलकियाँ

प्रस्तुति : श्री रामेश्वर यादव

पटना ।

रविवार, १५ अगस्त १८८६ ई० को श्रीरामकृष्ण, भक्तों को दुःख के असीम सागर में बहाकर स्वधाम को चले गए। अविवाहित और विवाहित भक्तगण श्रीरामकृष्ण की सेवा करते समय आपस में जिस स्नेह-सूत्र में बँध गए थे, वह कभी छिन्न होने वाला न था।

* * *

किशोर भक्तों ने काशीपुर के बगीचे में रहकर दिन-रात उनकी सेवा की थी। उनकी महासमाधि के पश्चात् इच्छा न रहते हुए भी, लगभग सब के सब अपने घर चले गये। उनमें से किसी ने भी अभी बाहरी चिह्न (गेरुआ वस्त्र आदि) धारण नहीं किया है। वे लोग श्रीरामकृष्ण के तिरोभाव के बाद कुछ दिनों तक दत्त, घोष, चक्रवर्ती, गांगुली आदि उपाधियों द्वारा लोगों को अपना परिचय देते रहे; परन्तु उन्हें श्रीरामकृष्ण हृदय से त्यागी कर गये थे।

लाटू, तारक और बूढ़े गोपाल के लिए कोई स्थान न था जहाँ वे वापस जाते। उनसे सुरेन्द्र ने कहा, "भाइयो, तुम लोग अब कहाँ जाओगे ? आओ, एक मकान लिया जाय। वहाँ तुम लोग श्रीरामकृष्ण की गद्दी लेकर रहोगे तो हमलोग भी कभी-कभी हृदय की दाह-मिटाने के लिए वहाँ आ जाया करेंगे, अन्यथा संसार में इस तरह दिन-रात कैसे रहा जायगा ? तुम लोग वहीं जाकर रहो। मैं काशीपुर के बगीचे में श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए जो कुछ दिया करता था, वह अभी भी दूँगा। इस समय उतने से ही रहने और भोजन आदि का खर्च चलाया जायगा।" पहले-पहले दो-एक महीने तक सुरेन्द्र तीस रुपये महीना देते गये। क्रमशः मठ में दूसरे भाई ज्यों-ज्यों आकर रहने लगे, त्यों-त्यों पचास साठ रुपये का माहवार खर्च हो गया—सुरेन्द्र देते भी गये अन्त में सौ रुपये तक का खर्च हो गया। वराहनगर में जो मकान लिया गया था, उसका किराया और टैक्स दोनों मिलाकर ग्यारह रुपये पड़ते थे। रसोइये को छः रुपये महीना और बाकी खर्च भोजन आदि का था। बूढ़े गोपाल, लाटू और तारक के घर था ही नहीं। छोटे गोपाल काशीपुर के बगीचे से श्रीरामकृष्ण की गद्दी और कुल समान लेकर उसी किराये के मकान में चले आये। काशीपुर में जो रसोइया था, उसे यहाँ भी लाया गया। शरत रात को आकर रहते थे। तारक वृन्दावन गये थे, कुछ दिनों में वे भी वापस आ गये। नरेन्द्र, शरद, शशी, बाबूराम, निरंजन काली ये लोग पहले-पहल घर से कभी-कभी आया करते थे। राखाल, लाटू, योगी और काली ठीक उसी समय वृन्दावन गये हुये थे। काली एक महीने के अन्दर राखाल कई महीने के बाद और योगीन पूरे साल बाद लौटे।

कुछ दिनों पश्चात् नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरद, शशी, बाबूराम, योगीन, काली और लाटू वहीं रह गये,—वे फिर घर नहीं लौटे। क्रमश, प्रसन्न और सुबोध भी आकर रह गये। गंगाधर सदा मठ में आया जाया करते थे। नरेद्र को बिना देखे वे रह न सकते थे। बनारस के शिव मंदिर में गाया जानेवाला (जय शिव ओंकार' स्तोत्र उन्होने मठ के भाइयों को सिखलाया था। मठ के भाई 'वाह गुरू की फतह' कहकर बीच-बीच में जो जयध्वनि करते थे, यह भी उन्हीं की सिखलायी हुई थी। तिब्बत से लौटने के पश्चात वे मठ में ही रह गये। श्रीरामकृष्ण के दो और भक्त हरि और तुलसी

सदा नरेन्द्र तथा मठ के दूसरे भाइयों को देखने के लिए आया करते थे। कुछ दिन बाद ये भी मठ में रह गये।

सुरेन्द्र! तुम धन्य हो! यह पहला मठ तुम्हारे ही हाथों से तैयार हुआ! तुम्हारी ही पवित्र इच्छा से इस आश्रम का संगठन हुआ। तुम्हें यन्त्र-स्वरूप करके भगवान श्रीरामकृष्ण ने अपने मूलमन्त्र कामिनी कांचन—त्याग को मूर्तिमान कर लिया। कौमार-काल से ही वैराग्यव्रती शुद्धात्मा नरेन्द्रादि भक्तों द्वारा तुमने फिर से हिन्दूधर्म का प्रकाश मनुष्यों के सामने रखा! भाई तुम्हारा ऋण कौन भूल सकता है? मठ के भाई मातृ-हीन बच्चों की तरह रहते थे—तुम्हारी प्रतीक्षा किया करते थे कि तुम कब आओगे। आज मकान का किराया चुकाने में सब रुपये खर्च हो गये हैं– आज भोजन के लिए कुछ नहीं बचा—कब तुम आओगे—कब तुम आओगे और आकर अपने भाइयों के भोजन का बन्दोबस्त करोगे। तुम्हारे अकृत्रिम स्नेह की याद करके ऐसा कौन है जिसकी आँखों में आँसू न आ जाये।

यह मठ श्रीरामकृष्ण के भक्तों में वराहनगर मठ के नाम से परिचित हुआ। वहीं श्रीठाकुर-मन्दिर में श्री गुरु महाराज भगवान श्रीरामकृष्ण की नित्य सेवा होने लगी। नरेन्द्रादि सब भक्तों ने कहा, "अब हमलोग संसार-धर्म का पालन न करेंगे। श्रीगुरु महाराज ने कामिनी और कांचन त्याग करने की आज्ञा दी थी, अतएव हमलोग अब किस तरह घर लौट सकते हैं?"

नित्य पूजन का भार शशी ने लिया। नरेन्द्र गुरु-भाइयों की देखभाल किया करते थे। सब भाई भी उन्हीं का मुँह जोहते थे। नरेन्द्र उनसे कहते थे, "साधना करनी होगी नहीं तो ईश्वर नहीं मिल सकते।" वे और दूसरे गुरुभाई अनेक प्रकार की साधना करने लगे। वेद, पुराण, तन्त्र इत्यादि मतों के अनुसार अनेक प्रकार की साधनाओं में वे प्राणपण से लग गये। कभी-कभी एकान्त में वृक्ष के नीचे, कभी अकेले श्मशान में, कभी गंगा-तट पर साधना करते थे। मठ में कभी ध्यान करने वाले कमरे के भीतर—अकेले जप और ध्यान करते हुए दिन बिताने लगे। कभी-कभी भाइयों के साथ एकत्र कीर्तन करते हुए नृत्य करते रहते। ईश्वर-प्राप्ति के लिए सब लोग विशेषकर नरेन्द्र, बहुत ही व्याकुल हो गये। वे कभी-कभी कहते थे, "इनकी प्राप्ति के लिए क्या मैं प्रायोपवेशन कर डालूँ?"

* * *

आज सोमवार है, २१ फरवरी १८८७। नरेन्द्र और राखाल आदि ने आज शिवरात्रि का उपवास किया है।... .. ..शाम ढलने लगी। शिवरात्रि की पूजा के लिए व्यवस्था हो रही है। बेल की लकड़ी और बिल्वदल इकट्ठे किये गये। पूजा के बाद होम होगा। ......मठ के बिल्व वृक्ष के नीचे पूजा का आयोजन हो रहा है। रात के नौ बजे का समय होगा। अभी पहली पूजा होगी, साढ़े ग्यारह बजे दूसरी। चारों पहर पूजाएँ होंगी। नरेन्द्र, राखाल, शरद, काली, सीती के गोपाल आदि मठ के सब भाई बेल के नीचे उपस्थित हो गये। भूपति और मास्टर भी आये हुए हैं। मठ के भाइयों में से एक व्यक्ति पूजा कर रहा है।

काली गीता-पाठ कर रहे हैं—सैन्यदर्शन,—सांख्य-योग,—कर्मयोग! पाठ के बीच-बीच में नरेन्द्र के साथ विचार चल रहा है।..... अब नरेन्द्र आदि सब भक्त खड़े होकर नृत्यगीत करते हुए बिल्ववृक्ष की बार-बार परिक्रमा करने लगे। बीच-बीच में एक स्वर से 'शिव गुरु! शिव गुरु!' इस मंत्र का उच्चारण कर रहे हैं।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, रात्रि गम्भीर हो रही है। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ है, जीव-जन्तु सब मौन है। गेरुआ वस्त्र पहने हुए इन आकौमारविरागी भक्तों के कण्ठ से उच्चारित 'शिव गुरु! शिव गुरु!' की महामन्त्र ध्वनि मेघ की तरह गम्भीर रव से अनन्त आकाश में गूँजकर अखण्ड सच्चिदानन्द में लीन होने लगी।

* * *

आज वैशाखी पूर्णिमा है। शनिवार ७ मई १८८७।

······मठ के भाइयों की देख-रेख नरेन्द्र ही कर रहे हैं। प्रसन्न कुछ दिनों से कठोर साधना कर रहे थे। उनसे भी नरेन्द्र ने प्रायोपवेशन की बात कही थी। नरेन्द्र को कलकत्ता जाते देख, वे भी कहीं अज्ञात स्थान के लिए चले गये। कलकत्ते से लौटकर नरेन्द्र ने सब हाल सुना। उन्होंने दूसरे भाइयों से कहा, राजा (राखाल) ने क्यों उसे जाने दिया? परन्तु राखाल उस समय मठ में नहीं थे, वे मठ से दक्षिणेश्वर के बगीचे में टहलने चले गये थे। राखाल को सब भाई राजा कहकर पुकारते थे। 'राखाल-राज' श्रीकृष्ण का एक दूसरा नाम था।

नरेन्द्र—राजा को आने दो, मैं उसे एक बार—फटकारूँगा कि क्यों उसे जाने दिया। (हरीश से) तुम भी पैर फैलाये लेक्चर दे रहे थे, उसे मना क्यों नहीं कर सके?

हरीश—(मधुर स्वर से)—तारकदादा ने कहा तो, पर वह चला ही गया।

नरेन्द्र—(मास्टर से)—देखिये, मेरे लिए बड़ी मुश्किल है। यहाँ भी मैं एक माया के संसार में आ फँसा हूँ! न मालूम वह लड़का कहाँ चला गया!

राखाल दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर से लौट आये हैं। भवनाथ भी उनके साथ गये थे।

राखाल से नरेन्द्र ने प्रसन्न की बात कही। प्रसन्न ने नरेन्द्र को एक पत्र लिखा है। वह पत्र पढ़ा जा रहा है। पत्र इस आशय का है—"मैं पैदल ही वृन्दावन चला। मेरे लिए यहाँ रहना अच्छा नहीं है। यहाँ भाव का परिवर्त्तन हो रहा है। पहले तो मैं माता-पिता और घर के दूसरे लोगों का स्वप्न देखा करता था, इसके पश्चात् मैंने माया की मूर्ति देखी। दो बार मुझे बड़ा कष्ट मिला, लौट जाना पड़ा था। इसीलिए अबकी बार दूर जा रहा हूँ। श्रीरामकृष्ण देव ने मुझसे कहा था—तेरे वे घर वाले सब कुछ कर सकते हैं, उनका विश्वास न करना।"··· शाम हो गई। शशी श्रीरामकृष्ण के कमरे में धूप देने लगे। दूसरे कमरों में श्रीरामकृष्ण के जितने चित्र थे, वहाँ भी धूप-धूना किया गया। फि… मधुर कण्ठ से उनका नामोच्चारण करते हुए उन्हें प्रणा… किया।

अब आरती हो रही है। मठ गुरु-भाई और दूस… भक्त हाथ जोड़कर खड़े हुए आरती देख रहे हैं। झाँ… और घंटे बज रहे हैं। भक्तवृन्द एक स्वर से आरती … रहे है—

"जय शिव ओंकार, भज शिव ओंकार।
ब्रह्मा विष्णु सदा शिव, हर हर हर महादेव।"

नरेन्द्र पहले गाते हैं, पीछे से उनके दूसरे गुरु-भाई… यही गायन श्रीकाशीधाम में विश्वेश्वर-मन्दिर में हुअ… करता है।

* * *

मठ के गुरुभाई—अपने आपको भूत तथा दानव… कहते थे, क्योंकि भूत दानव शिवजी के अनुयायी हैं… और जिस कमरे में सब एक साथ बैठते थे, उसे 'दानवों… का कमरा' कहते थे। जो लोग एकान्त में ध्यान धारणा… और पाठ आदि करते थे, वे लोग दक्षिण ओर के कमरे… में रहते थे, काली द्वार बन्द करके अधिकतर उसी कमरे… में रहते थे, इसलिए मठ के गुरुभाई उस कमरे को काली… तपस्वी का कमरा कहते थे। उसके उत्तर ओर जो कमरा… था, उसमें नैवेद्य रखा जाता था। उसी कमरे में खड़े… होकर लोग आरती देखते और वहीं से भगवान… श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करते थे। नैवेद्यवाले कमरे के… उत्तर में 'दानवों का कमरा' था। यह कमरा खूब… लम्बा था। बाहर के भक्तों के आने पर इसी कमरे में… उनका स्वागत किया जाता था। 'दानवों के कमरे' के… उत्तर तरफ एक और छोटा सा कमरा था। यह 'पान… घर' के नाम से पुकारा जाता था। यहाँ भक्तगण भोजन… करते थे।

'दानवों के कमरे' के पूर्व कोने में दालान थी… उत्सव होने पर भोजन आदि की व्यवस्था उसी कमरे…

(शेषांश पृष्ठ ४५)

गुरु

श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन

[प्रस्तुत निबन्ध पूज्यपाद श्रीमत स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज द्वारा १९७९ में गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी रांची में प्रदत्त व्याख्यान का हिन्दी रूपान्तर है। यह रूपान्तर 'उद्बोधन' के आषाढ़ १३९१ अंक से किया गया है। रूपान्तरकार हैं श्री रामेश्वर यादव, पटना—सं०]

धन्य है वह दिन जो व्यासदेव का जन्म दिन है। उन्होंने क्या किया था? सम्पूर्ण वेदों का विभाग किया था और महाभारत की रचना की थी—जिसके अन्दर समस्त धर्मों का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ गीता है। फिर उन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना की है—जिसमें उपनिषदों के संदेशों का समन्वय हुआ है तथा सुश्रृंखलित रूप से दर्शाया गया है कि उपनिषदों का संदेश वास्तव में क्या है। साथ ही हम कह सकते हैं कि यद्यपि उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से सनातन धर्म की स्थापना नहीं की फिर भी उसे सुश्रृंखलित एवं सुविन्यस्त करके अप्रत्यक्ष रूप से उसकी स्थापना उन्होंने की है—इसका दावा वे कर सकते हैं। अतएव, वेदव्यास को हिन्दूलोग गुरु रूप में स्वीकार करते हैं। क्यों नहीं?-हिन्दूधर्म या सनातन धर्म का क्या तात्पर्य है, इसकी भीत्ति कहाँ है, दार्शनिक दृष्टि कैसी है, किसका अवलम्बन करके हिन्दू लोग आगे बढ़ते हैं, हिन्दूधर्म किस आधार पर खड़ा है, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर उन्होंने स्वरचित ग्रन्थों में विशद रूप से दे दिया है। अतएव, वे हिन्दुओं के गुरु हैं।

वर्तमान समय में पाश्चात्य जगत में इसकी चर्चा है कि व्यास के रूप में हम किन्हें ग्रहण करें। कृष्ण द्वैपायन व्यास एवं बादरायण व्यास क्या एक ही विभूति थे या अलग? उस समालोचना की तह में हम जाना नहीं चाहते हैं क्योंकि हमलोगों के लिए चर्चा का विषय आज यह नहीं हैं। फिर ऐसा भी सुना जाता है—आदिशंकराचार्य थे फिर उनके परवर्ती काल में शंकराचार्य नामधारी अनेक व्यक्ति हुए हैं तथा भविष्य में भी होंगे। शंकराचार्य जिस तरह एक उपाधि है उसी प्रकार व्यास भी एक उपाधि है। उस युग में अनेक लोग व्यास नाम से परिचित होते थे। अतएव कौन व्यास? यदि व्यास एकाधिक हुए तो कृष्ण द्वैपायन व्यास या बादरायण व्यास,-जिन्होंने महाभारत की रचना की थी, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र लिखा था—इत्यादि को लेकर विचार किया जा सकता है। हमलोगों को इस विषय से कोई प्रयोजन नहीं है। हमलोग उन्हीं व्यासदेव को चाहते हैं जिन्होंने हिन्दूधर्म की रक्षा की थी, हिन्दूधर्म को जिन्होंने रूप दिया है और अभी भी जिनके कथनानुसार हिन्दूलोग चलते हैं। हम लोग का विचारणीय विषय है कि गुरु कौन हैं? वे क्या करते हैं? इत्यादि।

अच्छा, हमलोग यह मान लें कि हमलोग साधारण मनुष्य हैं। इस जगत में हमलोग अन्धकार में डूबे हैं। इस जगत का मूल क्या है? वह कहाँ से आया? हमलोग क्या हैं? कहाँ जाएँगे? क्यों हम हैं और क्या करते हैं?—यह सब कुछ हमलोग नहीं जानते हैं। जिससे इन सारी चीजों की जानकारी मिलती है उसे ज्ञान कहते हैं या उसे कई बार हम, भक्ति कहते हैं या योग कहते हैं या अन्य नाम से उल्लेखित करते हैं। हमलोग हैं अन्धकार में। अन्धकार कभी भी स्वयं प्रकाश नहीं लाता है। अन्धकार को दूर करने के लिए बाहर से प्रकाश आता है। हमलोग जो इस अज्ञान-अन्धकार में हैं—इसको कौन दूर कर सकता है? ज्ञान, भक्ति अथवा योग। यह अन्धकार के बाहर से आता है। यह कहाँ रहता है? हमलोग कहते हैं कि यह भगवान के सिवा और कुछ

नहीं है। वही हैं ज्ञान स्वरूप, वही हैं सत्य स्वरूप, वही हैं आनन्द स्वरूप। वही मनुष्य को ज्ञान देते हैं। वह ज्ञान हमलोग किस रूप में पाते हैं? वह वेद के माध्यम से पाते हैं? वेद है नित्य। वेद का अर्थ लिखित पुस्तक नहीं। वेद का तात्पर्य आचार्य शंकर कहते हैं—ज्ञानराशि। स्वामीजी ने भी यही कहा है—वेद कहते समय हमलोग ज्ञानराशि समझते हैं। उसी वेद का कुछ अंश गद्यबद्ध है और कुछ अंश गीतबद्ध है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इत्यादि। वह वेदज्ञान भगवान के समीप ही रहता है। वह भगवान का ही स्वरूप है। वे परम करुणामय हैं। अपने समीप वे इस ज्ञान को रखते हैं। जब नयी सृष्टि होती है, तब वे विशेष-विशेष मनुष्य के हृदय में उस ज्ञान को उद्‌घाटित करते हैं। वे लोग फिर दूसरे लोगों को उस ज्ञान की जानकारी देते हैं,। तब वे क्या करते हैं? मैं शिक्षा देता हूँ—इस बुद्धि से वे नहीं बोलते हैं—जैसे कि उपनिषद् की वाणी है "इति शुश्रुम धीरानां ये नस्तद्विचचक्षिरे" (ईश उपनिषद्, श्लोक १३ द्रष्टव्य)—धीर और ज्ञानी व्यक्ति के समीप जो ज्ञान हमलोग सुनते हैं, वे सब बातें ही हम फिर कहते हैं। कारण, वे लोग यह दावा नहीं करते हैं कि वे अपनी बात कहते हैं या वे नयी सृष्टि करते हैं।

ऋषि लोगों को मंत्रद्रष्टा कहा गया है। मंत्र है ज्ञान स्वरूप और है भगवान के पास। जो है, उसी का वे दर्शन करते हैं। वे नया मंत्र बनाते हैं, नये दर्शन की सृष्टि करते हैं या नया ज्ञान लेकर आते हैं, ऐसी बात नहीं है। जो ज्ञान चिरकाल से है, जो भक्ति, योग सदा से है, उसी का वे दर्शन करते हैं, देखते हैं,—देखकर दूसरों को बताते हैं। सब कुछ निश्चय ही नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि ब्रह्म 'अवाङ्‌मनसगोचरम्—वाक्य एवं मन के अतीत है। जहां तक संभव है और जिस प्रकार संभव है, वे लोग उतना ही वेद एवं उपनिषद् के माध्यम से कहते हैं। इसलिए जो हमलोगों को इस भांति उपदेश देते हैं; वे हुए हमलोगों के गुरु।

अभी तक गुरु के संबंध में कौन सी धारणा पायी गयी? प्रथम—गुरु कहते समय हम समझेंगे स्वयं भगवान को। जैसा कि श्री ठाकुर ने कहा है, "सच्चिदानन्द गुरु हैं।" किन्तु भगवान स्वयं आकर तो हमलोगों ज्ञान नहीं देते हैं—वे ज्ञान देते हैं ऋषियों के भीतर अथवा शास्त्र में हमलोग जैसा देखते हैं कि किसी-कि को आधिकारिक पुरुष कहा गया है। वे लोग मानो को एक विशेष अधिकार लेकर आते हैं वे ज्ञान ला करते हैं। भगवान ने उनलोगों को आदेश दिया है—ि तुमलोग यह सब ज्ञान लोक-हित के लिए संसार प्रकाशित करो, प्रचार करो। वे हैं हमलोगों के गु स्थानीय। अथवा भगवान स्वयं अवतार के रूप में आ हैं—लोकशिक्षार्थ। वे आकर प्रेम, भक्ति, यो इत्यादि की शिक्षा लोगों को देते हैं। उसके बाद मनुष्य-गुरु। इन दोनों श्रेणियों के बीच मुख्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए श्री रामकृष्ण कहते हैं। "जगत-गु प्राण में मन्त्र देते हैं और मनुष्य-गुरु कान में मन्त्र देते हैं।" जगतगुरु प्राण में देते हैं। कैसे? जिसको हमलोग Inspiration या अनुप्रेरणा कहते हैं—वह कैसे और कहां से आया—यह हम स्पष्ट रूप से नहीं जानते हैं। मनमें एकाएक एक प्रेरणा जागृत हुई, उद्दीपना हुई—एक सत्य का आभास मानो हमलोगों के समक्ष आ प्रकट हुआ। उसी को सभी ग्रहण कर लेते हैं कि यही है पथ, इसी तरह इस युग में चलना होगा। जैसे वर्तमान युग की ही बात हम लें। महापुरुष स्वामी शिवानन्द जी एक दिन--एक दिन क्यों उन्होंने अनेक बार कहा है कि श्रीरामकृष्ण जब जगत में अवतीर्ण हुए तब जगत की कुण्डलनी शक्ति को जाग्रत कर वे अवतीर्ण हुए थे। मनुष्य के भीतर एक शक्ति रहती है, वही कुण्डलीबद्ध है—'न हिलती है, न डुलती है' किन्तु वह शक्ति है। उसको जागृत करने पर वह जागृत होती है—जागृत होकर मनुष्य को शक्तिमान कर के ज्ञान, भक्ति आदि का अधिकारी बना देती है। उसी तरह जगत की भी एक कुण्डलनी शक्ति है। वह कुण्डली-बद्ध है। वह जागृत नहीं होती है, उसको जागृत करना पड़ता है। नयी भावधारा देकर ठाकुर ने इसको जागृत किया। महाप्रभु श्री चैतन्य देव आये थे। उन्होंने जगत में प्रेम वितरण किया। शंकराचार्य आये थे। उन्होंने ज्ञान वितरण किया। इस तरह और अनेक अवतार

आते हैं जो भिन्न-भिन्न कार्य कर गये हैं। ठाकुर इसी प्रकार आये हैं। उनका प्रणाम-मंत्र स्वामीजी कहते हैं।

> ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्व धर्म स्वरूपिणे।
> अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः॥

वे धर्म स्थापना हेतु आये हैं, इसलिए उनके बारे में कहा गया है। इसके बाद स्वामीजी ने अपनी वक्तृता में कहा है, वे सामञ्जस्य अवतार हैं। समस्त धर्मों का उन्होंने समन्वय किया है; सिर्फ धर्मों का ही नहीं, बल्कि विभिन्न मतवादों का भी। प्रत्येक को सम्मान देकर उसको सार्थक करना, उसको अपने पथ पर चलने देना उसके साथ किसी प्रकार के वाद-विवाद में प्रवृत्त न होकर, वह जिससे अपने पथ पर आगे बढ़ सके, अपना अभीष्ट लाभ कर सके, इसके लिए उसको सम्मान देकर, सहायता प्रदान कर अपने पथ पर चलने देना— यही जो एक मौलिक बात है, उसे ही श्रीरामकृष्ण ने इस युग में अपनी साधनाओं के द्वारा और अपने वचनों द्वारा जिस प्रकार से कहा है या दिखाया है, पहले के युग में इस तरह कभी नहीं हुआ है।

सम्पूर्ण जगत जाने या न जाने, वह इस भावधारा को ग्रहण कर रहा है। वैचित्र्य के भीतर एकत्व है— जैसा कि स्वामीजी ने कहा है। उनके ही कथनानुसार इस युग में Co-existence— सह अस्तित्व की बात उठ रही है। सभी को एक साथ ही रहना होगा। तुम साम्यवादी मैं प्रजातंत्रवादी, तुम रिपबलिकन मैं अमुकतमुक, मैं समाजवादी— किन्तु सभी को एक दूसरे के मतवाद की सम्मान देकर, दूसरों के मतवाद को यथास्थान रहने देकर एक साथ चलना होगा, कोई किसी के ऊपर मतवाद थोपेगा नहीं। झगड़ा-लड़ाई करना उचित नहीं, यह जो मौलिक भाव है— यह हमने श्री रामकृष्ण से पाया है। इससे यही सिद्ध हुआ कि जो जगत-गुरु हैं वे मनुष्य के प्राण में मंत्र देते हैं। मंत्र देकर उसको जगा देते हैं। किन्तु जो मनुष्य गुरु हैं वे कान में मंत्र देते हैं। ठाकुर ने एक जगह कहा है, "मैंने दिया मंत्र, अब मन तुम्हारा।" मनुष्य-गुरु ने मंत्र दिया। किन्तु शिष्य ने क्या किया?— उसने मंत्र को ग्रहण कर लिया। उसने निर्जन में साधन किया, गुरु ने जिस प्रकार कहा है उसका अनुसरण कर उसको फलीभूत किया। प्रस्फुटित किया। इसी से कालान्तर में वह ज्ञान लाभ करेगा, मुक्ति लाभ करेगा। एक उदाहरण दिया है श्रीरामकृष्ण ने— जैसे सीपी या उसी जाति का कोई जीव। वह पानी के ऊपर तैरता है— यह उदाहरण मात्र है। मैं यह विज्ञान की बात नहीं कहता हूँ। वह पानी के ऊपर तैरते हुए आखिर मुँह खोले हुए रहता है जिससे कि स्वाति नक्षत्र का पानी मुँह में पड़े। फिर एक बूँद पानी उसमें गिरा और वह मुँह बन्द करके नीचे चला गया— पानी के तल में, ध्यान में डूब गया। उसके बाद वहाँ से मोती तैयार हो गया। उसी प्रकार मनुष्य-गुरु के पास से मंत्र लेकर मनुष्य उसकी साधना कर, जीवन में उसको प्रतिफलित करके ईश्वर लाभ करता है। यही हुआ मनुष्य-गुरु और जगत-गुरु में अन्तर।

गुरु करना क्या उचित-अनुचित इत्यादि अनेक प्रकार के विचार पाये जाते हैं। हमलोग आस्तिक पथ से जाना चाहते हैं। आस्तिक का अर्थ क्या है? जो शास्त्र और गुरु-वाक्य में विश्वास करता है, उसको आस्तिक कहा जाता है। नास्तिक कौन है? जो वेद नहीं मानता है। हमलोग आस्तिक दल में हैं। अतएव, 'तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'। 'तद् विज्ञानार्थम्'— वह जो ब्रह्म-तत्त्व है उसको जानने के लिए जाना होगा। 'गुरुम् एव अभिगच्छेत्'— गुरु के पास अवश्य ही जाना होगा। 'एव' कहा गया है। 'एव' शब्द का प्रयोग बल देने के लिए हुआ है। —अवश्य ही जाना होगा 'गुरुम् एव अभिगच्छेत्'। किस प्रकार? 'समित्पाणि'— यज्ञ करने के लिए लकड़ी हाथ में लेकर या गुरु की सेवा हेतु जिन वस्तुओं की आवश्यकता है— वह सब लेकर शिष्य होने के लिए जो आवश्यक है— वह सब हाथ में लेकर जाना होगा। कैसे गुरु के समीप? जो 'श्रोत्रिय' एवं 'ब्रह्मनिष्ठ' हों। दो विशेषण दिये हैं। 'श्रोत्रिय' का क्या अर्थ है? जो वेदाचारी हों। शाश्वत काल से जिन गुणावलियों को

हम अच्छा सुनते आये, समाज ने जिनको स्वीकार कर लिया है—उन सभी को जिन्होंने अपने जीवन में प्रतिफलित किया है, रूपान्तरित किया है, जिन्होंने शास्त्रादि का अध्ययन कर उसके मर्म को समझा है एवं सिर्फ मर्म समझा ही नहीं, उन सभी को उन्होंने अपने जीवन में अपनाया है। इस प्रकार के जो वेदाचारी हैं, वे हुए श्रोत्रिय। और क्या? वे ब्रह्मनिष्ठ हैं—वे सर्वदा ब्रह्म-लिप्त हैं एवं 'ब्रह्म की ही बात सोचते हैं, ब्रह्मलाभ हेतु जीवन क्षय करते हैं। अन्य स्थान पर कहा गया है कि वे होंगे अव्रजिन एवं अकामहत अर्थात् अकपट एवं काम-शून्य—इस तरह के अनेक गुण चाहिए। श्री ठाकुर जैसा कि कहते थे, आत्महत्यार्थ साधारण छुरे की तरह कोई वस्तु ही पर्याप्त है लेकिन दूसरे को मारने के लिए ढाल-तलवार की आवश्यकता होती है। अतएव, साधारण मनुष्य यदि कहे कि दूसरों को शिक्षा देंगे तो यह हुआ उसका अहंकार मात्र। उसको बहुत कुछ करना होगा, एँड़ी-चोटी का पसीना एक करना होगा, जीवन भर तपस्या करनी होगी, भगवान को जानना होगा—कथा के माध्यम से, शास्त्र द्वारा और अन्य गुरु के पास से। दूसरे लोग जिससे समझ सकें, उसी भाषा में उपदेश करना होगा। अतएव, ढाल, तलवार इत्यादि बहुत कुछ चाहिए। वैसे ही सिर्फ मैंने अपने आपको गुरु घोषित कर दिया और गुरु हो गया—यह नहीं होता है। फिर इसी तरह से शिष्य का भी कर्त्तव्य है। शास्त्रानुसार, "आश्चर्यो वक्ता कुशलोह्यस्य लव्धा। आश्चर्यं ज्ञान कुशलानुशिष्ट॥" जो शिष्य होगा वह भी बिरला व्यक्ति ही, वह भी आश्चर्यकर होगा उसको देखकर मन में होगा—a wonderful man—अपूर्व व्यक्ति। हजारों में एक होगा। क्योंकि गुरु में जैसा ज्ञान, भक्ति आदि विशेष-विशेष गुणों का रहना आवश्यक है, उसी प्रकार शिष्य के पक्ष में भी अनेक सद्‌गुणों का प्रयोजन है। फिर इन सद्‌गुणों को अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में शंकराचार्य ने निश्चित कर दिया है और उन्होंने इसे उपनिषदों से लिया है। वे (सद्‌गुण) क्या हैं? शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान। अर्थात् शरीर एवं मन दोनों के ऊपर शिष्य का नियंत्रण होगा। उसका मन उसकी इच्छानुसार चलेगा। आँख के किसी एक वस्तु को देखने की इच्छा होने मन भी उसके पीछे भागेगा—तब शिष्य कहेगा, ऐसा नहीं होगा; तुमको हमारी आज्ञानुसार चलना है अपने अधीन मन एवं शरीर दोनों को रखना होगा। हुआ शम, दम। उसके बाद है उपरति—थोड़ा मन उठाना होगा। "सांसारिक भोग सुखादि से दूर जाकर भगवान की ओर मैं जाऊंगा।" यह इच्छा भीतर जागृत होगी एवं इसी इच्छानुसार वह बहुल प्रयत्न करेगा। इसको कहा जाता है—मन को संसार के भीतर से हटा लेना। सम्पूर्ण संन्यासी तो एक बारगी नहीं बना जा सकता है। स्वामी जी ने कहा है कि बौद्ध धर्म के इस संन्यास के ऊपर विशेष जोर देने के कारण ही भारतवर्ष की [illegible] हुई थी।

क्योंकि मनुष्य को बचाए रख[illegible] लिए, समाज को बचाए रखने के लिए उसके भीतर [illegible] की जरूरत है, सतोगुण की भी जरूरत है—सबका प्रयोजन है। अतएव, सभी संन्यासी बनेंगे—यह जिस प्रकार विचार दृष्टि से संभव नहीं है, उसी प्रकार कार्य रूप में भी फलवती नहीं हो सकता। मैं संसार करता हूं भगवान लिए इस प्रकार का एक भाव शिष्य के अन्दर [illegible] जरूरी है।

उसके बाद है—तितिक्षा। "सहनं सर्वदुःखानाम् अप्रतिकारपूर्वकम्"—अनेक तरह के दुःख आते हैं यदि उसी के प्रतिकार में मैं सब समय लगा रहूँ तो सारा जीवन लड़ाई करने में ही बीत जायगा, इसको कब पुकारूंगा! अतएव, थोड़ा सह लेने की बात है। किसी ने एक खराब बात कह दी, दुःख की बात दी, मैं उसको मारने गया या गाली-गलौज करने यह कोई अच्छा काम नहीं हुआ। बर्दाश्त कर लेना इसको शास्त्र में तितिक्षा कहा गया है।

शिष्य होगा श्रद्धाचारी—शास्त्र के प्रति, गुरु के प्रति, देवताओं के प्रति श्रद्धाचारी।

उसके बाद समाधि। समाधि का मतलब है मन की एकाग्रता।

उसके बाद कहा है, "नित्यानित्यवस्तुविवेक"। यह हुई नित्यवस्तु, वह हुई अनित्य वस्तु, यह भगवान की ओर ले जायगी, यह भगवान से विमुख ले जायगी—यह विवेक, बुद्धि, विचार रहना आवश्यक है।

और है "इहामुत्रफलभोग विरागः।" इस संसार में या परलोक में इच्छानुसार भोग करूँगा—यह इच्छा न रखकर भोग्य विषयों से वैराग्य अवलम्बन करना। "मुझको संसार नहीं चाहिए, इहलोक नहीं चाहिए, स्वर्ग नहीं चाहिए, कुछ नहीं चाहिए। मैं चाहता हूँ भगवान को, ईश्वर को। मैं चाहता हूँ ज्ञान, भक्ति योग इत्यादि।" यह भाव अपने अन्दर रखना होगा।

और क्या ?—मुमुक्षत्व। उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ मुमुक्षत्व को यदि न लें अर्थात् मैं जगत् से उद्धार पाना चाहता हूँ, इस दुःखमय संसार से मैं मुक्त होना चाहता हूँ, मैं भगवान को पाना चाहता हूँ—यह इच्छा यदि अपने मन में न रहे तो यह आध्यात्मिकता (Spirituality) नहीं हुई; यह हो गयी नैतिकता (Morality)।

शम, दम, उपरति, तितिक्षा इत्यादि जो कुछ हुआ वह सब नीतिवाचक विषय लेकर। नित्य-अनित्य-वस्तु-विवेक तो थोड़ा-बहुत मौखिक रूप से भी किया, किन्तु असली चीज है मुमुक्षत्व—मैं मुक्ति लाभ करना चाहता हूँ, भगवान को मैं पाना चाहता हूँ, उनके प्रति मेरा जो आग्रह है, उनको मैं जानूँगा, उनके प्रति मुझमें भक्ति, प्रेम आयेगा, उनके लिए मैं ध्यान-धारणा करूँगा—इस प्रकार की व्याकुलता शिष्य के अन्दर आनी चाहिए। तभी वह शिष्य होने के उपयुक्त होगा।

गुरु के संबंध में एक बात है, जिसके बारे में ठाकुर ने कहा है "आज्ञा नहीं होने पर कोई उसकी बात नहीं सुनता है। गुरु वह नहीं हो सकता है। भगवान जिनको आदेश देते हैं वही गुरु हो सकते हैं" इस कथन का प्रतिकार करने का साहस कोई नहीं कर सकता है; कम-से-कम मैं तो नहीं ही कर सकता हूँ। फिर हम साधारण रूप से गुरु कहकर जिन्हें स्वीकार कर लेते हैं या जो गुरु की भाँति मंत्रादि देते हैं उनकी अवस्था तब क्या है ? सभी ने क्या ईश्वर के यहाँ से आदेश पाया है ? मैं नहीं जानता हूँ। क्योंकि शास्त्रानुसार भगवान लाभ या ज्ञान होना-तो है स्वसंवेद्य वस्तु। It is a subjective realisation—अपने मन की बात स्वयं समझ सकते हैं; बाहर उसे प्रकाश करके नहीं कहा जा सकता है एवं कहने पर भी आपलोग विश्वास करेंगे क्या ? मैं यदि कहूँ, मैंने भगवान लाभ किया है—विश्वास करेंगे ? हजारों में कोई एक भगवान लाभ करता है कि नहीं इसमें भी सन्देह है। क्योंकि यह है मेरी वैयक्तिक वस्तु—मेरा एक स्वसंवेद्य अनुभव। जिसे स्वयं जान सकता हूँ। दूसरों को वह बता नहीं सकता, कहने पर भी कोई लाभ नहीं। ऐसी बात होने पर वे हमारे गुरु कैसे हुए ? ठाकुर ने खुद कहा है कि मैं किसी का गुरु नहीं। माँ उनको लेकर जैसा कराती हैं वैसा ही वे करते हैं। महापुरुष स्वामी शिवानन्दजी को हमलोगों ने कहते हुए सुना है, देखा है कि वे खड़े रहते हैं, ठाकुर की छवि दीवार पर रहती है,—उनकी ओर देखकर बोलते हैं, अपने वक्षस्थल पर हाथ देकर "यह है तुम्हारा कुत्ता" और उनका अपना एक कुत्ता था, उसको वे खूब प्यार करते थे। उसकी ओर देख कर बोले "वह बेटा है इसका कुत्ता।" ठाकुर भी कहते थे कि मैं गुरु होकर किसी को मंत्र देता हूँ, सो नहीं। तब क्या ? महापुरुष महाराज कहते थे, "ठाकुर हमलोगों को लेकर करा लेते हैं। कहा लेते हैं। मैं ठाकुर के पादपद्म मे शिष्य का अर्पण कर देता हूँ "मैं गुरु, यह अभिमान नहीं रखना है। मैं किसी का गुरु नहीं हो सकता हूँ।" गुरु हो सकते हैं स्वयं भगवान। गुरु हो सकते हैं अवतार पुरुष, गुरु हो सकते हैं आधिकारिक पुरुष। गुरु वे हो सकते हैं, जिन्होंने भगवान के पास से आदेश पाया है। सिद्धिलाभ के उपरांत वे गुरु हो सकते हैं। साधारण गुरु तब क्या कर सकते हैं ? वे शिक्षा गुरु हो सकते हैं। उनका मनोभाव यह होगा कि "गुरु परम्परा से मैंने जो पाया है वही पथ तुमको कहता हूँ। उसी पथ पर चलता हूँ। पथ पर चलकर मैंने देखा है कि मेरा उपकार हुआ है, मैं तुमको भी कहता हूँ कि उस पथ पर चलने से तुम्हारा भी उपकार होगा।"

इसका मतलब क्या हुआ ? मैं गुरु का अभिमान

लेकर नहीं कह रहा हूँ, किन्तु गुरुजनों से जो साधनापथ पाया है वही दूसरों से कहता हूँ। दूसरे लोग भी उसी पथ पर चलें, इससे उनका लाभ होगा। हमलोग इसी प्रकार सोचते हैं।

गुरु-शिष्य संबंध कैसा है? गुरु स्वयं भगवान हैं। वे दूसरों के भीतर से अपना प्रकाश करते हैं। जिस तरह से और जिसके माध्यम से जितना संभव है उतना वे अपने आप को प्रकाशित करते हैं। सभी गुरु ही हैं, लेकिन समान रूप से नहीं। उनकी शक्ति में बहुत अन्तर रहता है। भगवान ने जिनको जितनी शक्ति दी है वे उतनी ही शक्ति का प्रकाश कर पाते हैं। अदेश पाने की बात, जैसा कि हमने समझा है अर्थात् भगवान् स्वयं आकर अदेश करेंगे कि "तुम मंत्र दो, तुम यह कार्य करो।"—यह नहीं भी हो सकता है। किन्तु गुरु के मन के भीतर से एक अनुभूति जागृत हुई कि मेरे द्वारा यह कार्य करना संभव है और अन्य दस लोग भी चाहते हैं कि "मैं यह कार्य करूँ।" यह कार्य किस भाव से करता हूँ? मैं उनका दास होकर। मैं अपना कुछ शिष्य को देता हूँ—यह नहीं। दूसरों के पास से—"इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।"—हमलोग जो बात जिस प्रकार से सुनते आये हैं उसी प्रकार वह सब बात फिर दूसरों को कहते हैं। ठाकुर कहते हैं, "अभिमान नहीं रहने से ही हुआ।" मैं लेक्चर देता हूँ। मैं मंत्र देता हूँ—इस प्रकार का अहंकार नहीं रहने से ही हुआ।

फिर शिष्य का भाव क्या होगा? शिष्य गुरु को ईश्वरीय भाव के प्रकाश रूप से ही देखेंगे। एक मंत्र भी हैं—

"गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

गुरु को ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि कहा गया है। वे फिर ज्ञान शलाका द्वारा चक्षु उन्मीलित करते हैं, हमलोगों के लिए ज्ञान लाभ का पथ दिखा देते हैं। शिष्य के मन की यह जो धारणा है, यह सब ... है? इस प्रकार शिष्य स्वयं विचार करेंगे, कि गुरु ... वे किस भाव से ग्रहण करेंगे। ठाकुर ने एक जगह कहा। "यद्यपि मेरा गुरु मदिरालय जाय, फिर भी मेरा गुरु नित्यानन्द राय।"

शिष्य गुरु के प्रति जिस दृष्टि का अवलम्बन करेगा वह भी उसकी Subjective—एकदम से अपने मन की बात होगी। यह जो कहना हुआ, "मैंने दिया मन्तर अब मन तुम्हारा......।" शिष्य गुरु के स्थूल शरीर को देखेगा? या गुरु के आचरण को देखेगा? या गुरु के पास से प्राप्त मंत्र के अर्थ की ओर ध्यान देगा या जिस भगवान की बात गुरु ने बतायी है उसी भगवान को जानने की चेष्टा करेगा? शास्त्रकार कहते हैं कि जिस गुरु से तुमने मंत्र पाया है उस गुरु की समालोचना करना ठीक नहीं। शिष्य ने पहले गुरु की जांच परखकर ही उन्हें गुरु किया है। अब उनसे मंत्र पाया है, वही हुआ शिष्य की निजी वस्तु। उसी को काम में लाना होगा। शिष्य ने गुरु के अन्दर क्या देखा है?—वही आदि-गुरु-भगवान स्वयं। भगवान मनुष्य के हृदय से सभी मनुष्यों को परिचालित करते हैं। गुरु को भी वे परिचालित करते हैं। शिष्य को भी वे परिचालित करते हैं।

ऐसा होने पर धर्म जगत में एक मात्र देखने, जानने की वस्तु है भगवान। भगवान के प्रति प्रेम-प्रीति, भगवान को जानने के उपाय आदि के लिए ही साधन करना—यही सब असली वस्तु है। गुरु का बाह्य रूप, गुण, आचार, आचरण देखना एवं उन्हीं सब को लेकर आलोचना करना शिष्य का कर्त्तव्य नहीं—इन सब से उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है। शिष्य का भाव यह होगा कि गुरु से प्राप्त उस सार वस्तु को ग्रहण करके उसी को जीवन में प्रतिफलित करना। कौन जीवन में कितना उतार पायेगा, विचार करेगा या नहीं करेगा—वह निर्भर करता है शिष्य के अपने विश्वास के ऊपर, अपनी शक्ति के ऊपर। अपनी सामाजिक और पारिवारिक अवस्था की बात भी सोचनी होगी। इन सब के अन्दर से शिष्य

को आगे जाना होगा। लड़ाई करके जाना होगा—मन आदि के साथ। थोड़ा बहुत करते न करते मन में अनेक प्रश्नों का उदय होता है—इतना सब कुछ तो किया लेकिन कोई फल तो नहीं पा रहा हूँ। एक बात याद आती है, श्री श्री माँ को एक साधु ने पत्र लिखकर पूछा था, "माँ, इतने दिनों तक ठाकुर को पुकारा, और उनके लिए ही तो ध्यान इत्यादि करता हूँ, किन्तु कहीं कुछ लाभ तो नहीं हुआ।" चिट्ठी सुनकर माँ बोलीं, उसको लिख दो, तुम्हारा काम है भगवान को पुकारना। तुम साधु हुए हो उनको पुकारने के लिए। भगवान कब आयेंगे या नहीं आयेगे, यह उनकी मर्जी। शिष्य जो हुआ है वह लाभ करने के लिए ही। यदि वह हताश हो जाय कि "मुझे भगवान लाभ नहीं हुआ—तब मंत्र लेकर क्या हुआ ?"—इसका नाम है अतिव्यस्तता। वह किस तरह ? जैसे छोटा लड़का वृक्ष रोपता है। थोड़ी-थोड़ी देर पर उसे उखाड़-उखाड़कर देखता है कि जड़ निकली कि नहीं ? ऐसा करने से वृक्ष मर जायगा। उसी प्रकार अभ्यास की बात है साधना। जैसी साधना वैसी सिद्धि।" साधना ही हुई अभ्यास की चीज। साधना यदि ठीक हो तो सिद्धि अपने-आप आने के लिए बाध्य होगी।

अतएव, शिष्य का कर्तव्य हुआ—अमुक गुरु बड़ा, अमुक गुरु छोटा इत्यादि की आलोचना नहीं करना। गुरु शक्ति के रूप में एक मात्र शक्ति को ही हम साधारण रूप से मन में लाते हैं। वह है—भगवत् शक्ति का ही एक विकास। गुरु के आचरण आदि गुरु नहीं हैं। उनके भीतर में भगवान की जो शक्ति है, उसी शक्ति को ही मैं गुरू के रूप में स्वीकार करता हूँ एवं उसी शक्ति को मैं प्रणाम करके कहता हूँ "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु" ...." इत्यादि। शरीर को नहीं या उनके मन को नहीं, उनके आचार को नहीं, उनकी सामाजिक अवस्था को नहीं, किसी को भी नहीं। उनके भीतर जो भगवान रहते हैं, उन्हीं को मैं गुरु रूप में स्वीकार करता हूँ एवं उन्हीं को मैं प्रणाम करता हूँ, जिससे वे मेरा मंगल करें—यही हुआ ठीक-ठीक मनोभाव

□□

पृष्ठ—३८ का शेषांश

में की जाती थी। दालान के ठीक उत्तर तरफ रसोई घर था।

पूजा घर और काली तपस्वी के कमरे के पूर्व ओर बरामदा था। बरामदे के दक्षिण-पश्चिम कोने में वराह-नगर की एक समिति का पुस्तकालय था। ये सब कमरे दुमंजिले पर थे। जीने दो थे। एक तो पुस्तकालय और काली तपस्वी के कमरे के बीच से, और दूसरा, भक्तों के भोजन करने वाले कमरे के उत्तर तरफ। नरेन्द्र आदि भक्तगण इसी जीने से शाम को कभी-कभी छत पर जाते थे। वहाँ बैठकर वे लोग ईश्वर संबंधी अनेक विषयों की चर्चा किया करते थे। कभी भगवान श्रीरामकृष्ण की बातें, कभी शंकराचार्य की, कभी रामानुज की और कभी ईसामसीह की बातें होती थीं। कभी हिन्दू-दर्शन की बातें होती थीं तो कभी यूरोपीय दर्शन का प्रसंग चलता था, कभी वेदों, कभी पुराणों, और कभी तन्त्रों की कथाएँ हुआ करती थी।

'दानव के कमरे' में बैठकर नरेन्द्र अपने दैवी कण्ठ से परमात्मा के नामों और उनके गुणों का कीर्तन किया करते थे। शरद और दूसरे भाइयों को गाना सिखलाते थे। काली वाद्य सीखते थे। इस कमरे में नरेन्द्र कितनी बार ही कीर्तन करते हुए आनन्द करते और आनन्द पूर्वक नृत्य किया करते थे।

* * *

(रामकृष्ण वचनामृत : तृतीय भाग से)

मंत्र दीक्षा का महत्व

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
सहाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं संघ

[रामकृष्ण आश्रम, बंगलोर में मंगलवार, ४ सितम्बर १९८४ ई० को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के सहाध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज द्वारा दिया गया प्रवचन जो प्रबुद्ध भारत के मई १९८५ अंक में प्रकाशित हुआ था। इसका हिन्दी में रूपान्तरण किया है डॉ० केदारनाथ लाभ ने।]

'दीक्षा' शब्द का अर्थ है, आरंभ करने का व्रत लेना। इसी से अंग्रेजी में इसे "इनिशियेशन" (Initiation) कहते हैं, जिसका अर्थ है आरंभ करना या किसी व्यक्ति को किसी निश्चित पथ या दिशा की ओर यात्रा करने के लिए तैयार करना। दीक्षा का अंत विभिन्न हो सकता है और इसकी पद्धतियाँ भी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। इन ग्रंथों में 'यज्ञ दीक्षा'—कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी विशेष यज्ञ का अनुष्ठान करने के व्रत का उल्लेख मिलता है। तथापि, हमलोग यहाँ अपना ध्यान 'मंत्र दीक्षा' के विषय तक ही सीमित रखेंगे जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति को किसी मंत्र का जप करने के हेतु व्रती बनाना।

मंत्र क्या है? मंत्र एक आध्यात्मिक या गुह्य सूत्र है, जिसकी आवृत्ति अज्ञान के बन्धन से तथा जन्म और मृत्यु की शृंखला से मुक्ति प्रदान करती है। मंत्र दीक्षा का यही प्रयोजन है। दीक्षा क्या है तथा हमारी आध्यात्मिक साधना में यह कितनी महत्वपूर्ण है, इस संबंध में हमलोगों के मन में बहुत बड़ी भ्रान्ति है। अनेक व्यक्ति दीक्षा का क्या अर्थ है तथा इसकी प्रक्रिया से क्या प्राप्त करना चाहिए इसके संबंध में अपने मन में स्पष्ट हुए बिना दीक्षा लेना चाहते हैं। दीक्षा शब्द का प्रयोग मैं केवल अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए गुरु द्वारा निर्धारित सूत्र की नियमित आवृत्ति करने का व्रत लेने के रूप में करूँगा। मंत्र शब्द की व्याख्या संस्कृत में इस प्रकार की गयी है—मननात् त्रायते इति मंत्रः, अर्थात् मंत्र उसे कहते हैं जिस पर ध्यान करने से व्यक्ति जन्म और मृत्यु के चक्र से, भव-सागर से, माया के संसार से मुक्त हो जायगा। मंत्र शब्द का यही व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है। और दीक्षा का अर्थ है गुरु द्वारा निर्धारित एक विशेष प्रक्रम में मंत्र के जप का प्रारंभ करना।

प्राचीन काल में मंत्र का अर्थ होता था वेदों में प्राप्त श्लोक। सारे वेद मंत्रों और ब्राह्मणों से युक्त हैं। मंत्र-ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। 'वेद शब्द का अर्थ है मंत्र और ब्राह्मण'। मंत्र विभिन्न यज्ञों के संदर्भ में उच्चारित ऋषियों के उद्गार हैं। ब्राह्मण वेद के उस अंश का निर्देश करते हैं जो इन मंत्रों के उपयोग का विवेचन करता है। ब्राह्मण यह बताते हैं कि विभिन्न यज्ञों आदि में मंत्रों का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए। किन्तु, कालान्तर में, तंत्रों में, मंत्र एक भिन्न अर्थ ग्रहण कर लेता है। तांत्रिक दृष्टि से 'मंत्र' शब्द का अर्थ है—उन शब्दों का एक विशेष, रहस्यमय गुह्य सूत्र जो ईश्वर के किसी पक्ष को सूचित करता है। वे ऐसी भाषा में लिखे होते हैं जो अदीक्षित व्यक्तियों के लिए अबोधगम्य होते हैं। तांत्रिक मंत्र स्वरूपतः रहस्यमय होते हैं जो ईश्वर के एक विशेष पक्ष को सूचित करने वाले अर्थगर्भित लघु अक्षरों से युक्त, रहते हैं।

मंत्र—वैदिक हों या तांत्रिक—किसी मानव प्राणी की रचनाएँ नहीं हैं। वे उत्तरोत्तर गुरुओं और शिष्यों

की परम्परा से चले आते रहे हैं—ऐसी मान्यता है। वेद और तंत्र दोनों कहते हैं कि मंत्र शाश्वत हैं, अनादि और नित्य हैं। जहाँ वेद कहते हैं कि मंत्र ऋषि के समक्ष प्रकट हुए, वहाँ तंत्र के अनुसार मंत्र पार्वती द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में दिये गये शिव के वचन हैं। पार्वती प्रश्न करती हैं और शिव समझाते हैं। तांत्रिक भाव में, मंत्र एक रहस्यपूर्ण सूत्र है जो ईश्वर के एक विशेष पक्ष का प्रतीकात्मक रूप है। ईश्वर के भिन्न-भिन्न पक्षों के लिए भिन्न-भिन्न मंत्र हैं। मंत्र दीक्षा का अर्थ है गुरु द्वारा अपने शिष्य को एक विशेष मंत्र संप्रेषित करना। शिष्य इन मंत्रों का जप करने या इन मंत्रों पर ध्यान करने का व्रत लेता है।

तांत्रिक और वैदिक मंत्रों में यह अन्तर है : वैदिक मंत्र विशेष यज्ञों में विशिष्ट देवी-देवताओं की प्रसन्नता के लिए, अनुकूलता के लिए उच्चारित प्रार्थनाओं, स्तोत्रों आदि के संक्षिप्त रूप हैं, जब कि तांत्रिक मंत्र देवत्व के किसी विशेष पक्ष यथा कोई देवता या देवी को सूचित करने वाले गुह्य सूत्र हैं। इन दिनों भारत में जो मंत्र दीक्षा दी जाती है वह तांत्रिक प्रक्रिया पर मुख्यतः आधारित रहती है। वैदिक युग में भी दीक्षा दी जाती थी जिसकी कुछ परम्पराएँ आधुनिक काल में भी जीवित हैं। उदाहरण स्वरूप, जब शिष्य अपने गुरु के गृह में प्रवेश करता है और शिष्य के रूप में उसे स्वीकार लिया जाता है, तब उसे सर्वज्ञात गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है। वैदिक मंत्र होने कारण, गायत्री का आकार लम्बा है। दूसरी ओर तांत्रिक मंत्र लघु सूत्र हैं।

मंत्रों को पर्याप्त सावधानी पूर्वक सुरक्षित रखना चाहिए ताकि इसके रूप और गुण में कोई परिवर्तन घटित न हो सके। इसमें न कुछ जोड़ना और न इसमें कुछ घटाना चाहिए। वेदों को इन दिनों लिखा जाता है, किन्तु पूर्व में वे केवल गुरु द्वारा शिष्य को (मौखिक रूप में) प्रदान किये जाते थे। उन्हें 'श्रुति' कहा जाता था और गुरु के मुख से कथित इन्हें शिष्य द्वारा केवल सुना तथा स्मृति में रखा जाता था। मंत्रों में किसी प्रकार के परिवर्तन या संपादन की अनुमति नहीं दी जाती थी। इनमें व्याकरणगत संशोधन नहीं किये जा सकते थे। वे तैयार माल थे, और शिष्य को केवल उन पर ध्यान करना तथा गुरु के उपदेशों का पालन करना होता था। तंत्रों के अनुसार भी मंत्रो को विना किसी परिवर्तन के सुरक्षित रखना तथा काफी सावधानी पूर्वक उनका अनुसरण करना चाहिए। तांत्रिक मंत्रों के विषय में। संप्रेषण की गोपनीयता को कठोरता पूर्वक लागू किया जाता था। क्यों? इसलिए कि ऐसी धारणा थी कि यदि ऐसी कठोरता का पालन नहीं किया गया तो मंत्र उतने प्रभावशाली और अमोध नहीं होंगे जितना उन्हें होना चाहिए। मंत्रों का जोरों से उच्चारण करने पर वे अपनी शक्ति खो देते हैं। मंत्र बड़े शक्तिशाली होते हैं: वे हमारे आध्यात्मिक ज्ञान को प्रकट करने में बड़े समर्थ होते हैं—ऐसी मान्यता है। मंत्र के जप से मंत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले इष्ट देव की मूर्ति या उनका वास्तविक स्वरूप शिष्य के समक्ष प्रकट हो जाता है।

किन्तु, आजकल वेद मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं और किसी भी व्यक्ति का उनमें प्रवेश हो सकता है। इसी प्रकार तांत्रिक मंत्र भी तांत्रिक ग्रंथों में प्रकाशित हैं और कोई भी व्यक्ति उन्हें पढ़ सकता है। किन्तु, वैदिक और तांत्रिक दोनों शास्त्रों में सदा यह आदेश दिया गया है कि इनमें इस प्रकार का मुक्त प्रवेश उचित नहीं है। उपनिषदों की घोषणा है : 'मात्र गुरु से प्राप्त ज्ञान ही फलवान होता है'—'आचार्यात् हि एव विद्या विदिता साधिष्टं प्रापतीति।' (छान्दोग्य उपनिषद् ४.९.३) अपने जीवन में हमें यदि ज्ञान के एक लघु अंश को भी वस्तुतः फलदायी वनाना है तो इसे निश्चयपूर्ववक गुरु के श्रीमुख से ही सुनना चाहिए। अनुसरण पर वेदों और पुराणों, दोनों, में इस सिद्धान्त के दृढ़ता पूर्वक अनुसरण पर बल दिया गया है। इस कथन के पीछे यह भाव है कि गुरु केवल मंत्र ही नहीं देते हैं, बल्कि इसके साथ ही वे अपने शिष्य में अपनी आध्यात्मिक ऊर्जाओं में से भी कुछ ऊर्जाओं का संचार कर देते हैं। जब कोई व्यक्ति मुद्रित पुस्तकों में मंत्रों को पढ़ता है तब इस प्रकार का शक्तिपात

नहीं हो पाता। अब हमें इसे और अधिक बोधगम्य या तर्कसंगत रूप में समझाने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि हम किसी पुस्तक में कुछ आचार संहिताएँ पढ़ते हैं तो संभव है कि उनका हम पर कुछ प्रभाव पड़े। किन्तु जब उन आचारगत उपदेशों को हम ऐसे व्यक्ति के मुख से सुनते हैं जिन्हें हम प्रेम और श्रद्धा करते हैं तो स्वभावतः उनका सर्वथा भिन्न ही प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार, यद्यपि हम मंत्र दीक्षा के द्वारा आध्यात्मिक ऊर्जा के संचार की वास्तविक प्रक्रिया को भले ही नहीं समझ पायें, तथापि हम कम से कम इतना तो समझ ही सकते हैं कि जलते हुए दीये से ही दूसरा दीया जल पाता है। किसी भी आत्मा को प्रदीप्त करने के लिए किसी ऐसी आत्मा का होना आवश्यक है जो पहले से ही प्रदीप्त हो चुका हो। गुरु द्वारा शिष्य में शक्ति-संचार का यही अर्थ है। इस प्रकार के जीवित सम्पर्क के बिना शक्ति-संचार संभव नहीं है।

जीवित सम्पर्क के द्वारा मंत्र अधिक शक्तिशाली हो जाता है। इसी शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए शास्त्र शिष्यों को एक प्रकार की गोपनीयता रखने का आदेश देते हैं, और इस नियम का उल्लंघन करने वालों को कठोर दंड देने का निर्देश करते हैं। वस्तुतः लोगों को मंत्रों को हल्के या तुच्छ रूप में लेने से रोकना ही इसका प्रयोजन है। किसी भी व्यक्ति को मंत्रों को गंभीरता पूर्वक लेना चाहिए। व्यक्ति को मंत्रों का परीक्षण नहीं करना चाहिए। उनका हमारे जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। जब हम ईश्वरानुभूति के लिए स्वयं को समर्पित करने की चेष्टा करते हैं, तब हमें निश्चय ही यह जान लेना चाहिए कि यह उदासीन भाव से नहीं की जा सकती। गुरु केवल मंत्र का ही नहीं, बल्कि उस ज्ञान का भी संचार करते हैं जिसे उन्होंने वैयक्तिक अनुभूति या उसी मार्ग के गुरु की अनुभूति से प्राप्त किया है और इसीलिए सही रूप से शिष्य को शिक्षा देने में सक्षम हैं।

इस सम्बन्ध में एक दूसरी बात मेरे मन में आती है। मंत्र असंख्य हैं। यदि वे सभी हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिये जायँ तो हम इस उलझन में पड़ जायेंगे कि किसे स्वीकार किया जाय और किसे बहिष्कृत किया जाय। इस उलझन को दूर करने के लिए, किसी ऐसे अधिकारी व्यक्ति के, जिसे इन मंत्रों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हो, आदेश का पालन करना सर्वोत्तम सिद्धान्त होगा। वही व्यक्ति गुरु है।

विशेषतः तंत्र शास्त्रों में गुरु को साक्षात् परब्रह्म कहा गया है। 'गुरु स्तोत्रम्' में कहा गया है कि गुरु ब्रह्म हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु शिव हैं, गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं। ऐसे गुरु को मेरा नमस्कार है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

गुरु को परम ब्रह्म ही माना गया है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानन्द) ही गुरु हैं। यह वेदों एवं अन्य शास्त्रों के उपदेशों के अनुसार ही है। किन्तु, जब हम दीक्षा लेने जाते हैं तब हम यह अनुभव नहीं करते कि हमें उसी सर्वज्ञान सम्पन्न परम सत्ता, जिसे ब्रह्म कहते हैं, के द्वारा उपदेश दिया जा रहा है। हम एक व्यक्ति के पास जाते हैं, जिसे हमने अपना गुरु चुना है, क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि वह हमारा पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ है। उस व्यक्ति का जन्म होता है, मृत्यु होती है तथा उसमें अन्य मानवीय सीमाएँ होती हैं। फलतः उसे ब्रह्म से अभिन्न रूप में नहीं पहचाना जा सकता। किन्तु हमारे शास्त्र गुरु को परम सत्ता अर्थात् ब्रह्म के रूप में देखने का कठोर आदेश देते हैं। क्या इसका अर्थ सिद्धान्त और व्यवहार में विरोध होना नहीं है? हाँ, एक अर्थ में है। किन्तु तब यह ठीक प्रतिमा के द्वारा ईश्वर की आराधना करने के हमलोगों के अभ्यास की तरह है। हमलोग ईश्वर के कुछ विशेष पक्षों को सूचित करने वाली प्रतिमाओं का निर्माण करते हैं। प्रतिमा उन पदार्थों से बनायी जाती है जो जड़ होते हैं और हम उस प्रतिमा के द्वारा ध्यान या आराधना ईश्वर की करते हैं जो अनन्त चेतना सम्पन्न हैं। हमलोग

ऐसा क्यों करते है ? क्योंकि हमारा मानस उस अनन्त चैतन्य सत्ता को जो ज्ञानातीत है, पूर्णरूपेण समझ नहीं सकता। इसलिए हमलोगों को किसी प्रतिमा या किसी चित्र अथवा किसी प्रतीकात्मक रेखा के रूप में ईश्वर के स्थूल प्रतिरूप का आश्रय लेना पड़ता है। विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें बिना किसी प्रतिमा के ईश्वर की आराधना की जाती है। यदि हम किसी प्रतीक के द्वारा उनकी आराधना नहीं करें तो हम किसी दूसरे प्रकार से उनके सम्बन्ध में सोच-विचार नहीं कर सकते। जो धर्म मन से सभी प्रकार की प्रतिमाओं को मिटा देने का दृढ़तापूर्वक परामर्श देते है, वे भी किसी एक या अन्य प्रकार के प्रतीक का आश्रय लेते ही हैं।

मंत्र ईश्वर के प्रतीकात्मक प्रतिरूप है—ईश्वरादिष्ट शब्दों के रूप में।

मंत्र ईश्वर के—अपौरुषेय, स्वयं प्रकटित शब्दों के रूप में ईश्वर के—प्रतीकात्मक प्रतिरूप हैं। ऐसे भक्तों के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने ईश्वर को देदीप्यमान रेखा-चित्र या मंत्र के ज्योतिर्मय अक्षरों के रूप से रहस्यमयपूर्ण अनुभूति प्राप्त की है। वस्तुतः यह एक रहस्यात्मक अनुभूति का उदाहरण है, और धर्म ऐसी रहस्यपूर्ण अभिव्यक्तियों से भरा हुआ होता है। हम सदैव इन अनुभूतियों को, जो तर्कातीत होते है, तर्क से सिद्ध नहीं कर सकते हैं। संसार के दीक्षा रहित लोगों को हम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि ये अनुभूतियाँ वास्तविक हैं। एक भौतिक प्रतिमा या एक शब्द या एक प्रतीक ईश्वर का प्रतिरूप हो सकता है, किन्तु ईश्वर को उपलब्ध करने के लिए यह एक सर्वथा आवश्यक सहायता है। मानव का मन ईश्वर को केवल आकार के द्वारा ही समझ सकता है। वह निराकार को नहीं समझ सकता। यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या हमें सदा आकार से बँधा रहना होगा ? नहीं। आकार से हमें निराकार तक पहुँचना है। हम अपनी वर्तमान मानसिक स्थिति को बिना रूपान्तरित किये हुए एकाएक सीधे निराकार तक कभी नहीं पहुँच सकते। आरंभ में हमारा मन आकारों या प्रतीकों के बिना किसी भी तरह सोच ही नहीं सकता। इसलिए आध्यात्मिक साधना के लिए प्रतीक नितान्त आवश्यक है और मंत्र ईश्वर को ही प्रतिरूपित करने वाले प्रतीक हैं।

मान लो कि हम ईश्वर के एक विशेष रूप को जो एक प्रतिमा विशेष में प्रतिरूपित है, प्रेम करते हैं। जाहिर है कि हम उस प्रतिमा का खंडित या विरूपित होना पसंद नहीं करते हैं। इसी प्रकार, मंत्र को भी विकृत नहीं होना चाहिए। इसको आमूल, इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन किये बिना, यथावत रूप में, जपना चाहिए। इस नियम का कड़ाई से पालन करना चाहिए। फिर, साधना की किसी एक पद्धति तक ही हमें अपने को सीमित रखना होगा।

क्या आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति के लिए सद्गुरु के समीप जाना आवश्यक है ? प्रत्यक्ष रूप से यह एक व्यावहारिक प्रस्ताव है। गुरु के पास कुछ अनिवार्य गुण होने चाहिए जिनके बिना वह अज्ञानी का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकता। पहली योग्यता यह है कि उसे निश्चय पूर्वक श्रोत्रिय अर्थात् शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए। किन्तु केवल पांडित्य से कोई गुरु नहीं होता। उसे परमज्ञानी, प्रबुद्ध होना होगा; उसे ऐसा व्यक्ति होना होगा जिसने सत्य की प्रत्यक्षानुभूति प्राप्त कर ली हो। गुरु की दूसरी योग्यता यह है कि उसे अनिवार्यतः अवृजिन होना चाहिए; उसका आचरण दोष या कलंक से सर्वथा परे हो। उसे दृढ़ता पूर्वक शास्त्रीय आदर्शों के अनुरूप जीवन-यापन करना चाहिए। उसे सभी पापाचारों से तथा बिलकुल पवित्र होना चाहिए। अंत में उसे पूर्णतः अकामहत होना चाहिए; शिष्य के साथ उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का स्वार्थपूर्ण उद्देश्य नहीं होना चाहिए। उसे मंत्र प्रदान करने पर शिष्य से किसी प्रकार का लाभ प्राप्त करने की आकांक्षा से मुक्त रहना चाहिए। ये ही मुख्य गुण हैं जिन्हें किसी को गुरु के रूप में अंगीकार करते समय हमें ध्यान में रखना चाहिए।

शिष्य में किन गुणों का होना आवश्यक है? शिष्य को आध्यात्मिक आदर्श की खोज में उत्साही होना चाहिए। उसे मात्र ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए जो उपदेशों के अनुसरण के द्वारा केवल अपने कौतूहल को शान्त कर लेना चाहता है। उसे गुरु द्वारा दिये गये उपदेशों को आचरण में ढालने के प्रति गंभीर होना चाहिए। उसे शुद्ध चरित्र का भी होना चाहिए। गुरु और शिष्य दोनों के प्रति चरित्र की शुद्धता पर समान रूप से जोर दिया गया है। सब से बढ़कर, शिष्य को निश्चय पूर्वक विनम्र होना चाहिए। उसे अहंकारी नहीं होना चाहिए। बिना गंभीर श्रद्धा-भाव के उसे न गुरु के समीप जाना चाहिए न उसका मूल्यांकन करना चाहिए। एक मात्र विनम्रता ही जिज्ञासु को ऐसा उपयुक्त वाहन बनाती है जिसके द्वारा गुरु का ज्ञान वहन किया जा सकता है। विनम्रता, चाव, पवित्रता, और सेवा-भाव के बिना केवल गुरु से सम्पर्क के द्वारा शिष्य लाभान्वित नहीं हो सकता। इसी से उपनिषदों में कहा गया है—'आकांक्षी को शास्त्रज्ञ एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास हाथ में ईंधन लेकर (समित्पाणि होकर) ही जाना चाहिए'—तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। (मुण्डक उपनिषद् १.२.१२) ईंधन सेवा का प्रतीक है। प्राचीनकाल में यज्ञ करने के लिए गुरु को ईंधन की आवश्यकता होती थी। ईंधन के गट्ठर के साथ गुरु के समीप जाकर शिष्य गुरु की सेवा करने की अपनी तत्परता दिखाता था। महत्वपूर्ण विषय यह है कि ऐसी बात नहीं है कि सेवा के द्वारा गुरु प्रसन्न होंगे, बल्कि की गयी सेवा उसकी अपनी शुद्धता के लिए आवश्यक है जो शिष्य को गुरु के उपदेशों को ग्रहण करने के योग्य बनाती है। उसे केवल गुरु के निर्देशों का निर्विवाद रूप से एवं अखंड श्रद्धा के साथ पालन करना है।

धर्म कोई व्यावसायिक संस्थान नहीं है। स्वार्थपूर्ण उद्देश्य गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को बिगाड़ देते हैं। शिष्य को निश्चय ही विनम्रता से पूर्ण और सेवा के उत्साह से युक्त रहना चाहिए। उसे गुरुदेव के चरणों पर—उस व्यक्ति कि भांति नहीं जो गुरु को कुछ मूल्य देकर अपनी शिक्षा खरीदने जा रहा है—बल्कि एक भिक्षार्थी के रूप में स्वयं को समर्पित कर देना चाहिए। आध्यात्मिक ज्ञान गुरु प्रदत्त उपहार है जिसे विनम्रता और सेवा मात्र से उपलब्ध किया जा सकता है। गुरु शिष्य को दीक्षित करता है—उसे पथ पर चलाना प्रारंभ करता है। स्वामी ब्रह्मानन्द इस विषय पर बहुत कुछ कहा करते थे। यदि उनके उपदेशों को पढ़ो तो तुम इस सम्बन्ध में काफी मूल्यवान मार्गदर्शन पाओगे। उन्होंने किसी विषय को बिना रहस्यपूर्ण बनाये हुए शिक्षा दी है।

आध्यात्मिक ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे अध्ययन के द्वारा उपलब्ध किया जा सके। इसे विनम्रता, अध्यवसाय और परम श्रद्धा से युक्त गहन प्रयास से ही अर्जित करना होगा। श्रद्धा पर विशेषतः जोर देना होगा। यदि तुम विज्ञान की कोई पुस्तक पढ़ते हो तो उसमें बहुत श्रद्धा रखने की तुम्हें आवश्यकता नहीं होगी। किन्तु जब तुम शास्त्रों का अध्ययन करते हो, और खासकर जब तुम धर्म-साधना करते हो, तब पर्याप्त श्रद्धा आवश्यक है। वेदों में श्रद्धा की आवश्यकता के सम्बन्ध में एक सुन्दर दृष्टान्त है। शिष्य गुरु से ब्रह्म विषयक उपदेश देने का निवेदन करता है। गुरु शिष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं कि ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म है और सम्पूर्ण जगत् इसी से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म के एकात्मक स्वभाव की व्याख्या करते हुए गुरु एक दृष्टान्त देते हैं—'जैसे मधुमक्खियां जब मधु तैयार करती हैं, भिन्न-भिन्न फूलों से मकरन्द लेकर उन्हें अविच्छेद्य रूप से एक साथ मिला देती हैं, ठीक उसी प्रकार सभी जी[illegible] ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करते हैं।' इसे सुनने के उपरान्त शिष्य पुनः अपना प्रश्न दुहराता है, 'कृपाकर मुझे पुनः समझाइए।' इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु द्वारा दिये गये उपदेश ने शिष्य में अपेक्षित अनुभूति नहीं उत्पन्न की। तब गुरु दूसरा दृष्टान्त देते हैं। पुनः शिष्य वही प्रश्न दुहराता है। गुरु फिर एक अन्य उदाहरण देते हैं; किन्तु शिष्य गुरु से फिर से समझाने

को पुनः प्रार्थना करता है। अन्ततोगत्वा गुरु कहते हैं— 'हे सौम्य, श्रद्धा करो।'— श्रद्धत्स्व सौम्य। (छान्दोग्य उप० ६.१२.२) ब्रह्म ऐसी वस्तु नहीं है जिसे कोई दृष्टान्तों के द्वारा समझ सकता है। दृष्टान्त उन वस्तुओं पर आधारित होते हैं जिन्हें हम देख सकते हैं, जिनका हम अनुभव कर सकते हैं। किन्तु यहाँ हम किसी ऐसी वस्तु के समीप जा रहे हैं जो हमारी इन्द्रियों से परे है। अतः पर्याप्त श्रद्धा की आवश्यकता है जो हमें इस पथ पर धीरे-धीरे आगे बढ़ने के योग्य बना सके। बिना श्रद्धा के हम कभी भी प्रगति नहीं कर सकते हैं।

क्या इसका यह अर्थ है कि गुरु द्वारा कही गयी किसी भी बात को और हर बात को मान लेना चाहिए? नहीं। एक सच्चा गुरु आग्रह करेगा कि ऐसा नहीं करना चाहिए। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपने शिष्यों को गुरु की बात को आँख मूँद कर मानने के विरुद्ध प्रबल परामर्श दिया था। उन्होंने कहा 'जो कुछ मैं कहता हूँ उन्हें निश्चित नहीं मान लो। जहाँ तक सम्भव हो अपनी समझ के अनुसार तुम्हें स्वयं उनकी जाँच अवश्य कर लेनी चाहिए। केवल जब तुम्हें वे अकाट्य एवं युक्ति युक्त लगें तभी उनका अनुसरण करो। अन्यथा नहीं।' इसलिए इसका यह अर्थ नहीं है कि जब हम गुरु के उपदेशों का अनुसरण करें तब हमें अपनी सारी बुद्धिमत्ता का तिरस्कार कर देना होगा। लेकिन हमें उनका संदेह भरे मन से, ऐसे मन जो संदेह से दूषित हो गया हो—कभी भी पालन नहीं करना चाहिए। ऐसा मन गुरु के उपदेशों के महत्व को कभी नहीं समझ सकता। इसी से श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'अपने गुरु की जितनी परीक्षा कर सकते हो कर लो लेकिन, एक बार जब तुम्हें यह विश्वास हो गया कि वस्तुतः वे हमें परम लक्ष्य तक ले जायेंगे, तब बिना किसी प्रतिबन्ध या शर्त के उनकी अधीनता स्वीकार कर लो।' गुरु के पास इसी प्रकार की श्रद्धा के साथ जाना चाहिए। और ऐसे गुरु हमें परम लक्ष्य तक ले जा सकते हैं। यदि शिष्य ऐसे गुरु के पास जाता है जो पर्याप्त प्रबुद्ध नहीं हैं, तब क्या होगा? उपनिषदों में ऐसा कहा गया है कि वे अन्धे का अन्धे द्वारा पथ-प्रदर्शन करने के समान होंगे। अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः। (कठोपनिषद् १.२.५ मुण्डक उप० १२.८) निश्चय ही यह बड़ा ही हतोत्साह करने वाला कथन है।

एक प्रश्न पूछा जा सकता है, 'हमलोग अभी दूसरे को आँकने में सक्षम नहीं हैं। हमारा मन अभी स्पष्ट नहीं है। हमलोग संदेह और कठिनाइयों से मुक्त नहीं हैं। फिर हमलोग कैसे अपने गुरु को आँक सकते हैं जो हमसे काफी ऊँचे हैं?' उत्तर है कि जहाँ तक संभव हो गुरु के शुद्ध अभिप्राय का पता लगा लो। स्वयं देख लो कि क्या वे तुम्हारे आदर्श के रूप में आचरण कर सकते हैं; तभी उन्हें स्वीकारो। जब तुम उन्हें स्वीकार करते हो, पूरे मन से स्वीकारो, नहीं तो तुम्हारा संदेही मन सर्वदा कठिनाई उत्पन्न करेगा। मान लो कि हमारे गुरु परम लक्ष्य तक नहीं पहुँचे हैं। ऐसे दृष्टांत उपनिषदों में मिलते हैं जहाँ कुछ विषयों में गुरु अपनी अज्ञानता स्वीकार कर लेते हैं। तब गुरु और शिष्य दोनों किसी दूसरे व्यक्ति के समीप जाते हैं जिन्हें उक्त विषय का उच्चतर ज्ञान है। सच्चे गुरु का, जो मिथ्याभिमान से मुक्त और शिष्य की प्रगति तथा कल्याण के प्रति गंभीर हैं, यही वास्तविक मार्ग है। ऐसे मामले में अंधे द्वारा अंधे के पथप्रदर्शन की दारुण विपत्ति नहीं घटेगी। बल्कि यह एक विशेष गंतव्य तक पहुँचने के लिए उत्सुक दो सहयात्रियों के समान होगा। वे अन्य लोगों से दिशा के सम्बन्ध में पूछेंगे। कभी-कभी वे भूल कर सकते हैं, किन्तु वे निश्चय पूर्वक लक्ष्य तक पहुँचेंगे।

मैं एक गुरु प्राप्त करता हूँ जो मेरी राय से सर्वोच्च हैं। किन्तु क्या मुझे और अधिक योग्य गुरु की आवश्कता होनी चाहिए? ऐसे गुरु भी मेरे पास आयेंगे बशर्ते मैं उत्सुक होऊँ। मूलतः उत्कंठा की आवश्यकता है। हमें पूर्ण गंभीरता से ढूँढ़ना चाहिए और जैसा श्रीरामकृष्ण कहते हैं, यदि हम निष्ठावान हैं तो सहायता निश्चय ही मिलेगी। आध्यात्मिक जीवन के लिए यही नग्न सत्य है।'

क्योंकि गुरु ब्रह्मा के सिवा अन्य कोई नहीं हैं। यदि हम गलतियाँ करते हैं, तो ईश्वर जानते हैं कि हम गड़बड़ कर रहे हैं। वे जानते हैं कि कब और कैसे हम पर अपनी कृपा दृष्टि करें, कैसे हम तक प्रकाश विकीर्ण करें। यदि हम अपनी खोज में गंभीर हैं तो यदि हम भूल भी करें तो भी भय की बात बिल्कुल नहीं है। यही बात हमें स्मरण रखनी चाहिए। इस प्रकार की गंभीरता के बिना पारंगत ब्रह्मज्ञानी का पथ-प्रदर्शन भी हमारे लिए विशेष सहायक नहीं होगा। अत: गुरु को एक पथ-प्रदर्शक के रूप में समझना होगा जो हमें आध्यात्मिक पथ पर धीरे-धीरे बढ़ने में सहायता प्रदान करते हैं और किसी गड़बड़ी की स्थिति में हममें उच्चतर ज्ञान उद्भूत करेंगे। इसी भाव से शिष्य को अपने मार्ग में अग्रसर होना है।

एक बात का स्मरण रखना बहुत आवश्यक है कि अध्यात्म का मार्ग बहुत आसान नहीं है। उपनिषदों में कहा गया है, 'ज्ञानीजन कहते हैं कि छुरे की धार की भाँति यह मार्ग दुष्कर है'—क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत् कवयो वदन्ति। (कठ. उप. १.३. १४) हमारे पाँव विदीर्ण हो जायेंगे। यह एक कष्टकर प्रक्रिया है। तथापि, यदि हमारे पास शूरता से भरा हृदय है तो मार्ग को अवरुद्ध कर देनेवाली कठिनाइयों तथा हतोत्साह कर देने वाले प्रयत्नों के बावजूद हम जी चुराये बिना आगे बढ़ सकते हैं। ईश्वर की खोज करने वालों के लिए दृढ़ संकल्प और श्रद्धा का होना नितान्त आवश्यक है। आध्यात्मिक अन्वेषण भौतिक वस्तुओं के प्रति ज्ञान प्राप्त करने की भाँति नहीं है जिनका परीक्षण हमारी इन्द्रियों के द्वारा हो सकता है। अध्यात्म के क्षेत्र में, हमलोग किसी ऐसी वस्तु का अन्वेषण करते हैं जो इन्द्रियातीत है। हमें स्मरण रखना होगा कि यदि हम मार्ग में ही हकलाने लगें या आत्म संतुष्ट हो जायें तो हमारे द्वारा लक्ष्य तक पहुँचने की कोई आशा नहीं है। हमें ऐसा धीरज होना चाहिए जो कई जन्मों में भी समाप्त नहीं हो। निश्चय ही इस प्रकार की दृढ़ता एक या दो दिनों में, यहाँ तक कि कुछ वर्षों में भी नहीं प्राप्त की जा सकती। किन्तु, हमारी खोज का पात्र इतना मूल्यवान है कि इसके अन्वेषण में सैकड़ों जीवन भी अर्पण कर दिये जा सकते हैं। बिना यथेष्ट मूल्य चुकाये इसे भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। संभवत:, हमारे उच्चतम संघर्ष के बावजूद मंजिल इतनी दूर रह सकती है कि वहाँ तक पहुँच पाने में हम हतोत्साह हो जायें। या संभवत: वहाँ तक की पहुँच काफी निकट हो! कौन जानता है कि वह शुभ मुहूर्त कब आ जायगा!

तुम लोगों में से कई लोग बाइबिल में उल्लिखित दस कन्याओं की कथा जानते हो। दस कन्याएँ रात्रिवेला में अपने दुलहे से मिलने गयीं; जो किसी भी तरह समय पर उपस्थित नहीं हो सके। वे प्रतीक्षा करती रहीं, प्रतीक्षा करती रहीं और उनमें से एक कन्या ने कहा कि उसके दीये का तेल समाप्त हो गया है। उसने अन्य कन्याओं से अपना तेल देने को कहा। उन सबने अस्वीकार कर दिया। अत: वह दीये के लिए तेल तलाशने निकली। इसी समय दुलहा आ गया। जिनके पास काफी तेल था और जिनके दीपक जल रहे वे दुलहे को साथ लेकर वधू-गृह में चली गयीं। किन्तु जिस बेचारी लड़की का तेल समाप्त हो चुका था, उसे उस परमानन्द से वंचित रह जाना पड़ा। (बाइबिल में संकलित मैथ्यु के वचन २५ : १-१२ में किंचित् भिन्न कथा पायी जाती है।) अत:, ईश्वर का ऐसे संधान करने वाले की भी यही स्थिति होगी जो अपने दीये में धीरज का यथेष्ट तेल लेकर आगे नहीं बढ़ता। हमारे अन्वेषण का विषय इतना मूल्यवान है कि इसके लिए कितना अधिक मूल्य हम चुकाते हैं यह विचारणीय नहीं है। इसका क्रय करने के लिए हमारे पास कभी काफी अर्थ-राशि नहीं होगी। यह एक अमूल्य वस्तु है।

इस सम्बन्ध में वेदों में एक कथा है। कोई व्यक्ति सोमलता नामक पवित्र पौधा, जिसका रस सोम यज्ञ के अनुष्ठान में आवश्यक होता है, बेचने आया। एक व्यक्ति ने जो सोम यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा था, उस पौधे को खरीदना चाहा। अत: उसने सोमलता के लिए मोल-

तोल किया। वह बीस कौड़ियों से बढ़कर डाक बोलने लगा किन्तु हर बार यह कहकर उसकी डाक को अस्वीकृत कर दिया जाता कि 'राजा सोम उससे अधिक मूल्यवान है,—राजा सोमो ततो भूयात्। यज्ञानुष्ठानकर्ता ने सोम खरीदने के लिए अपनी सारी सम्पत्ति दाँव पर लगा दी, किन्तु उसने यही रूखा उत्तर पाया—राजा सोमो ततो भूयात्—'राजा सोम उससे अधिक मूल्यवान है।' अनातोगत्वा जब उसने देखा कि इसकी कीमत चुकाने में वह समर्थ नहीं होगा तब उसने सारी की सारी सोमलता लूट ली।

यही भाव भागवतम् में सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। माता यशोदा कृष्ण से नाराज थीं, क्योंकि अपनी शरारतों से कृष्ण ने अपने पड़ोसियों को परेशान कर दिया था। माता यशोदा ने कृष्ण को बड़ा नटखट बालक जानकर उन्हें कहीं बाँध रखने का निर्णय लिया। चूँकि यह ग्वाले का घर था इसलिए रस्सियों की कमी नहीं थी। वे रस्सी का एक टुकड़ा ले आयीं और उससे कृष्ण को बाँध दिया। किन्तु रस्सी दो अँगुली छोटी पड़ गयी। तब कुछ और रस्सी जोड़ी गयी। तब भी रस्सी दो अँगुली छोटी पड़ गयी। तब घर में जितनी भी रस्सियाँ उपलब्ध थीं वे कृष्ण को बाँधने के लिए लायी गयीं। तब भी कमी पूरी नहीं हुई। यशोदा थक गयीं। वे पसीने-पसीने हो गयीं। अंततोगत्वा जब वे थक गयीं और निराश हो गयीं, तब श्रीकृष्ण ने बंधना स्वीकारकर लिया। इस कहानी का अभिप्राय यह है कि हम ईश्वर को किसी भी साधना के द्वारा बाँध नहीं सकते। वे केवल हमें स्वीकार करते हैं इसे स्मरण रखना चाहिए। अंततोगत्वा हमें ईश्वर की कृपा पर निर्भर रहना है। हमारी समस्त साधनाओं की पूर्णता ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण करने तथा उनकी कृपा पर निर्भर रहने में है।

*

रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन

—स्वामी बुधानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी बुधानन्दजी रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली के प्रमुख थे। बेलुड़ मठ में २३ से २६ दिसम्बर १९८० तक रामकृष्ण संघ का जो द्वितीय महासम्मेलन हुआ था, उसके दूसरे सत्र में उन्होंने यह प्रमुख भाषण दिया था, जिसे 'रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन कन्वेन्शन १९८०—रिपोर्ट' से साभार ग्रहण किया गया है। अनुवादक हैं स्वामी विदेहात्मानन्द, जो रामकृष्ण मठ, नागपुर में कार्यरत हैं। —सं)

क्या ही देवदुर्लभ दृश्य है यह! वस्तुतः इस सम्मेलन को सम्भव करने के लिए भगवान को स्वयं अवतार लेकर लीला करनी पड़ी। आप तनिक रामकृष्ण मठ तथा मिशन के सम्पूर्ण इतिहास का अनुध्यान तो करें कि कैसे यह सब हुआ और कैसे आप सब आज यहाँ उपस्थित हैं! यह ईश्वर का कार्य है और इसके द्वारा शास्त्रों की परिपूर्णता सिद्ध हो रही है। स्मरण कीजिए उस दिन का जब स्वामीजी (विवेकानन्द) ने समाधि का आनन्द पाने के लिए श्रीरामकृष्ण से हठ किया था और श्रीरामकृष्ण की उस परिवर्तनकारी फटकार का भी स्मरण कीजिए, जब उन्होंने कहा था, "इतनी तुच्छ वस्तु की याचना! कहाँ मैंने सोचा था कि तू एक महान् वट-वृक्ष के समान होगा, जिसकी छाया में हजारों-लाखों जीव विश्राम पायेंगे! इतने छोटे दिल का न हो।

समाधि से भी ऊँची एक अवस्था है।" समाधि की इच्छा करना तुच्छ बात है—यह सुनकर स्वामीजी के विस्मय की सीमा न रही थी। परन्तु उस वृक्ष की विशाल शाखाएँ आज हम सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई देख रहे हैं और उसी के तले आज हम एकत्र हुए हैं। क्या इसमें शास्त्रवाणी की पूर्णता नहीं है? और फिर उस दिन का स्मरण कीजिए, जब श्रीरामकृष्ण के लिए भोजन ले जाने पर माताजी (सारदादेवी) ने उन्हें आँख मूँदकर लेटे हुए पाया था। श्री माँ के द्वारा भोजन के लिए कहे जाने पर मानो वे गहरी नींद से उठे और कहा, "जानती हो! मैं काफी दूर के देश में पहुँच गया था। वहाँ के लोग गोरी चमरी के थे। अहा! उनकी कैसी भक्ति है!" परवर्ती काल में माताजी ने इस घटना की याद करते हुए कहा था, "उस समय मैं कहाँ जानती थी कि गोरी चमड़ी के लोग कैसे होंगे।" आज वे लोग यहाँ उपस्थित हैं। क्या यह शास्त्रवाणी की परिपूर्ति नहीं है?

फिर बेलुड़ मठ की स्थापना करने के पश्चात् स्वामीजी ने अपने शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती से कहा था, "यहाँ से जिस शक्ति का उदय होगा, वह सम्पूर्ण जगत् को आप्लावित कर देगी...।" यह भविष्यवाणी पूरी होने की राह पर है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यहाँ पर आपको शास्त्रवाणी की परिपूर्णता मिलती है।

मुझे आपके समक्ष रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन पर कुछ कहने का आदेश मिला है। प्रारम्भ में आँसू की मात्र कुछ बूँदें थीं। ये अश्रुविन्दु निःसृत हुए थे इस धराधाम पर अवतीर्ण श्री भगवान् के नेत्रों से। कालान्तर में इन आँसुओं ने एक सरिता का रूप धारण कर लिया जो चल पड़ी सागर की ओर—मानवों की आत्म परिपूर्णता के सागर की ओर। जो कोई भी प्रेम एवं भक्ति के साथ आया, तीव्र गति से सागर की ओर वहा ले जाया गया। और वे लोग भी जो आसानी से वह जाने वाले न थे, क्रमशः परिवर्तित हुए। सागरवाहिनी सरिता सदा प्रवाहित हो रही है। यह हुई रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन की कहानी।

इस रहस्य का भेद रामकृष्ण मिशन की विवरणी में है। इसमें १८९७ ई० में श्री बलराम के भवन में आयोजित हुई सभाओं की रिपोर्ट अंकित। उल्लेख्य घटना मिशन की १८ वीं बैठक में ८ १८९७ ई० को हुई थी। उस दिन गिरीशचन्द्र श्रीरामकृष्ण के संस्मरण सुनाते हुए कहा था,—"एक जब मैं परमहंसदेव के दर्शन करने गया तो देखा खूब आँसू वहाते हुए कह रहे हैं, 'अहा, मेरा नि पैदल ही घर घर जाकर लोगों में भगवत्-प्रेम का वि रण किया करता था, पर खेद! मैं तो गाड़ी के बि नहीं जा पाता।" एक दूसरे अवसर पर गिरीशचन्द्र ठाकुर की एक अन्य उक्ति का उल्लेख किया था—"य मुझे सिर्फ साबूदाने के पानी पर भी जीवन धा करना पड़ा तो भी मैं लोगों की भलाई करता रहूँगा हजारों जन्म लेकर भी यदि मैं एक व्यक्ति की मुक्ति भी सहायक हो सका तो मैं अपने को धन्य समझूँगा श्रीरामकृष्ण के जीवन की ऐसी घटनाओं पर मनन क ही हम उनकी दिव्य पीड़ा की मार्मिकता को समझ सक हैं। १८५५ ई० में उनकी जो साधना प्रारम्भ हुई थ उसकी परिसमाप्ति हुई ५ जून १८७२ ई० को षोडशी पूजा के अनुष्ठान के साथ। उनकी साधना की अद्भु गाथा आप सबको विदित है ही और यह भी कि ईश्व के विविध रूपों के साथ निरन्तर साक्षात्कार के फलस्वरू उन्हें कितने प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हुई थीं इसके वाद उन्हें यह उपलब्धि हुई थी कि ईश्वर सर्व हैं, सभी वस्तुओं में हैं और नित्य हैं। अब वे क्या करते! अब उन्हें अपने लिए क्या करना शेष रह गया था! माँ भवतारिणी ने कहा, "मेरे बच्चे, अब तू भावमुख में रह।" भावमुख ब्रह्म और जगत् की सीमा-रेखा पर अवस्थान करने की अवस्था है। इस अवस्था में श्रीरामकृष्ण को जो कुछ अनुभव हुए थे, उनमें कुछ तो धर्म-विषयक सामान्य वातें थीं तथा कुछ अपने वारे में थीं कि वे एक साधारण मर्त्य जीव नहीं हैं और उनकी साधनाएँ अपने लिए नहीं वरन् दूसरों के लिए हैं एवं उन्हें यह भी मालूम हुआ था कि उनका जीवन-धारण

अधिक काल के लिए नहीं है। अब श्रीरामकृष्ण को यह बोध हुआ कि वे ईश्वरावतार हैं तथा उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ उनके पास न्यास के रूप में रखी गयी हैं। उन्हें व्यथा इस बात की थी कि ये अनुभूतियाँ जिनके लिए हैं, उन्हें वे कैसे सौंपी जायँ। तीव्र आध्यात्मिक साधना के फलस्वरूप उनका शरीर इतना नाजुक हो गया था कि वे कहीं आना-जाना न कर सकते थे। अपनी आध्यात्मिक सम्पदा के उत्तराधिकारियों के पास वे आसानी से आवागमन न कर सकते थे। अपने शिष्यों के आगमन की आकुल प्रतीक्षा की उनकी व्यथा को समझ पाना हमारी क्षमता से परे है। वे मथुरबाबू की कोठी की छत पर चले जाते और मन-प्राण से पुकारते हुए कहते, "अरे, कहाँ हो तुमलोग ? तुम लोगों के बिना अब और नहीं रहा जाता।" उनकी पुकार की ध्वनि ज्यों-ज्यों जगत् में प्रतिध्वनित होने लगी, वे लोग एक-एक दो-दो करके आने लगे। साधकों का आगमन प्रारम्भ हुआ। इनमें अधिकांश गृही थे, फिर भी उन्हें थोड़ी दिलासा मिली। समय बीतने पर उन्हें पता चला कि यद्यपि वे इन लोगों को अपना सब कुछ देना चाहते हैं, परन्तु ये लोग केवल उतना ही लेते हैं जितना उनकी गृहस्थी के साथ निभ जाता है। अत: अब वे स्कूल और कॉलेज के ऐसे नवयुवकों की राह देखने लगे, जिन्हें वे 'बिना चोंच लगे फल' कहा करते थे और जो बिना किसी दुविधा के देवार्पित किये जा सकते थे। और अब उन लोगों का भी आगमन शुरू हुआ। परन्तु वे अब भी एक ऐसे युवक की प्रतीक्षा में थे, जिसे उन्होंने अपनी एक अलौकिक अनुभूति में ध्यानलीन महान् ऋषि के रूप में, ध्यानसिद्ध महापुरुष के रूप में देखा था। अचानक ही एक दिन वह चिर-प्रतीक्षित मिलन हो गया। उस लड़के का नाम था नरेन्द्र—वही नरेन्द्र, जो बाद में विवेकानन्द हुए। श्रीरामकृष्ण के साथ उनके मिलन की वह अद्भुत कथा आप सबको विदित है ही। प्रथम दिन ही ठाकुर ने घोषित किया—"तुम मानवता का कष्ट दूर करने आये हो।" एक दूसरे अवसर पर उन्होंने लिखा था—"नरेन्द्र शिक्षा देगा।" नरेन्द्र जब यह जानकर पूरी तरह सन्तुष्ट हो गये कि श्रीरामकृष्ण ईश्वरद्रष्टा व्यक्ति हैं तो अन्ततोगत्वा वे उनके शिष्य हो गये। जीवन के अन्तिम पर्व में श्रीरामकृष्ण ने अपने युवा-भक्तों का भार नरेन्द्र के हाथों में सौंपते हुए कहा था, "इन लड़कों का ख्याल रखना और देखना कि वे घर न लौटें और एक साथ रहकर साधन-भजन करें।" फिर नरेन्द्र के भीतर अपनी आध्यात्मिक शक्ति संचारित करके बोले थे, "इस शक्ति के द्वारा तू जगत् में महान् कर्म करेगा और तत्पश्चात् जहाँ से आया है वहीं लौट जाएगा।" इसके कुछ काल बाद ही अगस्त १८८६ ई० में श्रीरामकृष्ण ने महासमाधि ले ली और नरेन्द्र एकाएक युगावतार की महान् आध्यात्मिक शक्ति के उत्तराधिकारी हो गये। नरेन्द्र ने किस प्रकार इस शक्ति का उपयोग किया और अपना उत्तरदायित्व एवं लक्ष्य पूरा किया, इसकी चर्चा से पूर्व हमें यहाँ पर एक केन्द्रीय तथ्य का उल्लेख करना होगा, जो रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन की मूलभूत शक्ति है। वह केन्द्रीय तत्त्व एवं शक्ति हैं—श्रीमाँ सारदादेवी। वे श्रीरामकृष्ण की प्रथम शिष्या थीं। यही नहीं, वे जगदम्बा के रूप में श्रीरामकृष्ण द्वारा की गयी अन्तिम पूजा की भी ग्रहीता थीं। वे विद्यारूपिणी और ज्ञानदायिनी थीं। श्रीरामकृष्ण ने उनके चरणों में अपनी सारी साधनाओं का फल, स्वयं को तथा अपनी जपमाला भी समर्पित कर दी थी। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपनी शक्ति कहकर घोषणा की थी, फलस्वरूप वे उनसे अभिन्न थीं।

श्रीसारदा देवी की भूमिका

माँ सारदा न केवल श्रीरामकृष्ण की अपितु, उनके शिष्यों की भी पालन करनेवाली माता सिद्ध हुईं। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के शोक से उबरने के पश्चात् वे इस भाव-आन्दोलन के विकास में धीरे-धीरे एक अनुपम पद पर प्रतिष्ठित हुईं। उन्हीं का सार्थक आशीर्वाद साथ लेकर स्वामीजी अमेरिका गये थे, जिसकी उत्तरकथा आप सबको ज्ञात है। यह उनकी अतीव दूर-दर्शिता तथा अदृश्य व्यवस्था-शक्ति ही थी, जो संन्यास की सीमा से परे रहकर भी इस भाव-आन्दोलन को विकसित तथा उसकी दिव्य धुरी पर परिचाकलित करती

रहती थी। उन्होंने अपनी आकुल प्रार्थना के द्वारा संघ का भविष्य सुनिश्चित किया। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें संघ के आकार-प्रकार के रूप में उनकी उँगलियों की छाप दीख पड़ेगी। स्वामीजी को असंख्य अवसरों पर क्षुधा से पीड़ित होना पड़ा था, परन्तु माताजी ने अपने व्यक्तिगत हस्तक्षेप से श्रीरामकृष्ण की कृपा को इस प्रकार नियोजित किया कि संघ के संन्यासी अब कहीं भी क्षुधापीड़ित नहीं होते। यही नहीं, श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करके उन्होंने इस संघ को एक नवीन दिशा भी दी। उन्होंने कहा था, "ठाकुर मैं प्रार्थना करती हूँ कि जो कोई भी तुम्हारे लिए संसारत्याग करे, उसे भोजन-वस्त्र का अभाव न सहना पड़े। मेरी यह भी प्रार्थना है कि मेरे बच्चे तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों को लेकर एक साथ मिलकर जीवनयापन करें और संसार के दुःख-ताप से दग्ध लोग उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर मन की शान्ति पाएँ। इसी के लिए तो तुमने नररूप में अवतार लिया था। अपने बच्चों को इधर-उधर भटकते देखकर मेरा मन आकुल हो उठता है।" इस प्रकार उन्होंने प्राचीन संन्यास-आश्रम को लोकसंग्रह के सन्दर्भ में एक नयी दिशा प्रदान की, जिससे गृही भक्तों को भी जीवन में प्रेरणा एवं शान्ति मिले। वे सांसारिक परिवेश में रहकर भी सांसारिक न थीं। फिर इस विकासमान संघ पर अनजाने में ही उनका ऐसा नियन्त्रण था कि स्वामीजी तथा उनके महान् गुरुभाइयों के लिए उनके शब्द वेदवाक्य के समान थे। आदर्श अथवा अन्य किसी भी विषय से सम्बन्धित जो भी समस्याएँ उनके सम्मुख प्रस्तुत की जाती उन सबका उनसे युक्तियुक्त समाधान मिल जाता। उनके वे उत्तर आज संघ के लिए पथप्रदर्शक हो गये हैं। एक साधारण सी महिला अवतार के अपूर्ण कार्य को इतनी सहजतापूर्वक करते हुए इतने महान् उत्तरदायित्व का निर्वाह करे—ऐसा उदाहरण जगत् के धर्मेतिहास में दूसरा नहीं मिलता। यह हुई रामकृष्ण संघ के इतिहास में श्री सारदादेवी की भूमिका। माताजी ने श्रीरामकृष्ण द्वारा इस जगत् में छोड़ी गयी सारी आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्र किया तथा उसके द्वारा उन्होंने पूरे संघ को अपनी छाती से चिपकाकर उसका पोषण, रक्षण एवं मार्गनिर्देशन किया। उनकी देखरेख में संघ निरन्तर विकसित हो रहा है और होता रहेगा। अतः हम इस सारे ब्रह्माण्ड में किसी से डरते नहीं, क्योंकि माताजी ने हमें अपनी सुरक्षित बाँहों में ले रखा है।

सार्वभौमिक पक्ष

श्रीरामकृष्ण से शक्ति, दिशा और आदेश पाकर नरेन ने क्या किया? वे विवेकानन्द बन गए, मसीहा बन गये। उन्होंने सर्वदा एक मसीहा के समान चिन्तन और कार्य किया। सार्वभौमिक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्होंने इस प्रकार अपना सन्देश दिया, जो प्रत्येक मानव का दैहिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी स्तरों पर कल्याण साधन करे। उस युवा आचार्य विवेकानन्द के रूप में परिणत नरेन ने ही विश्व को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के रूप में एक अनुपम संगठन प्रदान किया तथा इस संघ को विश्वव्यापी उत्तरदायित्व सौंपे। मैं यहाँ पर मठ एवं मिशन के कार्यों की विस्तृत चर्चा में नहीं जाना चाहता, मैं तो अभी यही बताना चाहता हूँ कि इस भाव-आंदोलन का उद्देश्य क्या है। इस भावधारा में जगत् की कुछ ऐसी समस्याओं के वैचारिक समाधान मिलते हैं, जिन्होंने विश्व के चिन्तकों एवं क्रान्तिकारियों को किंकर्तव्यविमूढ़ कर रखा है। हमने एक-एक कर जगत् की सारी विचारधाराओं को निरखा-परखा है, परन्तु उन सबमें कुछ-न-कुछ कमियाँ दीख पड़ीं; क्योंकि किसी ने भी मानव को उसकी समग्रता में—उसके सभी पहलुओं के साथ लेने की परवाह नहीं की। मानव के आधे व्यक्तित्व के लिए—उसके पेट और अन्य बातों के लिए—अद्भुत् दर्शन रचे गये हैं, परन्तु उससे ऊपर के स्तर पर कोई नहीं गया है। दूसरी ओर विवेकानन्द का दर्शन है जो सहज, स्पष्ट और निर्भीक है। चूँकि पूर्ण अस्तित्व ईश्वर का स्वभाव है और अस्तित्व एक ही है, अतः मूल रूप से जीव और परमात्मा अभिन्न हैं। जब यह पूर्ण अभिन्नता भुला दी अथवा नजर-अन्दाज कर दी जाती है, तभी अस्तित्व की

समस्याओं का उद्भव और उपचय होता है। जीवात्मा और परमात्मा की इस पूर्ण अभिन्नता की जीवन के हर सन्दर्भ में उपयोगिता का पता लगाकर संसार की सारी समस्याएँ हल की जा सकती हैं। हम चाहे जहाँ से प्रारम्भ कर सकते हैं और चाहे जहाँ तक जा सकते हैं; पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ईश्वर ही हमारे लक्ष्य हैं। हमें आत्मा की ओर, परमात्मा की ओर सदा आगे ही आगे बढ़ते रहना चाहिए, अन्यथा हम लक्ष्य तक पहुँच ही नहीं सकेंगे। ईश्वर कहीं दूर नहीं हैं, क्योंकि ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहाँ वे पहले से ही विद्यमान न हों। अत: यह भाव-आन्दोलन वर्तमान काल की सभी समस्याओं तथा चुनौती भरे प्रश्नों का अत्यन्त साहसपूर्ण समाधान देता है। यदि मिट्टी की मूर्ति में ईश्वर की पूजा हो सकती है तो फिर मानव के भीतर क्यों नहीं हो सकती? यह भावधारा उत्कृष्ट वेदान्त-दर्शन के स्फूर्तिदायी संदेश को इस ढंग से प्रस्तुत करती है कि आधुनिक मानव को वह सहज ही बोधगम्य हो जाता है। श्रीमाँ ने कहा—"सारी दुनिया को अपना बना लेना सीखो, बेटे! यहाँ कोई भी पराया नहीं है, सारा संसार ही तुम्हारा अपना है।" यह सन्देश किसने दिया है? माँ के हृदय के सिवा—जो कि जगदम्बा का ही हृदय है—भला कौन ऐसा संदेश दे सकता है? तभी तो उन्होंने कहा—"सभी तुम्हारे अपने हैं।" सबके अन्दर विद्यमान उस एक आत्मा को देखते हुए ही सबको अपना बनाया जा सकता है। सब तरह के आपसी व्यवहार में उस आध्यात्मिक विधि का पालन करना होगा, जिसकी घोषणा स्वामीजी ने शिकागो धर्ममहासभा के अपने अन्तिम व्याख्यान में की थी—"सहायता, न कि युद्ध; परभावग्रहण, न कि परभावविनाश; साम्य और शान्ति, न कि मतभेद और कलह!" जीवन में सर्वोच्च सत्यों का बीज बोकर ही हम वह सुनहरी फसल काट सकेंगे, जो जगत् में सबकी क्षुधा शान्त करेगी तथा जीवन की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति भी। इस जगत् में कोई भी भूखा न रहे। हम सब के आँसू पोंछ सकते हैं, समस्त भय का मोचन कर सकते हैं; परन्तु जिस वस्तु की सर्वाधिक आवश्यकता है, वह है प्रेम। इस प्रेम के अभाव में समृद्धि से भरपूर संसार भी सबको यथेष्ट आहार न दे सकेगा। कोई भी राजनीति मानव-हृदय में प्रेम का संचार करने में समर्थ नहीं है। आचरण में लाया हुआ धर्म ही इसे सुसम्पन्न कर सकता है, और यही इस भावधारा का उद्देश्य है। वर्तमान की धारा की अपेक्षा, भूतकाल की धारा की अपेक्षा यह भाव-आन्दोलन भविष्य की भावधारा है। आत्मा की परम मुक्ति और जगत् का हित साधित करने के निमित्त यह रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन वेदान्तिक आदर्शों को दैनन्दिन जीवन में कार्यशील बनाने हेतु कार्यरत है। यह एक वर्धमान भाव-आन्दोलन है, जिसकी गति समस्त संसार में व्याप रही है। इस संक्षिप्त व्याख्यान में हम केवल एक वातायन ही प्रस्तुत कर सकते हैं, जिससे आसपास की जुती हुई भूमि तथा दूर नीला क्षितिज दीख पड़ता है। मित्रो! आनन्द मनाइये, प्रभु के भक्तो! आनन्द मनाइए कि प्रभु की कृपा से रामकृष्ण-भाव-आन्दोलन प्रवहमान है।

●

जिस शक्ति के उन्मेषमात्र से दिग्-दिगन्त में उसकी प्रतिध्वनि जागरित हुई है, कल्पना की सहायता से उसकी पूर्णावस्था का अनुभव करो एवं वृथा सन्देह, दुर्बलता तथा दास जाति-जन्य ईर्ष्या द्वेष का परित्याग कर इस महान् युगचक्र-परिवर्तन में सहायक बनो। हम प्रभु के दास हैं, प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु की लीला के सहायक हैं—इस विश्वास को अपने हृदय में दृढ़तापूर्वक धारण कर कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हो जाओ!

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण परमहंस

—डा० मिथिलेश कुमारी मिश्र
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

कौन रिझाता रहा, रीझती रही प्रकृति
किसके अन्तर की वाणी सुनकर, थका पन्थ।
जिसने जग-जन को दे दी नूतन दिशा सहज
सच्चिदानन्दमय दिव्य रूप वह कौन सन्त ?

किसका अद्भुत-अनुराग समर्पण देख-देख
वह महाशक्ति भी 'माँ' बनकर करती दुलार।
कर रही नियंत्रण महाकाल पर काली वह
आती समक्ष सुन-सुन करके किसकी पुकार ?

लोरी गा-गाकर किसे सुलाती आदिशक्ति
वह कौन कि जिस पर टिक सकता, उसका ममत्व।
छू सकी न भौतिकता वह भी बन गयी मूक
अध्यात्म लोक में रहा बिखरता कौन तत्व ?

होगा निश्चय ही 'राम' अन्यथा वही 'कृष्ण'
सोऽहं का अनुभव हुआ बन गया परमहंस
मानस में माँ की वत्सलता का भरा भाव
इसलिए हृदय के आँगन में उतरा चिदंश ॥

अम्बर की काया सम्भ्रम से हो उठी मलिन
धरती पर छाया लोभ-मोह का अन्धकार।
अज्ञान-प्रभञ्जन के आगे झुकता विवेक
व्यापता गया घट-घट में आतप दुर्निवार ॥

बढ़ रहा अतीन्द्रिय भोग, न दिखता कहीं योग
बर्बरता के सम्मुख दिखता न कहीं मानव।
विस्तृत होता ही गया चतुर्दिक स्वार्थ पाश
हो उठे प्रबल महिषासुर जैसे ही दानव ॥

लेकर अद्भुत सन्देश महाकाली का तुम
आ गये अचानक रक्षक बन भारत-भू पर।
परमार्थ-भाव में किया समर्पित जीवन धन
बंध गयी आस जब एक तुम्हारे ही ऊपर ॥

वह दक्षिणेश्वर साक्ष्यरूप है आज स्वयं
कालीपूजा का रासमती ने दिया भार।
माँ की प्रतिमा में तुमने माँ को लिया देख
इसलिए निरन्तर की बस उनकी ही गुहार ॥

काली की प्रस्तर मूर्ति बन गयी रामकृष्ण
रानी ने देखा वहीं तुम्हारा दिव्य रूप।
माँ के पीछे तुम छिपे न छिप पाये परन्तु
उसमें भी दिखता रहा तुम्हारा ही स्वरूप ॥

सहचरी शारदा माँ बनकर आयीं समीप
पति-पत्नी बनकर रहे, वासना रही मूक
अणु-अणु में माँ के श्री चरणों का था प्रभाव
इसलिए भावना में आ पायी नहीं चूक।

साधना फलवती बनी, प्रबल सा ध्यान योग
अन्तर में उतरे महाज्ञान के दिव्य तत्त्व।
दिख गया उन्हें संसृति में जीवन का यथार्थ
प्रत्यक्ष हो गया अनायास वह चरम सत्य ॥

उठ रहीं तरंगें भक्तिभाव में हुए मगन
आलोक लोक में रहा फैलता बार-बार।
व्यक्तित्व उभरता गया, खिंचे मानव के मन
कानों में पड़ते गये तुम्हारे सद्विचार ॥

हो गयी धन्य मानवता उसको मिला त्राण
जागृति के बजते शंख, साथ दे रही नियति।
हो रहे अहं के दास, लालसा के सेवक
उन बुद्धिजीवियों की परिवर्तित दिखती मति ॥

वचनामृत से अभिषिक्त हुआ जनगण का मन
अति सरल सुलभ हो चले वेद-वेदान्त भाव।
चिर अनासक्ति से हुई व्यक्त वह महाशक्ति
दिखता था जिसमें लौकिकता का तिरोभाव ॥

तुम चले, तुम्हारे साथ चल पड़ा लोक-वृन्द
चल पड़ा तुम्हारे साथ सहज तत्वावबोध।
मिट गया द्वैत का भेद, सुदृढ़ अद्वैत भाव
बह चली भक्ति रसधार, मिला आनन्दस्रोत ॥

स्वामी रंगनाथानन्द से एक साक्षात्कार

[थियोसॉफिकल सोसाइटी के इन्टरनेशनल सेन्टर ऑफ स्टडीज एण्ड रिसर्च (अध्ययन एवं अनुसंधान का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र) के मुख्यालय अड्यार, मद्रास में रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज द्वारा संचालित द्वि-दिवसीय आध्यात्मिक शिविर के अवसर पर थियोसॉफिकल सोसाइटी, अड्यार के युवा-प्रभाग की पत्रिका 'फीनिक्स राईजिंग' की ओर से उसके सम्पादक ने एक इन्टरव्यू लिया था जो उस पत्रिका के १९७९ के अंक ३-४ में प्रकाशित तथा स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के 'इटरनल वैल्यूज फॉर ए चेंजिंग सोसाइटी, नामक ग्रन्थ के तृतीय खंड में संकलित है। इस इन्टरव्यू का हिन्दी रूपान्तर यहाँ स्वामी रंगानाथानन्द जी महाराज की लिखित अनुमति से प्रकाशित किया जा रहा है। रूपान्तरकार हैं,—डॉ० केदारनाथ लाभ।]

परिचय

स्वामी रंगनाथानन्द रामकृष्ण संघ के दीक्षित तथा उस संघ के मध्य भारत में स्थित हैदराबाद केन्द्र के अध्यक्ष हैं। इस वर्ष की जनवरी में अड्यार-मद्रास में इन्टरनेशनल सेन्टर ऑफ स्टडीज एण्ड रिसर्च द्वारा आयोजित द्वि-दिवसीय शिविर का स्वामीजी ने संचालन किया। हिन्दुओं के आध्यात्मिक दर्शन विषयक एक प्राचीन एवं काव्यात्मक ग्रन्थ कठोपनिषद् की मोहक छानबीन करना इस शिविर का केन्द्र बिन्दु था। तत्पश्चात्, फीनिक्स के सम्पादक एमिलियो ने स्वामीजी के साथ आध्यात्मिक उपदेशों के कुछ पहलुओं पर बातचीत की।

फीनिक्स : क्या आप हमलोगों को रामकृष्ण संघ के बारे में कुछ बता सकते हैं ? संघ का सदस्य होने का क्या अर्थ होता है ?

स्वामीजी : इसका अर्थ है इस संघ में रहने तथा इसकी सेवा करने के लिए जीवन अर्पण ! किन्तु इसका अर्थ किसी मतवाद या सम्प्रदायवाद को स्वीकार करना नहीं है। हमलोग श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का, जो हिन्दू परम्परा के अंश हैं, अनुसरण करते हैं तथा हमलोग अन्य धर्मों को भी स्वीकार करते हैं। किन्तु हमलोग सम्प्रदाय नहीं हैं। प्रत्येक अन्य संन्यासी संघ की तरह ही, संन्यासी के रूप में, हमलोगों के अपने गुरु हैं। कोई भी व्यक्ति इसे ग्रहण कर सकता है; कोई भी व्यक्ति कह सकता है : 'मैं श्रीरामकृष्ण का भक्त हूँ।'

फीनिक्स : स्वामी होने का तथ्यतः क्या अर्थ है ? कोई व्यक्ति किस प्रकार स्वामी बनता है ?

स्वामीजी : 'स्वामीजी' शब्द का वास्तविक अर्थ है मालिक, अधिपति—स्वयं अपना अधिपति। भारत में सामान्यतः इसका प्रयोग संन्यासियों के लिए होता है, क्योंकि वे स्वयं अपने अधिपति होते हैं।

रामकृष्ण संघ में संन्यासी होने के लिए युवाकाल में ही प्रस्थान कर देना पड़ता है। सामान्यतः हमलोग तीस वर्ष से कम वयस के लोगों को ही लेते हैं। उसे कम से कम मैट्रिक की न्यूनतम योग्यत होनी चाहिए और उसे न कोई गंभीर शारीरिक रोग न हो, और न घर पर उसका कोई आश्रित हो, न उसका घर से कोई सम्बन्ध हो। इन सब के बाद, यदि प्रत्याशी को वस्तुतः ईश्वर के प्रति अनुराग तथा वैराग्य का भाव हो, तब हमलोग उसे अंगीकार करते हैं।

तब नौ वर्ष की अवधि तक उसे संघ में प्रशिक्षण लेना पड़ता है। पहले पांच वर्षों के बाद उसे ब्रह्मचर्य की प्रथम दीक्षा दी जाती है। उसका नाम भी बदला जाता है। दूसरे चार वर्षों के बाद वह संन्यासी संघ में अंतिम दीक्षा ग्रहण करता है। तब उसका नाम अंतिम बार इस रूप में बदल दिया जाता है जिसका अन्त 'आनन्द' शब्द के साथ होता है, जैसे विवेकानन्द (सम्यक् विवेक करने का आनन्द)।

इस प्रकार, सम्प्रति हमलोगों के यहां सभी समुदायों, वर्गों, जातियों और यहां तक कि अमेरिका, इंगलैंड जैसे विभिन्न देशों से आये हुए प्रायः एक हजार लोग हैं। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ है।

फीनिक्स : इस प्रशिक्षण में किस समय कोई वस्तुतः स्वामी होता है?

स्वामीजी : यदि वह उपयुक्त पाया गया तो नौ वर्षों के बाद। पहले उसकी डाक्टरी एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से परीक्षा ली जाती है। यदि उसके आध्यात्मिक गुण असली हैं तब उसे इस वेश में प्रतिष्ठित किया जाता है और वह अपना नया नाम ग्रहण करता है। संन्यास-दीक्षा के ये सब अंग हैं। इस प्रकार की दीक्षा हजारों वर्ष पूर्व, वैदिक काल से ही चली आ रही है। हमलोग इसे वैदिक संन्यास कहते हैं।

फीनिक्स : एक स्वामी और साधु में क्या अन्तर है?

स्वामीजी : एक साधु मात्र एक अच्छा व्यक्ति है। किसी संघ का सदस्य होना उसके लिए आवश्यक नहीं है। 'साधु' शब्द का वास्तविक अर्थ है भला। 'स्वामी' संन्यासियों के लिए प्रयुक्त होने वाली एक उपाधि है। अनिवार्य रूप से इसका अर्थ महान् आध्यत्मिक उपलब्धि नहीं है; मात्र एक संन्यासी। जब कोई संन्यासी संघ में दीक्षित हो जाता है, तभी वह 'श्री' के बदले 'स्वामी' के नाम से सम्बोधित होता है।

फीनिक्स : क्या स्वामी के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक रूप अपेक्षित है?

स्वामीजी : हां! आजीवन ब्रह्मचर्य। स्वामी कभी विवाह नहीं करता।

फीनिक्स : आपके यहां आने के पूर्व ही यदि किसी का विवाह हो गया है, तब क्या होगा?

स्वामीजी : हमलोग उसे अंगीकार नहीं करते हैं, उससे कहते हैं। 'जैसे हो, वैसे ही रहो। यह भी उच्च मार्ग है। तुम वहां आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हो। इस मार्ग में परिवर्तित होने की कोई जरूरत नहीं है।

फीनिक्स : किन्तु क्या कोई गृहस्थ उपलब्धि.......?

स्वामीजी : पूर्ण उपलब्धि! वह कर सकता है?

फीनिक्स : क्या यह अधिक कठिन है?

स्वामीजी : कुछ दृष्टियों से, यह अधिक आसान है। जीवन यहां अधिक सुखद है। उसके पास अपने रुपये-पैसे हैं, उसकी जरूरतें,—भोजन तथा अन्य—आसानी से पूरी हो जाती हैं, जबकि किसी संन्यासी के लिए हर वस्तु अनिश्चित है। तथापि गृहस्थ में अनासक्ति होनी ही चाहिए। तब वह अनुभूति प्राप्त कर सकता है। क्यों? क्योंकि सत्य उसमें अन्तर्निहित है। यह प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह ईश्वर की उपलब्धि कर सकता है, क्योंकि ईश्वर उसका अपना स्वभाव है।

फीनिक्स : वह इसमें कैसे लगा रह सकता है? उसे कहां से प्रारंभ करना चाहिए?

स्वामीजी : उसे अपनी मनोवृत्ति को बदलना है। उसे अपने मानवीय सम्बन्धों—पत्नी, बच्चे, पति—में ईश्वर को सन्निविष्ट कर देना है; सर्वत्र ईश्वर पर बल देना ही चाहिए।

फीनिक्स : क्या इसका यह अर्थ है कि विवाहित होने पर भी, अंतिम उपलब्धि प्राप्त करने के पहले, वह ब्रह्मचारी हो जाता है?

स्वामीजी : यह तब होता है, जब वह आध्यात्मिक शक्ति का पर्याप्त विकास कर लेता है। तब, पत्नी या

पति की सहमति से वे ब्रह्मचारी का जीवन यापन कर सकते हैं। यह एक एक उच्च आदर्श है।

फीनिक्स : क्या यह आध्यात्मिक जीवन के लिए पूर्व अपेक्षित है?

स्वामीजी : अनिवार्यतः नहीं। किन्तु जिसकी आवश्यकता है, वह है आत्म संयम। पूर्ण निग्रह आवश्यक है। भोग-विलासमय जीवन आध्यात्मिक पथ में सहायक नहीं होता। अर्थात्, विवाहित जीवन स्वयं ही एक संयमपूर्ण जीवन है। एक बार जब कोई विवाह कर लेता है, तब अपने संगी या संगिनी को छोड़ कर, उसे प्रतिजाति या विपरीत लिंग के सभी व्यक्तियों को बहनों या भाइयों के समान समझना चाहिए। केवल एक व्यक्ति के साथ उसका यौन मूलक विशेष सम्बन्ध रहता है। सभी अन्य व्यक्तियों के साथ आदर श्रद्धा का बर्ताव किया जाता है। भारतवासियों द्वारा इसका व्यापक रूप में अनुसरण किया गया है। एक छोटी बच्ची भी 'माँ' कहकर सम्बोधित की जाती है।

फीनिक्स : गाँधीजी इससे भी आगे गये और विवाहित जोड़ों के लिए भी ब्रह्मचर्य की उन्होंने वकालत की। इसे उन्होंने 'विवाहित ब्रह्मचर्य' कहा।

स्वामीजी : वे ऊँचे आदर्श के बारे में कह रहे थे, और उनके निकट के लोग इस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सके। यद्यपि उनमें स्वयं दुर्बलताएँ थीं, जिनपर उन्होंने बाद में विजय प्राप्त की, तथापि दूसरों की दुर्बलताओं के प्रति उनको कोई चिन्ता नहीं थी। वास्तविक उपदेशों में हमलोग कहते हैं: 'अपनी शक्ति के अनुपात में आचरण करो।' सब के लिए कोई एक मानदण्ड नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति—पुरुष या स्त्री—का अपना मानदण्ड है। किन्तु बल इस बात पर दिया जाता है : ऐन्द्रिक स्तर पर जीवन को तुम जितना अधिक संयमित करते हो, आध्यात्मिक स्तर पर तुम उतनी ही ऊँचाई से विकसित होते हो। ऐन्द्रिक स्तर का जीवन शारीरिक स्तर है। आत्मनिग्रह उच्चतर लक्ष्य के साधन मात्र हैं न कि अपने आप में लक्ष्य है। हमें देह से ऊपर उठना है। आत्मिक ऊर्जा को उच्चतर स्तर पर उठाना है।

फीनिक्स : आप केवल युवकों को संघ में अंगीकार करते हैं। किन्तु अनेक व्यक्ति सोचते हैं कि दर्शन और अध्यात्म को जीवन के परवर्ती काल में आना चाहिए, और युवकों को अपनी ऊर्जा अपने परिवार, अपने कार्य आदि में अर्पित करनी चाहिए।

स्वामीजी : हम इस विचार को स्वीकार करते हैं। लाखों लोगों के लिए यही तरीका है। किन्तु यदि ऐसे कुछ लोग हैं जो बाहरी जीवन के अनुशासन की चक्की से नहीं गुजरना चाहते हैं, उन्हें क्यों ऐसा करना चाहिए? बुलावा आ गया है; मैं आध्यात्मिक जीवन में सीधे प्रवेश करना चाहता हूँ। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुला है। किन्तु यह बुलाहट पर निर्भर करता है, प्रेरणा कितनी सबल है, इस बात पर निर्भर करता है। मान लो कि तुमने अनेक जन्मों में पहले ही सांसारिक जीवन का उपभोग कर लिया है। अंतिम जीवन में किसी का आन्तरिक भाव है—'मैं ईश्वर को प्राप्त करना चाहता हूँ'। कामनाओं की संतुष्टि के बिना हम आध्यात्मिक नहीं हो सकते हैं। किन्तु यदि तुम यह अनुभव करते हो कि तुम अब आध्यात्मिक व्यक्ति हो तब तुम इस अनुभव के साथ ही परिपूर्ण हो गये। तुम्हें पुनः इसकी जरूरत नहीं है।

अनेक लोग अब तक उस पड़ाव पर नहीं आये हैं और उन्हें निश्चय ही सबसे पहले जीवन का अनुभव प्राप्त कर लेना चाहिए। सब कुछ समर्पण करने के पहले समर्पण करने के लिए हमें कुछ अवश्य चाहिए। इसीलिए भगवद्गीता का प्रथम भाग पुरुषत्व और शक्ति का आदेश देता है; द्वितीय भाग सम्पूर्ण समर्पण का उपदेश देता है। अतएव, पहली अवस्था है अहंकार को विकसित करना; दूसरी अवस्था है : इसका समर्पण करना।

अंततः सच्चा वैराग्य आता है। पहले व्यक्ति रुपये पैसे, शक्ति, भोग-विलास का अनुभव प्राप्त करता है.... और इसके साथ ही समाप्त हो जाता है। तब इनके प्रति उसका कोई आकर्षण नहीं रह जाता। उसके चिन्तन के लिए अधिक अच्छी और ऊँची वस्तुएं हैं। मात्र उस अवस्था में कोई व्यक्ति ईश्वर के प्रति वस्तुतः अभिरुचि ले पाता है।

फीनिक्स : हाल के वर्षों में पश्चिमी देशों में हुए आध्यात्मिक जीवन में तीव्र जागरण और रुचि की आप क्या व्याख्या करेंगे ? क्या यह वास्तविक है या क्षणिक आकर्षण ?

स्वामीजी : यह अकृत्रिम है। और इसकी व्याख्या सरलता पूर्वक की जा सकती है। तीन चीजों को समझ लेना चाहिए : भोग, योग और रोग। सभी ऐन्द्रिक सुख, दैहिक स्तर पर संतुष्टि, भोग हैं। तब आता है योग—आध्यात्मिक आकांक्षा। भोग के बिना योग नहीं आ सकता। भोग कर लेने के बाद तुम्हें चुनाव करना है : या तो योग (आध्यात्मिक विकास) अथवा रोग (शारीरिक और मानसिक बीमारियाँ)। भोग रोग की ओर ले जायगा यदि इनके बीच योग नहीं आ जाता। अर्थात् यदि आध्यात्मिक विकास वर्जना नहीं करता है तो इन्द्रिय-तुष्टियाँ मानसिक और शरीरिक रोगों की ओर ले जायेंगी।

आज, संसार ने भोग को देख लिया है। और मेरा विश्वास है कि कुछ योग का प्रारंभ हुआ है। क्या ऐसा नहीं है ? लोग अनुभव करते हैं कि वे कुछ अधिक अच्छाई, आध्यात्मिक रूप से विकास की खोज में आगे बढ़ना चाहते हैं। पश्चिमी देशों को प्रचुर भोग, प्रचुर इन्द्रिय-सुख प्राप्त हैं, और इसी कारण से वहाँ योग एक वास्तविक अनुभूति है। लोग इसे चाहते हैं। उपलब्ध करने के लिए कई सुन्दर वस्तुएँ हैं। युवक लोग कुछ ऊँची चीजों की खोज कर रहे हैं जैसे—ध्यान, प्रार्थना, भक्ति, जिज्ञासा करना, जाँच-पड़ताल करना……।

फीनिक्स : तब यह कैसे हुआ कि बिना प्रचुर भोग के उच्चतर अवस्था में रुचि को अनुप्रेरित करने और उसे बनाएँ रखने के लिए भारत इतने लम्बे अर्से से आध्यात्मिकता का केन्द्र रहा है ?

स्वामीजी : ऐसा इसलिए हुआ क्यों कि भारत के इतिहास की आरंभिक अवस्थाओं में इस संस्कृति ने उपनिषदों के द्वारा एक सुन्दर आध्यात्मिक उन्मुखता प्राप्त की थी। यह वह काल था जब अनेक प्रतिभाशील मनीषियों ने धर्म को विज्ञान के रूप में, न कि केवल काव्य के रूप में, वरण किया था। शंकराचार्य, श्रीकृष्ण की तरह के लोग, उपनिषद् आदि के रचयिता ऋषिगण प्रतिभा सम्पन्न बुद्धि वाले थे। उन लोगों ने भारतीय चिन्तन और जीवन को एक ऐसी दिशोन्मुखता प्रदान की कि यह इस देश का एक चिरंतन तत्व हो गयी।

यहाँ लोग धर्म का आदर करते हैं, किसी बौद्धिक पंडित या प्रतिभावान सैनिक की अपेक्षा धार्मिक व्यक्ति यहाँ अत्यधिक सम्मानित होते हैं। भारत में पाण्डित्य का आदर होता है, और धन का आदर होता है, किन्तु सर्वाधिक आदर ईश्वर के उपासक का होता है। वह एक दरिद्र प्राणी हो सकता है, किन्तु यदि उसने ईश्वर की उपलब्धि कर ली है तो सभी—यहाँ तक कि महाराजागण भी—उसे नमस्कार करेंगे। यह संस्कृति का सूचक है।

फीनिक्स : कृपया विशेष रूप से आप बताएँ कि आप जिस विषय का उपदेश देते हैं वह अद्वैत है ?

स्वामीजी : अद्वैत, किन्तु द्वैत को सम्मिलित करके। वास्तविक अद्वैत द्वैत का सब कुछ सम्मिलित कर लेता है।

फीनिक्स : आप योग और वेदान्त का भी उपदेश देते हैं। क्या आप अद्वैत के संदर्भ में इन शब्दों की परिभाषा कर सकते हैं ?

स्वामीजी : वेदान्त दर्शन के तीनों मतों—अद्वैत, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत—के लिए प्रयुक्त होने वाला एक सामान्य नाम है। कभी-कभी लोग केवल अद्वैत के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। वेदान्त सभी मतों का समावेश करता है। उपनिषदों के उपदेश को वेदान्त कहा जाता है। अतः सामान्य दृष्टि से योग का अर्थ है, 'आध्यात्मिक अनुभूति का तरीका।' सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि वेदान्त का व्यावहारिक रूप योग है।

फीनिक्स : क्या यह कहना बिल्कुल सही है कि संघ के सदस्य श्री रामकृष्ण के 'भक्त' हैं ? क्योंकि, ऐसा प्रतीत होता है कि वे अधिक विवेकी हैं, भक्ति मार्ग की अपेक्षा ज्ञान मार्ग के प्रति अधिक झुकव रखते हैं।

स्वामीजी : दोनों का समावेश हुआ है। स्वयं श्री रामकृष्ण ज्ञान, भक्ति, कर्म……सब का समन्वय थे। उन्होंने इसे जिया और दूसरों को भी इसके लिए प्रोत्साहित किया।

फीनिक्स : इस शिविर की अवधि में आपने कहा है कि उपनिषद् के अनुसार जीवन का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति करना है। किस प्रकार का ज्ञान ?

स्वामीजी : कोई ज्ञान। जीवन तुम्हें जो सुख-दुःख प्रदान करता है, उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करना ही लक्ष्य है। अनुभवों से ज्ञान निचोड़ने के लिए मन को जोतना ही चाहिए। केवल मनुष्य ही यह कर सकता है, क्योंकि उसे संधान करने की योग्यता है। पशु ज्ञान का संधान नहीं करते। पशु जन्मजात ज्ञान के स्तर पर जीते हैं, जब कि मनुष्य ज्ञान के चेतनापूर्ण संधान के स्तर तक जा सकता है।

फीनिक्स : किन्तु अन्ततः क्या यह एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जिसकी हम आकांक्षा करते हैं…… ?

स्वामीजी : वह ज्ञान भौतिक और अधिभौतिक दोनों है। भौतिक विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र……सभी ज्ञान हैं। नीति शास्त्र और धर्म भी ज्ञान हैं। यहाँ भौतिक विज्ञान है और आध्यात्मिक विज्ञान है। दोनों ज्ञान हैं और मनुष्य को इन दोनों का अवश्य संधान करना चाहिए। पहले वह जिस ज्ञान की खोज करता है वह सदैव संसार का ज्ञान होता है। तदुपरान्त, परिपक्वता आती है और तब वह भौतिक स्तर से ऊपर इस बात की खोज करता है कि अपनी परिपूर्णता में जीवन क्या है ?

फीनिक्स : भौतिक ज्ञान की साधना के द्वारा क्या हमलोग कभी किसी मात्रा में आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं ?

स्वामीजी : यदि तुम इन दोनों में भेद नहीं करो तो, यह साधना स्वयं तुम्हें कुछ उच्चतर बोध की ओर ले जायगी। क्योंकि तुम केवल अपूर्ण, अनिश्चित सूचना ही प्राप्त कर पाते हो। तब मूलभूत प्रश्न उठ खड़े होते हैं, जैसा कि आज विज्ञान में हो रहा है। भौतिक संसार का ज्ञान तुम्हें कुछ अ-भौतिक, लोकोत्तर ज्ञान की ओर ले जाता है। वास्तविकता की चेतना या तत्व बोध का अनवरत विस्तार ही ज्ञान है। पहले, यह सतही वास्तविकता है और बाद में गहनतर वास्तविकता। पहले, तुम अपने को शरीर समझते हो, तब तुम आत्मा के रूप में अपने स्वरूप का गहनतर ज्ञान प्राप्त करते हो। लौकिक और धार्मिक दोनों ईश्वर के अंश हैं। सभी ज्ञान पवित्र हैं, क्योंकि, संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही ईशोपनिषद् का प्रथम उद्‌गार है। जब तुम वस्तुओं के सार तत्व को समझ लेते हो, तब तुम ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं पाते हो। सतही स्तर पर, तुम अणुओं, परमाणुओं आदि को देखते हो, किन्तु जब तुम गहराई में प्रवेश करते हो, तब पाते हो कि पूर्ण चेतना, सभी वस्तुओं के सार तत्व के अतिरिक्त वहाँ और कुछनहीं है; यही आत्मा है, यही ब्रह्म है—जिन शब्दों का उपनिषदों में प्रयोग हुआ है।

फीनिक्स : इसके बाद क्या आप बतायेंगे कि विश्व-विद्यालयीय शिक्षा अध्यात्म मार्ग में बाधक है या साधक ?

स्वामीजी : यह सहायक है, बशर्ते कि इसे अपनी जगह पर सकारात्मक रूप में रखा जाय। यह अच्छी है, यदि तुम अपनी औपचारिक शिक्षा का इस बोध के साथ समापन कर सको कि इस शिक्षा से प्राप्त किया हुआ ज्ञान मात्र इतना ही है, तथा अभी भी अन्य अनजाने क्षेत्र हैं जिनकी खोज मनुष्य को अवश्य करनी चाहिए। लेकिन, यदि तुम्हारी शिक्षा का अंत एक स्वयं में पर्याप्त, आत्म-निर्भर के रूप में, केवल अर्थोपार्जन के लिए और इससे अधिक तथा ऊँची किसी वस्तु के लिए नहीं होती है, तब यह अत्यन्त अपर्याप्त है। यह मनोवृत्ति पर निर्भर करता है।

हमलोग सदा देखते हैं कि जब तुम एक विषय जान लेते हो, तब नयी सामग्री के साथ दूसरा विषय खुल जाता है! मनुष्य को इसका सामना करने के योग्य होना ही चाहिए। ज्ञान धीरे-धीरे, शारीरिक से मानसिक होकर आध्यात्मिक स्तर तक गहनतर होता जाता है। शरीर विज्ञान का ज्ञान श्रेष्ठ ज्ञान है; किन्तु तन्त्रिका-विज्ञान (न्युरोलॉजी) का ज्ञान श्रेष्ठतर है; मनोविज्ञान का ज्ञान और अधिक

गंभीर है; और अंततोगत्वा, आत्मन् का ज्ञान गहनतम है। प्रथम ज्ञान को दूसरे ज्ञान की ओर अवश्य ले जाना चाहिए। हमलोगों को शरीर के स्तर पर ही रुक नहीं जाना चाहिए।

फीनिक्स : नास्तिकों के विषय में आपकी क्या धारणा है ? निश्चय ही उनकी मनोवृत्ति कुछ भिन्न होती है।

स्वामीजी : अद्वैत दर्शन के अनुसार कोई भी व्यक्ति वास्तव में नास्तिक नहीं हो सकता। जब तुम ईश्वर को नकारते हो, तब वतुतः किसी बाहरी तत्व, एक धारणा को नकारते हो। तुम अपने 'आत्म स्वरूप' को नहीं नकार सकते....और वही यथार्थ ईश्वर है। अतः अपने उच्चतर आयाम की उपेक्षा कर दैहिक स्तर पर जीने वालों के सिवा, वास्तविक नास्तिक कोई नहीं है। इसलिए भारत में नास्तिकों को कभी सताया नहीं गया, यहाँ कभी कोई 'विधर्मी' नहीं था।

फीनिक्स : क्या अद्वैत का वस्तुतः सम्पूर्ण भारत पर ऐसा प्रभाव है ?

स्वामीजी : अरे हाँ ! बहुत कुछ शंकराचार्य की भारी प्रतिष्ठा और बौद्धिक आकर्षण के कारण अद्वैत भारतीय मानस पर वस्तुतः शासन कर रहा है। तथापि, कभी-कभी अद्वैत द्वैत-विरोधी, भक्ति-विरोधी हो गया है, जो गलत था; यह वास्तविक अद्वैत नहीं है। अद्वैत एक व्यापक वस्तु है। स्वयं शंकराचार्य के हृदय में भक्ति एवं अन्य सभी द्वैतवादी धर्मों के लिए बड़ा स्थान था। आजकल, हमलोग इसी व्यापक भाव में अद्वैत को ग्रहण करते हैं। खण्डनात्मक प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों सहित सभी गैर सम्प्रदायिक चिन्तकों पर इसका जबर्दस्त प्रभाव है। यहाँ तक कि एक कम्युनिस्ट भी अद्वैत का आदर करेगा।

फीनिक्स : आप इसे निजी अनुभव से जानते हैं; मैं समझता हूँ कि आप सोवियत रूस में रह चुके हैं। यह कैसे हुआ ?

स्वामीजी : मास्को विश्वविद्यालय ने मुझे आमंत्रित किया था। मैंने वहाँ १९७७ ई० में व्याख्यान दिये। मैं वहाँ पहले भी सन् १९६१ में जा चुका हूँ, जब मैंने अन्य पूर्वी युरोपीय देशों के साथ ही चेकोस्लोवाकिया और पोलैंड की यात्रा की थी। मैं क्यूबा (१९६९) और युगोस्लाविया (१९७०) भी गया था।

फीनिक्स : सोवियत संघ तथा वहाँ के लोगों के मनोभावों के प्रति आपके क्या अनुभव हैं ?

स्वामीजी : मैंने उनमें भारतीय चिन्तन के प्रति तथा हमलोगों के महान ग्रंथ जैसे गीता, उपनिषद्, विवेकानन्द आदि को समझने की प्रबल इच्छा पायी। उनमें संकीर्ण-मानसिकता या कम्युनिस्ट-विरोधी जैसा नहीं है। हमलोग साम्यवाद के विरोध में भाषण नहीं करते। हम साम्यवादी आन्दोलन की हिंसा की भले ही निन्दा करें, किन्तु एक सिद्धान्त, एक आदर्श के रूप में हमें इसके विरुद्ध कुछ नहीं करना है। और दूसरी ओर भी यह है। मात्र एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से लड़ेगा। चूँकि हमलोग कोई सम्प्रदाय नहीं, बल्कि मात्र एक दर्शन हैं, अतः हमें कोई कठिनाई नहीं है। दर असल, वे धर्म शब्द पसन्द नहीं करते, लेकिन केवल शब्द ही समस्या है; जब तुम 'जीवन-दर्शन' की बात करो, तब वे बुरा नहीं मानते।

उदाहरणार्थ, उनकी इच्छा थी कि मैं 'स्वामी विवेकानन्द और उनका मानवतावाद' विषय पर बोलूँ। मानवतावाद पर बोलते हुए, मैंने कहा : 'आधुनिक पाश्चात्य मानवतावाद एक सुन्दर दर्शन है। इसमें केवल एक ही त्रुटि है : यह मनुष्य को गहराई में नहीं जानता। इसकी आपूर्ति वेदान्त में होती है। मनुष्य तत्वतः दिव्य है। जब वह अपनी दिव्यता को अभिव्यक्त करता है, तब उसका मानवतावाद स्वाभाविक, सहज और दीर्घकालीन रहता है। तब कानून उसे नैतिक बनने में सहायता करते हैं। आज विश्व में हमें इसी की जरूरत है। उन लोगों को यह विचार पसन्द आया; इसने उन्हें प्रचुर रूप में प्रभावित किया।

फीनिक्स : आप पश्चिमी देशों की साम्यवादी देशों के साथ किस प्रकार तुलना करेंगे ?

स्वामीजी : अधिक कठोर साम्यवादी देशों की तुलना में स्वभावतः, पश्चिमी देशों में समाज अधिक मुक्त है। मैं 'स्वभावतः' कहता हूँ क्योंकि, साम्यवादी देशों में स्वाधीनता की अपेक्षा समता की वरीयता पर तंत्र आधारित है, जब

कि पश्चिम में लोग समता की अपेक्षा स्वाधीनता को अधिक पसन्द करते हैं।

लेकिन एक चीज जो मैंने सभी समाजवादी देशों में देखी, वह यह है कि वहाँ जीवन की अभद्रता नहीं है, यौन-शोषण नहीं है, नारी के प्रति पूर्ण आदर का भाव है, व्यवसाय में, ऊँचे पदों में, समस्त नारियाँ पुरुषों के ही समकक्ष हैं। मैंने इसे बहुत अधिक पसन्द किया।

फीनिक्स : स्वामी विवेकानन्द ने गोपनीयता के विरुद्ध अक्सर वक्तव्य दिया। और तब भी, कहा जाता है कि अनेक गुरुओं के पास एक गुप्त शिक्षा थी जिसे उन्होंने केवल योग्य अल्पसंख्यकों को प्रदान किया। उदाहरणार्थ, ईसा मसीह ने समूहों के बीच तो केवल नीति कथाएँ कहीं, और केवल अपने बारह शिष्यों के सामने वास्तविक अर्थ की व्याख्या की।

स्वामीजी : यह केवल शिक्षा देने वाले की मनोवृत्ति है। जब मैं बच्चों से बातें करता हूँ तब मैं विचारों को स्पष्ट करने के लिए कहानियों के माध्यम से बोलता हूँ। जब मैं स्नातकोत्तर कक्षा में वक्तव्य देता हूँ तब मैं अपने विचारों को अधिक सीधे ढंग से व्यक्त कर सकता हूँ। इसलिए, यह एक शुद्ध शैक्षणिक पद्धति है। इसमें कोई गोपनीयता नहीं है। धर्म में कोई गोपनीयता नहीं है; यह पूरे प्रकाश में बिल्कुल प्रकट है।

फीनिक्स : किन्तु ऐसा कहा जाता है कि प्रत्येक धर्म का अपना एक गुह्य पक्ष होता है।

स्वामीजी : यदि गुह्य शब्द पवित्र के अर्थ में समझा जाता है तब तो यह बिल्कुल सही है; किन्तु इसका अर्थ गोपनीय नहीं है। जो पवित्र है उसका गोपनीय होना आवश्यक नहीं है। और जो गोपनीय है वह आवश्यक रूप से पवित्र नहीं है। इसलिए, जब हम गुह्यवाद के विषय में बोलते हैं तब गोपनीयता पर नहीं, बल्कि एक गंभीर सत्य, एक पवित्रता, कुछ ऐसा जिसे बाजार में नहीं फेंका जाना चाहिए, पर जोर दिया जाता है। अतएव, गुरु केवल उन्हीं के सामने वस्तुओं की व्याख्या करेंगे जो समझने की योग्यता रखते हैं, दूसरों के लिए, इसे हलका करना पड़ेगा। किन्तु इसमें कोई गोपनीयता नहीं है। गोपनीयता सदैव एक शक्ति-उन्माद है। लोग अनुभव करते हैं कि उन्हें व्यावसायिक गोपनीयता अवश्य रखनी चाहिए; इसी कारण से हमलोग धर्मों को गोपनीयता से मिला देते हैं। वे समझते हैं कि 'मैं अपनी गोपनीयता को प्रकट कर देता हूँ तो मैं अपनी शक्ति खो दूँगा।' इसी प्रकार से कुछ गुरु अपने शिष्यों को निरंतर अपने वश में रखते हैं। यह ठीक नहीं है। वास्तविक धर्म में शक्ति-उन्माद नहीं है। व्यक्ति को चाहिए कि जो कुछ भी सत्य है, उसकी लोगों के साथ साझेदारी करें; जो समझ सकते हैं वे समझेंगे; दूसरों को आसान तरीके से इसकी व्याख्या करनी पड़ेगी। किन्तु गोपनीयता नहीं होनी चाहिए।

फीनिक्स : मार्ग में कठिनाइयों के विषय में आप क्या कहेंगे? शायद कुछ चीजों को गुप्त रखना चाहिए क्योंकि वे साधारण लोगों के हाथों में खतरनाक हो सकती हैं।

स्वामीजी : कुछ चीजें तुरंत नहीं दी जा सकती हैं। उदाहरण स्वरूप किसी बच्चे को दियासलाई नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि वह आग के साथ परीक्षण करना शुरू कर देगा और उसे हानि हो सकती है। मानवीय परिस्थिति के साथ शुद्ध रूप से बुद्धि के द्वारा ही व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु सामान्यतः लोग केवल इसीलिए नहीं, बल्कि शुद्ध व्यावसायिक-गोपनीयता की तरह, दूसरों पर अपनी प्रमुखता बनाये रखने के लिए, गोपनीयता रखते हैं।

बुद्ध ने खुलेपन का एक अद्भुत उदाहरण दिया। लोग कहते हैं कि उन्होंने कुछ भी मुट्ठी में बन्द नहीं रखा। वे लोगों को अपना संदेश सुनने और मात्र जब वह विवेक सम्मत, व्यावहारिक और सार्वभौम लगे तभी उसे स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया करते थे। लोगों को अपने तईं निर्णय लेना और अपनी सामर्थ्य के अनुसार जहाँ तक संभव हो आत्मसात् करना पड़ता था।

फीनिक्स : आपमें स्वयं खुलेपन और सार्वभौमिकता की यही मनोवृत्ति है। क्या यह पूरे रामकृष्ण संघ की विशेषता है?

स्वामीजी : हमलोगों की मान्यता है कि सत्य पर किसी एक सम्प्रदाय या वर्ग का एकाधिकार नहीं है : यह सार्वभौम और सबके लिये प्रकट है। हमलोग किसी से झगड़ना या किसी की आलोचना करना नहीं, बल्कि लोगों को अधिक सहिष्णुता और समझदारी के लिए प्रोत्साहित करना चाहते हैं। हमलोगों का झुकाव लोगों को अस्वीकृत करने या उनकी निन्दा करने की अपेक्षा प्रत्येक को स्वीकार करने की ओर है। हमलोग एकता और शान्ति के लिए कार्य करना चाहते हैं। यही हमलोगों का मुख्य सन्देश है। □

रामकृष्ण संघ की समस्याएँ

स्वामी वन्दनानन्द

[स्वामी वन्दनानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ के एक वरिष्ठ सन्यासी हैं तथा रामकृष्ण मिशन के प्रशासी मण्डल के एक वरिष्ठ सदस्य। सन् १९८० में दिसम्बर २३ से २९ तक आयोजित रामकृष्ण संघ के द्वितीय महासम्मेलन के अवसर पर, रामकृष्ण संघ के जनरल सेक्रेटरी की हैसियत से, २७ दिसम्बर के अपराह्न सत्र की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने जो भाषण दिया था, वही प्रस्तुत लेख के रूप में 'रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन कार्यवाही १९८०—रिपोर्ट' से साभार गृहीत हुआ है। अनुवादक हैं स्वामी विदेहात्मानन्द, जो सम्प्रति रामकृष्ण मठ, नागपुर में कार्यरत हैं।]

हमारे जैसे बृहत् एवं विकासमान संगठन को स्वाभाविक रूप से ही कुछ छोटी-बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और हमारे यथासाध्य प्रयत्नों के बावजूद सर्वदा ही इसका सुखद एवं पूर्ण समाधान नहीं हो पाता। वस्तुतः पूरा विश्व ही संकटकाल से होकर गुजर रहा है और भारत की भी अपनी समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ हैं। चूँकि रामकृष्ण संघ भी काफी लोगों के जीवन, कर्म तथा समस्याओं के साथ आन्तरिकता एवं अभिन्नतापूर्वक जुड़ा हुआ है, अतः स्वाभाविक रूप से वह भी समस्याओं तथा कठिनाइयों के दायरे में आ जाता है। संघ के प्रारम्भिक दिनों में हमारे पूर्ववर्तियों ने भी, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी तथा उनके अन्तरंग पार्षदों, भक्तों एवं अनुयायियों का हार्दिक स्नेह, स्वीकृति तथा सहयोग पाने के बावजूद अनेक समस्याओं का सामना किया था। हमारे कुछ केन्द्र प्रारम्भ होने पर तथा उनका कार्य सुचारु रूप से चलने पर कुछ निहित स्वार्थ उनका विरोध करते हैं तथा उनके मार्ग में रोड़े अटकाने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन को प्राप्त होने वाले दानों, वसीयतों तथा स्थायी निधियों में बाधक होते हैं और इन झगड़ों के निपटारे के लिए हमें न्यायालय की शरण लेनी पड़ती है। समाज के अति रूढ़िवादी लोगों को यह पसन्द नहीं कि हम उनके होनहार युवकों को संन्यासी के रूप में स्वीकार करें। सम्भवतः उनका मत यह है कि संन्यास तो जीवन के चौथेपन में लेना चाहिए, जबकि व्यक्ति किसी अन्य कार्य के योग्य नहीं रह जाता। दातव्य चिकित्सालय चलाने तथा रोगियों की सेवा करने के कारण हमारे संन्यासियों की 'भंगी साधु' कहकर निन्दा की जाती थी। ब्रिटिशकालीन भारत में भी असहयोग आन्दोलन, स्वाधीनता संघर्ष आदि राजनीतिक घटनाओं के फलस्वरूप संघ को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा था तथा सरकारी मशीनरी के अकारण सन्देह एवं कोप का भी भाजन होना पड़ा था। कारण यह था कि हमारे कुछ वरिष्ठ संन्यासी संघ में प्रवेश लेने से पूर्व देशभक्त क्रान्तिकारी थे। श्रीरामकृष्ण की आमूल परिवर्तनकारी आध्यात्मिक शक्ति तथा संघ को राजनीति से अलग रखने की स्वामीजी की चेतावनी ने अब तक रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के संन्यासी, भक्त एवं मित्रों के बीच एक स्वस्थ परम्परा कायम रखी है। रामकृष्ण संघ भी भारतवर्ष के अन्य किसी भी संगठन के समान देशभक्त, राष्ट्रवादी तथा आत्मबलिदानी है। परन्तु तो भी यह पूर्णतः असाम्प्रदायिक एवं अराजनीतिक

ती है।

स्वाधीनता के पश्चात् तथा विगत कुछ काल के दौरान संघ ने विविध क्षेत्रों में यथेष्ट तथा प्रशंसनीय प्रगति की है। विभिन्न स्रोतों से सहायता तथा संरक्षण मिलने के फलस्वरूप कुछ और भी शैक्षणिक, चिकित्सकीय तथा सांस्कृतिक केन्द्र शुरू किये गये हैं। पर कार्य में उल्लेखनीय विस्तार के साथ ही कुछ विविध प्रकार की समस्याएं एवं कठिनाइयां प्रकट हुई हैं। यहां पर मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि इनमें सबसे गम्भीर समस्याएं हमारी अपनी उपज नहीं हैं, वरन् स्वार्थी एवं पृथक् आदर्श रखनेवाले समुदायों द्वारा हम पर थोपी गयी हैं, जो सम्भवत: भ्रमवश ऐसा सोचते हैं कि हम उनके द्वारा लाये जानेवाले सामाजिक परिवतन के मार्ग में बाधक हैं। या फिर ये समस्याएं ऐसी उच्छृंखल एवं विघटनकारी शक्तियों द्वारा उत्पन्न की जाती हैं, जो कानून, व्यवस्था तथा न्याय की परवाह न कर अपनी अनुचित मांगें रखती हैं और आन्दोलन करती हैं।

अब मैं समस्याओं पर आता हूं। यदि आप सोच रहे हैं कि मैं समस्याओं की एक बड़ी तालिका प्रस्तुत करूंगा, तो आपको निराश होना पड़ेगा। मैं तो कुछ सामान्य बातें कहूंगा कि किस क्षेत्र में किस प्रकार हम और आप मिलकर उनका समाधान कर सकेंगे। मोटे तौर पर समस्याओं को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक समस्याओं में मैं दो का उल्लेख करूंगा—एक तो वे, जो विरोध के रूप में आती हैं और दूसरी, उदासीनता के रूप में। जहां तक विरोध का प्रश्न है, इसके कम ही उदाहरण मिलते हैं, परन्तु जब हम राहत कार्य करने जाते हैं तथा पुनर्वास कार्य के लिए भवन-निर्माणार्थ भूमि मांगते हैं, तो पता चलता है कि कुछ लोग हमें यह सुविधा देने को तैयार नहीं। वे कहते हैं कि यह हमारी जमीन है, और वे उसे गरीबों के लिए भवन-निर्माणार्थ देने को प्रस्तुत नहीं। कभी-कभी वे कहते हैं—'रामकृष्ण मिशन वापस जाओ।' व्यक्तिगत पूर्वग्रह भी हमारे कार्य में बाधक होता है। जब हम कोई नया केन्द्र प्रारम्भ करना चाहते हैं या अपने कार्य के निमित्त किसी भवन को लेना चाहते हैं, तो वहां बड़ा ही विचित्र विरोध होता है, जिसका कारण हमारी समझ से परे है। प्रकाशन के क्षेत्र में भी हम देखते हैं कि लोग हमारे द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का ही पुनर्मुद्रण कर लेते हैं।

उदासीनता के सन्दर्भ में आप स्वामी आत्मस्थानन्द के कथन का स्मरण करें। भक्तगण कहां हैं? जब रामकृष्ण संघ में अनेक चीजें उनकी आंखों के सामने ही घटती हैं, तो भी वे चुप क्यों रहते हैं, आकर उनका विरोध क्यों नहीं करते? लगता है, वे उदासीन हैं, और यह बड़ी ही विचित्र बात है। हमें अपनी संस्थाएँ और विशेषकर शैक्षणिक संस्थाएँ चलानी हैं, जिनमें तरुण बालक-बालिकाएँ शिक्षा पा रहे हैं। इन संस्थाओं की व्यवस्था मिशन के आदर्शों एवं सिद्धान्तों के अनुसार होनी चाहिए। इस विषय में हमारा अपना वैशिष्ट्य है। परन्तु अपने आदर्शों एवं सिद्धान्तों के अनुसार कार्य चलाने में हमें काफी बाधाओं एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है। देश के प्राय: सभी स्कूलों-कालेजों में अव्यवस्था, अशान्ति तथा अनुशासनहीनता का साम्राज्य फैला हुआ है। हमें भी उनका सामना करना पड़ता है। लड़कों को अच्छी शिक्षा देने के लिए हमें बेहतर शिक्षकों का चुनाव करना पड़ता है। प्रार्थना तथा नैतिक शिक्षा देने का एवं छात्रावास चलाने का भी हमारा अपना ढंग है, जिससे शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे एक भिन्न प्रकार के नागरिक के रूप में विकसित हों। परन्तु इसमें भी बाधा डाली जाती है। हमें अपने शिक्षकों का स्वयं ही चयन नहीं करने दिया जाता। कभी-कभी कानून के दबाव से ऐसे शिक्षक भी लेने पड़ते हैं, जो श्रीरामकृष्ण के अनुयायी अथवा संघ के शुभचिन्तक नहीं भी हो सकते हैं; यहां तक कि वे हमारे आदर्शों एवं सिद्धान्तों के विरोधी भी हो सकते हैं। ऐसे लोग हमारी इच्छा के अनुरूप शिक्षा न देकर बिल्कुल भिन्न प्रकार की शिक्षा देना भी प्रारम्भ कर सकते हैं।

अब हम आर्थिक समस्या पर आते हैं, जो जनता की उदासीनता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। बहुधा लोग कहते हैं कि रामकृष्ण मिशन बड़ी धनवान् संस्था है। हमने स्वयं ही लोगों को कहते सुना है—"अरे ! ये लोग बहुत पैसेवाले हैं। जानते हो, इनका पैसा कहाँ से आता है ? बाहर से—अमेरिका और यूरोप से। विदेशी स्रोतों से पैसा आता है, ताकि इसके विदेशी शिष्यगण भारत आते-जाते रहें।" यह सच है कि हमारे विदेशी शिष्य हैं, पर इस कारण हमारे पास धन नहीं आया है। हमारा हिसाब-किताब देखने पर मालूम होगा कि यह बात असत्य है। हमारे कुछ ही केन्द्रों में थोड़ी सी बचत दीख पड़ती है, पर अधिकांश केन्द्र घाटे में चलते हैं। और जब हमारी आय का कोई स्रोत—दान या अनुदान—अचानक बन्द हो जाता है, तो तत्काल एक समस्या खड़ी हो जाती है और हम चिन्ता में पड़ जाते हैं कि अगले दिन अथवा अगले सप्ताह के लिए हम क्या करें। उदाहरणार्थ, हम अनाथ विद्यार्थियों के लिए एक बड़ी संस्था चला रहे हैं। वह हमारे ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। मान लीजिए, उसकी नियमित आय का एकमात्र स्रोत बन्द हो जाय, तो तत्काल आर्थिक सहायता के अभाव में हम अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे करेंगे ?

फिर आता है सामाजिक पक्ष। इस दृष्टि से भी लोग हमें समझ नहीं पाते और हमारे मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। इनमें से एक समस्या जातिप्रथा से सम्बन्धित है। हम रामकृष्ण मिशन के लोग जातिप्रथा को न तो मानते हैं और न इसे प्रोत्साहित करते हैं। हमारे सभी प्रकार के भक्त एक साथ बैठते हैं, एक साथ रहते हैं, एक साथ पूजन करते हैं और एक ही भोजन भी करते हैं। हमारे मन्दिर सभी जाति तथा सभी राष्ट्र के लोगों के लिए खुले हैं। अस्पृश्यता दूर करने के लिए हमसे जो भी बन पड़ता है, करते हैं और तथाकथित 'अस्पृश्य' वर्ग भी अपनी पूरी जिम्मेदारी निभाता है—वे हमारे केन्द्रों में आयोजित प्रार्थना में भाग लेते हैं और उन्हें समान रूप से शिक्षा, यहाँ तक कि संस्कृत की भी प्रदान की जाती है। हम उनकी उन्नति तथा आत्म सम्मान की भावना जगाने का प्रयास करते हैं ताकि वे भी अन्य लोगों के समान ही [illegible] नागरिक बन सकें। तथापि आपको पता है कहीं-कहीं इसका भी विरोध होता है और लोग [illegible] हैं कि हम आपसे सहमत नहीं हैं।

अब हम आते हैं आन्तरिक समस्याओं पर। उन्हें दो भागों में विभाजित किया है—संगठन सम्बन्धी तथा व्यवस्था सम्बन्धी। कार्यकर्ता की समस्या लीजिए। स्वामी आत्मस्थानन्द तथा अन्य वक्ताओं ने इसका उल्लेख किया है। एक अमेरिकी मित्र ने मुझसे पूछा, "स्वामीजी, बहुधा हम सुनते हैं कि रामकृष्ण मिशन में man-power (कार्यकर्त्ताओं) का अभाव है परन्तु आपका देश तो सर्वाधिक जनसंख्या वाले राष्ट्रों में एक है। अतः आप कार्यत्तीओं के अभाव की बात क्यों कहते हैं ?" हाँ, कार्यकर्त्ताओं से हमारा तात्पर्य सिर्फ संन्यासियों से नहीं है, वरन् हमें सच्चे सहायकों एवं कर्मियों—निष्ठावान् कर्मियों की आवश्यकता है। हम केवल संन्यासियों की नहीं वरन् पूरे रामकृष्ण संगठन की बात कह रहे हैं। फिर भी संन्यासियों के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि आपको पता है कि उनके अभाव में संस्थाएँ चलाना कठिन है। जो भक्त या मित्रगण कोई केन्द्र चला रहे हैं, वे भी प्रायः आकर कहते हैं—"हमें एक संन्यासी भेजिए। हम एक पूर्ण कालिक और कर्मठ संन्यासी चाहते हैं।" अतः हमारे भक्त एवं शुभचिन्तक अपने बीच रहने तथा कार्य करने के लिए एक संन्यासी चाहते हैं। इस दृष्टि से देखें तो कार्यकर्ताओं का अभाव एक गम्भीर समस्या है। संन्यासियों की संख्या यथेष्ट नहीं है। जैसा कि अभी स्वामी आत्मस्थानन्द ने बताया, संन्यासियों की वर्तमान संख्या में भी कितने ऐसे हैं, जो अपना पूरा समय दे सकते हैं ? इनमें से बहुत से या तो अस्वस्थ हैं अथवा वृद्ध हो गये हैं। अतः बड़ी संख्या में कर्मठ युवा

संन्यासियों की आवश्यकता है। अतः जब हम किसी विशेष केन्द्र में अथवा विश्व के विभिन्न भागों में और अधिक संन्यासी नहीं भेज पाते, तो इसमें आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। ऐसी बात नहीं कि हम उन्हें भेजना नहीं चाहते, बल्कि हमारे पास उनका अभाव है। बाहर जाने के लिए भी हमारे पास पर्याप्त लोग नहीं। जैसा कि कुछ वक्ताओं ने कल कहा, हम आशा करते हैं कि 'दान' के रूप में अथवा स्वेच्छापूर्वक और लोग भी संन्यासी होने आएँगे।

फिर हमारे संघ के समक्ष संसाधनों की समस्या है। हमारे संसाधन सीमित और अपर्याप्त हैं। यदि आप किसी केन्द्र की कार्यपद्धति का अवलोकन करें तो समझेंगे कि समस्या कितनी जटिल है। त्रिचूर के एक स्वामीजी प्रतिवर्ष अर्थ संग्रह के लिए बम्बई जाया करते हैं। एक पत्र में उन्होंने लिखा कि उन्हें 'विटामिन डेफिसिएन्सी' (अल्पता) हो गयी है। उन्हें कौन से विटामिन का अभाव था? विटामिन 'ए', 'बी' या 'सी' का नहीं, वरन् विटामिन 'एम' ('money'—धन) का। इस अभाव की पूर्ति के लिए, इस समस्या पर विजय पाने के लिए वे बारम्बार बम्बई जाया करते हैं। तो, संसाधनों की अत्यधिक आवश्यकता है और यदि आप हमारे निकट आकर देखें, तभी आप इसका स्पष्ट आकलन कर सकेंगे। अतः हमारा अनुरोध है कि आप संन्यासियों द्वारा किये जा रहे कार्य को समीप आकर देखें कि उन्हें कौन सी समस्याएँ प्रभावित कर रही हैं। आप इन समस्याओं का और भी गहराईपूर्वक अध्ययन करें, ताकि आप समझ सकें कि आप इसमें क्या सहयोग दे सकते हैं।

तदुपरान्त संघ की एक अन्य समस्या आती है—वह है कार्य-विस्तार की समस्या। इसके तीन पक्ष हैं—प्रथम है विस्तार का, फिर इसके विपरीत संकुचन का और फिर तीसरा है कभी-कभी एक केन्द्र का पूर्णतः बन्द हो जाना। किसी ने उल्लेख किया कि हमने अपना श्रीनगर केन्द्र बन्द कर दिया है। हाँ, यह सत्य है, परन्तु कुछ विशिष्ट कारणवश एवं अनिच्छापूर्वक हमें ऐसा करना पड़ा। हम चाहते हैं कि आप भक्तगण—आप में से प्रत्येक आगे आएँ और मठ एवं मिशन की इन समस्याओं का पता लगाएँ, समझने का प्रयास करें। उदाहरणार्थ, स्वामी आत्मस्थानन्द ने बताया कि और भी केन्द्रों तथा अधिकाधिक संन्यासियों की आवश्यकता है। अनेक क्षेत्रों में कार्य करना होगा। परन्तु यह सब कैसे हो और करे कौन? यदि हम एक वैतनिक कर्मचारी भेजें अथवा एक वैतनिक पण्डित जाकर प्रवचन दें, तो क्या आप इसे पसन्द करेंगे? मान लीजिए, हम ऐसे अवकाश प्राप्त निष्ठावान् कार्यकर्ता ढूँढ़ें जो संघ के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हों तथा उसके लिए एक संन्यासी के समान अपना सर्वस्व देने को प्रस्तुत हों। फिर भी, जैसा कि स्वामी आत्मस्थानन्द ने अपने व्याख्यान में कहा, इन विशिष्ट प्रकार के लोगों में भी सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, पवित्रता तथा अन्य अनेक गुणों की आवश्यकता होगी। कार्य में वृद्धि एवं विस्तार के लिए यदि संन्यासी उपलब्ध नहीं हैं, तो ऐसे असंन्यासी भी लिए जा सकते हैं। परन्तु ठीक-ठीक क्षमतावान्, सुयोग्य और बलिदानी भक्तगण हैं कहाँ? हमारा अनुभव तो निराशाजनक ही रहा है।

अब हम नये केन्द्रों को अपनी शाखा के रूप में स्वीकृति देने (affiliation) की समस्या पर आते हैं। 'प्राइवेट आश्रम' कहे जाने वाले ऐसे अनेक केन्द्रों की चर्चा हो चुकी है। वे लोग प्रायः हमसे सम्बद्धता के लिए अनुरोध किया करते हैं, जिससे कि उनके आश्रम को एक शाखा-केन्द्र के रूप में पूरी तरह ले लिया जाय। यहाँ भी वही समस्या है—उक्त केन्द्र का उत्तरदायित्व लेने को एक सुयोग्य संन्यासी भेजने की समस्या आ जाती है। नये केन्द्रों को लेना विस्तार की समस्या से कुछ भिन्न है। विस्तार का अर्थ है—मौजूदा केन्द्र में एक बल-चिकित्सालय या अन्य कोई गतिविधि बढ़ा देना। पर नये केन्द्र के लिए तो एक आश्रम प्रमुख भी भेजना पड़ता है। समस्या यह है कि हर किसी संन्यासी

को आश्रम-प्रमुख के रूप में नहीं भेजा जा सकता। यहाँ पर मैं एक पुरानी कहावत उद्धृत करना चाहूँगा— "उतने पाँव पसारिए जितनी लम्बी ठौर।" इस विषय में हमें सावधान रहना होगा कि बाहरी माँग को पूरा करने में हमारी आपूर्ति कम न पड़ जाय। इतनी सावधानी तो हमें बरतनी ही होगी। अधिकांश भक्त इस बात को नहीं जानते। बहुधा वे कहते हैं—"क्यों! इतने संन्यासी यहाँ बैठे हैं; इनमें से कुछ को आप भेज क्यों नहीं देते?"

अब मैं प्रबन्धकीय समस्याओं पर आता हूँ। हमें नीति-निर्धारण करना पड़ता है, योजनाएँ बनानी पड़ती हैं। यहाँ समस्या यह है कि परिस्थितियाँ ही नीतियों का निर्धारण करने लग जाती हैं, जबकि हमें सर्वदा सिद्धान्तों का रक्षण और अनुसरण करना चाहिए। जब एक विशिष्ट केन्द्र को किसी अवसर विशेष पर कोई कार्य करना होता है, तो भक्तगण आकर हमें सलाह देते हैं। यहाँ तक कि वे हम पर दबाव भी डालते हैं। परन्तु हमें सावधान रहना पड़ता है। स्थानीय शाखा के संन्यासी कहते हैं—"हमें मुख्यालय को लिखना होगा और वहाँ से अनुमति आने में देरी हो सकती है, अथवा वे मना भी कर सकते हैं" बहुत से भक्तों का कहना होता है, ",क्यों? इसमें गलत क्या है? आप वैतनिक कर्मचारी ले लीजिए न!" यहाँ पर केवल नीति का ही प्रश्न नहीं है, वरन् सिद्धान्त का, कर्म की गुणवत्ता का प्रश्न है। उसे कर्मयोगी होना चाहिए, शुद्ध होना चाहिए, सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए। कार्य की गुणवत्ता उसके परिमाण से अधिक महत्त्वपूर्ण है और गुणवत्ता की कीमत पर कोई भी विस्तार नहीं होना चाहिए। हमारा यही सिद्धान्त है। जहाँ तक महिलाओं का प्रश्न है, अब उनके लिए रामकृष्ण मिशन की एक सह-संस्था है, जो अधिकांशत: महिलाओं के बीच कार्यरत है। तथापि समूचा रामकृष्ण संघ भी महिला सेविकाओं की सहायता से महिलाओं के लिए काफी कार्य कर रहा है। यदि आप चाहते हैं कि हम इस दिशा में और भी कार्य करें तथा और भी महिला आश्रम स्थापित करें, तो यह हमारे लिए सम्भव नहीं। आपको पता होगा कि पाश्चात्य देशों में रामकृष्ण संघ के द्वारा संन्यासियों के लिए दो आश्रम चलाये जा रहे हैं। हम इनकी संख्या में वृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि इनके संचालन, पथप्रदर्शन, दीक्षादान जैसे कार्यों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए उपयुक्त लोगों का मिलना कठिन है। जहाँ तक कृषि के क्षेत्र में कार्य बढ़ाने का प्रश्न है, यहाँ भी आप पायेंगे कि अनेक संन्यासी स्थायी रूप से गाँवों में रहकर कृषि का कार्य नहीं चला सकते। हमें अनुभव, कुशलता तथा तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है। इस कार्य में हमें अनुभव सम्पन्न एवं योग्य लोगों पर निर्भर करना होगा। कुछ कार्यों में आप बहुधा हमें ज्यादा अन्दर जाते न देखेंगे, यद्यपि गाँव का काम अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम इसे पसन्द करते हैं और करना भी चाहते हैं, पर इसके लिए अधिक संख्या में उपयुक्त संन्यासी उपलब्ध नहीं हैं। हमें काफी सोच-समझकर एवं सावधानी पूर्वक चलना होगा। इस प्रसंग में अब मैं अपने कर्मियों के प्रशिक्षण तथा अनुशासन की समस्या पर आता हूँ। हम वैतनिक कर्मचारी लेकर काम जरूर चला सकते हैं, पर कार्य का स्तर अच्छा न होगा। हड़ताल तथा अन्य कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी। वैतनिक कर्मचारी अचानक ही और भी अधिक पारिश्रमिक की माँग करते हुए कार्य बन्द कर दे सकते हैं। तब हमारे कार्य की क्या हालत होगी? रामकृष्ण मिशन अपने वैतनिक कर्मचारियों के लिए जो भी करना सम्भव हो वह कर ही रहा है। हमसे जितना हो सकता है, करते हैं, पर उसके परे नहीं कर सकते। फिर भी वैतनिक कर्मचारी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और अधिक पाने का न्यायसंगत ढंग से प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार समस्या बनी रह जाती है। अत: हमें और भी संन्यासी कर्मी तथा और भी निष्ठावान् भक्त कर्मी चाहिए। जब तक वे हमें प्राप्त नहीं होते तब तक विस्तार-कार्य में हमें अत्यन्त सावधानी पूर्वक तथा फूँक-फूँकर कदम रखना होगा।

अब मैं अपने कथन का उपसंहार करूँगा। जैसे अग्नि

में कुछ भी डालने पर वह राख में परिणत हो जाता है, पर अग्नि वैसी ही शुद्ध, तेजस्वी एवं अप्रभावित बनी रहती है, उसी प्रकार हमारा यह शक्तिशाली संघ अपनी आध्यात्मिकता, पवित्रता, विद्वत्ता, निःस्वार्थपरता, धैर्य अध्यवसाय तथा तथा दहकती अग्नि के अन्य गुणों से युक्त होने के कारण तेजस्वी, निष्कलंक तथा अप्रभावित बना रहेगा। स्वामीजी का कहना था कि ये समस्त समस्याएँ हमारी अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए हैं। अतः स्वागत है और भी समस्याओं का। आइए, हम उनका सामना करें, उन पर विजय-लाभ करें तथा एक संगठन के रूप में और भी सक्षम होकर और भी अच्छी तरह से उनका समाधान करें। और इसमें भक्तगण किस प्रकार सहायक होंगे? बहुधा हम उनसे सुनते हैं—"हम तो संसारी लोग हैं, हम भला क्या कर सकते हैं।" यह हमारे लिए कोई नयी जानकारी नहीं। जैसा कि इसी सभा में एक स्वामीजी ने कहा कि static piety (गतिहीन धर्मनिष्ठा) नहीं, वरन् dynamic spriritualıty (गतिशील आध्यात्मिकता) ही इसमें सहायक हो सकती है। सुयोग्य लोग संन्यासी होने के लिए संघ में प्रवेश लें। और भक्तों के कर्तव्य के बारे में मेरा कहना है—"यह न पूछिए कि संघ आपके लिए क्या कर सकता है, बल्कि यह पूछिए कि आप संघ के लिए क्या कर सकते हैं।"

*

रामकृष्ण भावान्दोलन

श्रीमत् स्वामी लोकेश्वरानन्द

[श्रीमत् स्वामी लोकेश्वरानन्दजी महाराज, रामकृष्ण मिशन इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता के प्रधान हैं। उनके द्वारा इस विशेषांक के लिए भेजे गये अंग्रेजी लेख 'द रामकृष्ण मुवमेन्ट' का यह हिन्दी रूपान्तर है। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ।]

रस्किन ने कभी कहा था, 'एक सेना की अपेक्षा एक भाव कहीं अधिक शक्तिशाली है।' इस कथन में निश्चय ही बहुत सच्चाई होगी, अन्यथा श्रीरामकृष्ण का अपने समकालीन व्यक्तियों पर पड़े प्रभाव की व्याख्या करना कठिन है। वे एक विनम्र व्यक्ति थे जिनके पास उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल के परिष्कृत, अंग्रेजी-शिक्षा-प्राप्त बुद्धिजीवियों की सराहना पाने योग्य कुछ भी नहीं था, तथापि उनमें से सर्वोत्तम व्यक्तियों को हम उनके सम्मोहन में पड़े हुए पाते हैं। सब से पहले प्रिन्सिपल हेस्टी का उदाहरण लें: पश्चिमी परम्पराओं में गहराई से जड़ जमाए हुए और पाश्चात्य दर्शन के उत्कृष्ट शिक्षक, एक ईसाई मिशनरी, वे अपने समय के बुद्धिजीवियों में श्रीरामकृष्ण से मिलने वाले प्रथम व्यक्ति थे। वे उनके व्यक्तित्व से इतने सम्मोहित थे कि स्कॉटिश चर्च कॉलेज में अपने छात्रों को उनका एवं उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों का उल्लेख करने से अपने को वे रोक नहीं सके। और यह भाग्य की कैसी रहस्यमय विशिष्टता थी कि उन्हीं छात्रों में नरेन्द्रनाथ दत्त थे, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के रूप में विख्यात हुए तथा जो श्रीरामकृष्ण के मुख्य शिष्य थे। केशव सेन इस प्रसंग में दूसरे उदाहरण हैं। वे स्वयं ही एक बहुत बड़े धार्मिक नेता थे, वस्तुतः इतने बड़े कि जब वे व्याख्यान-यात्रा के क्रम में इंग्लैण्ड गये तब इंग्लैण्ड के समाचार-पत्रों ने 'पूरब के द्वितीय ईसा मसीह' कह कर उनका स्वागत किया। यहाँ तक कि

राजसत्ता भी उन्हें महान् आदर की दृष्टि से देखती थी, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि महारानी विक्टोरिया ने स्वयं उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया था और एक बार उनका भाषण सुनने गयी थीं। यह बड़े कौतूहल की बात है कि ये महान् व्यक्ति भी श्रीरामकृष्ण से अपनी प्रथम भेंट के समय से ही उनकी ओर आकृष्ट हो गये और अपने जीवन के अंतिम दिन तक उनके प्रबल प्रशंसक बने रहे। वे हिन्दू की अपेक्षा ईसाई अधिक थे, तथापि यह वे ही थे जिन्होंने प्रतिमापूजक काली के उपासक श्रीरामकृष्ण का, अपनी पत्रिकाओं में उनके विषय में लेख लिखकर, कलकत्ता के बुद्धिजीवियों को परिचय दिया। प्रसंगवश, इस पर ध्यान देना रोचक होगा कि यद्यपि वे स्वयं एक बड़े वक्ता थे, तथापि श्रीरामकृष्ण के सम्मुख वे बहुत संकोची बने रहते थे और जब एक बार श्रीरामकृष्ण ने उन्हें भाषण देने के लिए जोर डाला तब उन्होंने यह कह कर क्षमा-याचना कर ली कि उनके सामने भाषण करना सूरज के सामने दीप जलाने के समान होगा। सारे उपलब्ध अभिलेख बताते हैं कि श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आने के बाद किस प्रकार उनके धार्मिक विचारों में अच्छा-खासा परिवर्तन हो गया, किस प्रकार धार्मिक विषयों के प्रति उनका कठोर रवैया विनम्रता के भाव में बदल गया और किस प्रकार हिन्दू धर्म में (या इस विषय में, अन्य धर्मों में) प्रचलित अनेक प्रथाओं को, जिन्हें तब तक उन्होंने अस्वीकृत कर दिया था, सहानुभूति की दृष्टि से देखना उनके लिए संभव हो सका।

श्रीरामकृष्ण को अर्पित एक विशिष्ट प्रशस्ति में, हमलोग उस समय की अंग्रेजी शिक्षा की एक दूसरी सुविज्ञ उपज तथा एक प्रभावशाली धार्मिक नेता भी, प्रताप चन्द्र मजुमदार को यह स्वयं से पूछते हुए पाते हैं : "मैं, जिसने डिजरेली और फॉसेट, स्टेनली और मैक्स-मूलर तथा झुण्ड के झुण्ड यूरोपीय विद्वानों और धर्मज्ञों को सुना है, उनकी (श्रीरामकृष्ण की) बातों को ध्यान से सुनने के लिए क्यों घंटों उनके निकट बैठा करूँ ?'

इस प्रकार हमलोग विस्मय पूर्वक श्रीरामकृष्ण को, अपने समय के उत्कृष्ट लोगों को— ऐसे लोगों को जो कई अर्थों में उनके विपरीत थे— अपनी ओर खींचते हुए देखते हैं। हमलोग किस प्रकार इसकी व्याख्या करेंगे ? इसकी एकमात्र संभव व्याख्या स्वयं श्रीरामकृष्ण— श्रीरामकृष्ण : व्यक्ति और उनके संदेश - हैं। उनमें कुछ ऐसा था जिसका लोगों में अत्यन्त सम्मोहक आकर्षण था। यह 'कुछ' वे भाव थे जिनका उन्होंने उपदेश दिया, वे भाव जिनका उन्होंने स्वयं अपने जीवन में सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया। लोग उन भावों के लिए पिपासित थे और जब उन्हें उन भावों की सूचना मिली और इससे भी बढ़कर जब उन लोगों ने उनमें उन भावों का दृष्टान्त देखा तब उस व्यक्ति के प्रति, जो उनकी पश्चिमी अभिरुचि के अनुसार, मात्र एक गँवार था, आरंभ में अपनी नापसंदगी के बावजूद, वे उनकी ओर अनिवार्य रूप से एकत्र होने लगे।

वे कौन से भाव थे ? सर्वप्रथम, श्रीरामकृष्ण ने सिखाया कि ईश्वर के विषय में केवल तर्क-वितर्क किसी लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर सकेगा। मनुष्य को केवल अपने सारे प्रयत्न ईश्वरानुभूति के लिए केन्द्रित करना चाहिए। यह उपदेश उन्होंने उस समय दिया जब विद्वद्जन यह निर्णय करने की चेष्टा में व्यस्त थे कि ईश्वर कैसा है— क्या वह एक तत्व है या एक वस्तु है ? क्या ईश्वर दयालु और न्यायशील है ? यदि वह ऐसा है तब लोग अक्सर बिना अपने किसी दोष के इतने अधिक कष्ट क्यों भोगते हैं ? आदि-आदि। लोग विभिन्न शास्त्रों और अधिकारी पुरुषों को उद्धृत करते और काफी उतेजना के साथ तर्क किया करते। इन शाब्दिक संघर्षों, जो प्रायः अत्यधिक उग्रता की ओर ले जाते, के बीच श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिया कि ईश्वर का वर्णन करने के ये सारे प्रयास निरर्थक हैं। यह नमक की गुड़िया के द्वारा समुद्र की गहराई नापने के प्रयास के समान है। क्या ससीम असीम के विषय में कुछ कह सकता है ? जो ईश्वर के विषय में जानने का ढोंग रचते हैं, वे वस्तुतः उनके विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं। वे प्रायः ईश्वर के सम्बंध में

लापरवाही से बोलते हैं, किन्तु यह तथ्य कि वे ऐसा करते हैं, स्पष्ट रूप से बताता है कि वे लोग ईश्वर के बारे में पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। या तो वे आत्म-विभ्रम से पीड़ित हैं या वे केवल ढोंगी हैं। ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति अपनी अनुभूति से इतना अधिक अभिभूत हो जाता है कि उसे इस विषय पर किसी प्रकार की चर्चा करना असंभव लगता है। दृष्टान्त के रूप में श्रीरामकृष्ण खाली घड़े में पानी भरने की क्रिया का उल्लेख किया करते थे। जब तक घड़ा भर नहीं जाता, तब तक उससे गड़गड़ाहट की आवाज निकलती रहती है, लेकिन जब वह पूरी तरह भर जाता है, तब वह मौन हो जाता है। वे मधुमक्खी का भी उदाहरण प्रस्तुत किया करते थे जो तबतक गुनगुनाती रहती रहती है जब तक उसे बैठने के लिए कोई पुष्प नहीं मिल जाता। जब उसे कोई फूल मिल जाता है और वह मधुपान करने लगती है तब वह मौन हो जाती है। उन्होंने कहा कि ईश्वर को उपलब्ध कर लेने वाले व्यक्ति के के साथ ऐसा ही होगा।

वे यह भी कहा करते थे कि जब किसी को ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाती है, तभी वह जानता है कि ईश्वर कैसे हैं, उनके सामने रहने का क्या तात्पर्य होता है, या किसी के स्वभाव में कैसा रूपान्तरण हो जाता है। प्रत्यक्ष अनुभूति के अभाव में कोई व्यक्ति केवल अनुमान कर सकता है, और चूँकि ईश्वर अनुपम हैं, इसलिए उनके सम्बन्ध में किया गया कोई अनुमान निश्चय ही बिलकुल गलत और असंगत प्रमाणित होगा। इसी से वे इस बात पर जोर दिया करते थे कि ईश्वर की खोज करनेवालों को उनके विषय में सिर्फ बातें करने में समय नष्ट करने की अपेक्षा ईश्वर के अन्वेषण में अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

ईश्वर की उपलब्धि ही जीवन का परम लक्ष्य है, इसकी घोषणा करने के बाद श्रीरामकृष्ण ने कहा कि अपनी सामर्थ्य में जो कुछ भी साधन हैं उनके द्वारा मनुष्य को उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। साधनों के विषय में झगड़ना गलत है, क्योंकि हमलोग पृष्ठभूमियों, रुचियों और क्षमताओं में एक दूसरे से भिन्न हैं, इसे देखते हुए एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के साधनों में भिन्नता का होना अनिवार्य है। उनके अनुसार निष्कपटता ही महत्वपूर्ण है। जब मनुष्य निष्कपट होता है और ईश्वर को मन लगाकर ढूँढ़ता है तब वह भले ही आरम्भ करने के लिए गलत पथ का चुनावकर ले, अंत में उसे सफलता मिलेगी ही। निष्कपट होने पर, भले ही दूसरों की सहायता से ही सही, वह शीघ्र ही सही मार्ग पा लेगा और गंभीरता पूर्वक उत्साही होने पर, आरंभ में गलत मार्ग चुनने के कारण हुई क्षति की पूर्ति करते हुए, वह शीघ्र प्रगति करेगा। श्रीरामकृष्ण के अनुसार, दूसरों के द्वारा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है, क्योंकि जो एक के लिए अच्छा है, वह दूसरे के लिए अच्छा नहीं भी हो सकता है। धर्म अपने आप में दुःसाध्य है, किन्तु जो इसे और भी अधिक दुःसाध्य बना देता है वह यह है कि अनेक लोग वास्तविक रूप में जितना इसके सम्बन्ध में जानते हैं उससे अधिक जानने का दावा करते हैं, और अपने विचारों को दूसरों पर लादने का भी प्रयास करते हैं। जब एक अन्धा दूसरे अन्धे को रास्ता दिखाने लगता है तब भयंकर दुर्घटना हो जाती है। इसी प्रकार, धर्म के क्षेत्र में भी होता है। ऐसे व्यक्ति से, जो ईश्वर के बारे में स्वयं कुछ नहीं जानता, किन्तु दूसरों को उपदेश देने की कोशिश करता है, कुछ लाभ नहीं हो सकता। ऐसी चेतावनी देना उनके लिए आवश्यक था, क्योंकि उन दिनों, जैसा कि संभवतः हमेशा होता है, बहुत अधिक लोग स्वयं इस विषय में कुछ भी जाने बिना दूसरों को धर्म का उपदेश देने की चेष्टा कर रहे थे। कई लोग धर्म और पांडित्य को एक समान मानते हैं, किन्तु धर्म 'अनुभूति' है—ईश्वरत्व की सीधी और प्रत्यक्ष अनुभूति।

दूसरा विचार, जिसका श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिया था, वह यह है कि किसी के लिए भी यह दावा करना गलत है कि जिस धर्म में वह विश्वास करता है, वही एक मात्र सही धर्म है और अन्य सभी धर्म झूठे हैं। उनके

अनुसार, सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाने वाले अनेकानेक मार्ग हैं, और ईश्वर का अन्वेषी उनमें से किसी एक को, जिसे वह सर्वोत्तम समझता है, चुन सकता है। उन्होंने इस विचार पर भी जोर दिया कि केवल सतह पर धर्म भिन्न दीखते हैं, किन्तु सबके भीतर एक समान सत्य है, जो उनकी सारवस्तु है। यह सारवस्तु ही महत्व रखती है न कि वे अभिवृद्धियाँ या उपचय जो उनके ऊपर एकत्र हो गये हों। श्रीरामकृष्ण ने लोगों से अन्य सभी वस्तुओं की उपेक्षा कर इसी सारतत्व पर अपना चित्त स्थिर करने को कहा।

दूसरा महत्वपूर्ण भाव जिसका श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिया, वह यह था कि मनुष्य को अपने संगी साथियों और अपने समान मनुष्यों के साथ वैसा ही आदर एवं स्नेह के साथ व्यवहार करना चाहिए जैसा आदमी ईश्वर के साथ व्यवहार करता है, क्योंकि, श्रीरामकृष्ण के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व है, चाहे वह निम्न हो या उच्च। अपने संगियों के प्रति आदर तथा विनम्रतापूर्वक उनकी सेवा करना दूसरों के साथ उनके व्यवहार की आधारशिला हो गये।

श्रीरामकृष्ण ने जो उपदेश दिया वह सरल और प्रभावशाली था, किन्तु यह उनका व्यक्तित्व था जिसने उनके भावों को सवलता प्रदान की थी। अपने उपदेशों के वे सर्वोत्तम उदाहरण थे और वे अपने उपदेशों से कहीं अधिक थे। लोग उनके वचनों को सुनना पसन्द करते थे, क्योंकि वे उस अधिकार से वोलते थे जो व्यक्तिगत अनुभूति से प्राप्त होता है। यदि उन्होंने जो कुछ कहा वह सरल और सुस्पष्ट था, तो इसका कारण यह था कि उन्होंने अन्य लोगों की भाँति अनुमान नहीं लगाया, अथवा सुनी-सुनायी सूचनाओं पर निर्भर नहीं किया। उनकी उपस्थिति में रहना अपने आप में एक आध्यात्मिक अनुभव था। श्रीरामकृष्ण के विषय में कुछ भी पढ़ना ईश्वर के साथ चलने के समान है। महात्मा गाँधी इस अनुभव का वर्णन 'ईश्वर को आमने-सामने देखने' के समान करते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि सभी मतों के लोग उनके पास इकट्ठे हो गये—हिन्दू, मुसलमान, ... आदि। उन्होंने पांडित्यपूर्ण ग्रंथों में ईश्वर के सम्बन्ध ... उठाये गये जटिल प्रश्न पाये, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने ... सदा सही उत्तर दिये। उनके उत्तरों से लोग उनके ... की गहराई पर आश्चर्य से भर उठते थे। उन्हें ... विश्वास करना कठिन हो जाता था कि श्रीरामकृष्ण ... विद्यालय की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त थी और न तो अधिक पुस्तकें ही पढ़ी थीं। यह एक मनोरंजक बात है कि वे किसी का खण्डन करते प्रतीत नहीं होते थे, बल्कि लोगों को केवल स्मरण दिलाते कि वास्तविक लक्ष्य, वे जहाँ हैं उससे और आगे है और उन्हें प्र... आगे बढ़ते जाना चाहिए। दूसरी जगह, भले ही यह मात्र खण्डन-मण्डन हो, लेकिन उनके साथ धर्म "जीता-जागता', 'अस्तिव और संभावना' था। इसीलिए सभी सम्प्रदायों के लोग उनके पास प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन के लिए इकट्ठे हो गये थे। हिन्दू सोचते थे कि अब तक धरती पर विचरण करने वालों में वे सर्वोत्तम हिन्दू हैं। अधिक विस्मय की बात यह है कि मुसलमान, ईसाई तथा अन्य धार्मिक समूहों के सदस्यों ने भी सोचा कि वे (श्रीरामकृष्ण) उनमें से ही एक हैं—ऐसे एक, जो उनके सर्वोत्तम आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस सम्बन्ध में, वस्तुतः श्रीरामकृष्ण एक विलक्षण व्यक्ति थे। जैसा कि श्री अरविन्द ने कहा था, 'श्रीरामकृष्ण अकेले अपने में सब के संश्लेषण का प्रतिनिधित्व करते हैं।' इस प्रकार श्रीरामकृष्ण अपने ही जीवन-काल में एक नये भाव-आन्दोलन के, जिसने धर्म में परस्पर विरोधी विचारों का संश्लेषण किया था, केन्द्र विन्दु हो गये तथा उन्होंने विभिन्न धार्मिक परम्पराओं को पुनर्जीवित भी किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उन्होंने स्वयं ही रामकृष्ण-भावआन्दोलन को प्रवर्तित किया।

श्रीरामकृष्ण प्रशंसा की नहीं, बल्कि उन मनुष्यों की खोज कर रहे थे, जो उनके संदेशों को समझ पाते तथा उन संदेशों के अनुसार आचरण करने का प्रयास करते। भावी पीढ़ियों के सौभाग्य से ऐसे लोग आये।

...जो बाद में प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द हुए, उन ...लोगों में शीर्षस्थ थे। वे लोग मुश्किल से एक दर्जन या ...सी के लगभग थे, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने पास ...ये विशाल जन-समूह में से चुना था। उन्हें चुन लेने ...बाद उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ उन्हें प्रशिक्षित ...या ताकि वे उन महान भावों को आत्मसात् कर सकें ...नका श्रीरामकृष्ण प्रतिनिधित्व करते थे। क्या उन्होंने ...कल्पना की थी कि किसी दिन उन भावों का विश्व ...धार्मिक विचार-धारा पर एक महान प्रभाव पड़ेगा? ...भवतः उन्होंने की थी। उनके 'वचनामृत' में उनकी ...ताएँ जिस प्रकार लिपिबद्ध की गयी हैं, उनमें ऐसी ...भावना के बारे में संकेत बिखरे पड़े हैं। जिन युवजनों ...उन्होंने अपने भावों के संरक्षण एवं प्रसारण के लिए ...ना, वे ऊपरी तौर से अति साधारण थे, किन्तु उनमें ...नका (श्रीरामकृष्ण का) महाविश्वास था और बाद की ...टनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि अपात्र या आयोग्य ...क्तियों पर उनका विश्वास नहीं हुआ था। उनकी ...हासमाधि के सात वर्षों के अन्दर ही, उनका नाम सारे ...श्व में विख्यात हो गया—सर्वप्रथम उनके शिष्य स्वामी ...विवेकानन्द के द्वारा और इसके बाद प्रो० मैक्समूलर के ...द्वारा। जैसा कि हमलोग जानते हैं, स्वामी विवेकानन्द ...ने सन् १८९३ ई० में शिकागो में आयोजित धर्म-संसद ...के प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका में सनसनी फैला दी। उन्होंने सारे अमेरिका में शब्दशः ऐसा तूफान मचा दिया कि उस देश के समाचार पत्रों ने उन्हें 'तूफानी हिन्दू' की उपाधि दे दी। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के भावों का प्रचार पहले अमेरिका में और बाद में इंगलैण्ड तथा यूरोप में किया। गिरजाघर, विश्वविद्यालय तथा सभी प्रकार की विद्वद् समितियों ने उनके लिए अपने द्वार खोल दिये और उनके श्रोताओं के समक्ष यदि वे व्याख्यान देना चाहते तो इससे वे सब अपने को सम्मानित हुआ-सा अनुभव करते। वे यदा-कदा ही अपने गुरु के नाम का उल्लेख करते, फिर भी, श्रीरामकृष्ण ज्ञात हो गये। किन्तु, यदि स्वामी विवेकानन्द अपनी प्रेरणा के स्रोत को प्रकट करने के अनिच्छुक थे, तो प्रो० मैक्समूलर को ऐसी कोई बाधा नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के जीवन एवं उपदेशों पर विचार करते हुए उन्होंने 'नाइनटीन्थ सेन्चुरी' नामक पत्रिका में 'ए रीयल महात्मा' (एक वास्तविक महात्मा) शीर्षक एक निबंध लिखा। इस महान् विद्वान् की लेखनी के द्वारा लिखित उस लेख ने स्वभावतः सम्पूर्ण शैक्षिक जगत्—पूर्वी और पश्चिमी—का ध्यान आकृष्ट कर लिया। रातोंरात श्रीरामकृष्ण विद्वानों के बीच अध्ययन एवं अनुसंधान के विषय हो गये। लोगों ने स्वीकार कर लिया कि धर्म के आकाश में एक महान् नक्षत्र का उदय हो गया है जिसका ध्यानपूर्वक अवलोकन करने की आवश्यकता है।

इसी बीच, पश्चिमी देशों में स्वामी विवेकानन्द की सफलता के फलस्वरूप भारत में महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। पहली बार, भारत अपने दार्शनिक चिन्तनों की महान् सम्पदा के प्रति जागरूक हुआ। उसने अनुभव किया कि उसे अपने प्रति लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। उसके पास भले ही पश्चिमी देशों की भाँति सैनिक और आर्थिक शक्ति नहीं हो, किन्तु उसके पास बौद्धिक एवं सांस्कृतिक शक्ति है, जो अपनी गहराई और उच्चता में विश्व में अद्वितीय है। यह अन्वेषण भारत की पतनशील चेतना के लिए एक एक टॉनिक (शक्तिवर्धक) के समान था। फिर देश में उत्साह का एक ज्वार उठने लगा जो अनुपात में अपूर्व था। यह भारत में वास्तविक पुनर्जागरण का प्रारंभ था जिसे गाँधी, टैगोर, अरविन्द और नेहरू सरीखे लोगों ने सुदृढ़ किया और सफल बनाया।

भारत लौटने पर स्वामी विवेकानन्द ने जो सबसे पहला कार्य किया वह था रामकृष्ण मिशन की स्थापना करना। यह एक ऐसा संगठन है जिसका विशेष अभिप्राय श्रीरामकृष्ण के भावों का अध्ययन एवं आचरण करना है। सन् १८९७ ई० में जब इसकी स्थापना हुई तब इस में कुल एक दर्जन या इसी के लगभग संन्यासी थे और वास्तव में इसे कोई सम्पत्ति नहीं थी। अभी भी ईसाई संगठनों की तुलना में यह कम है, किन्तु यह एक ऐसा नाम

है जिसे सारे भारत में और बाहर भी आदर प्राप्त है। लोकोपकारी कार्यों या श्रीरामकृष्ण के संदेशों (जो भारत के संदेश भी हैं) के प्रचार में निरत इसके संन्यासी सारे संसार में फैले हुए हैं। भारत के बाहर जहाँ वे कार्य कर रहे हैं, उनमें कुछ देशों के नाम ये हैं: इंग्लैण्ड, फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड, अमेरिका, मलयेशिया, फिजी, श्रीलंका, रोडेशिया और बंगलादेश। कई अन्य देश (अनेक देशों में एक का नाम जापान है) उन्हें अपने यहाँ चाहते हैं, किन्तु भारत में इतने अधिक कार्य करने हैं कि यद्यपि जहाँ तक संभव हो उतने अधिक देशों में वे फैल जाना चाहेंगे, फिर भी मिशन को कई देशों को प्रतीक्षासूची (Waiting List) में रखना पड़ रहा है। कौतूहल की बात यह है कि बुलावा सदैव उन्हीं देशों से आता है– ऐसा नहीं है कि उन देशों में संन्यासीगण अपने आप जाते हैं। इस से भी बढ़कर यह बात है कि जब तक वे उन देशों में कार्य करते हैं, तब तक उनका भरण-पोषण वहाँ के लोग ही करते हैं। उनके कार्य में भारतीय मुद्रा के खर्च होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

तथ्यतः ये संन्यासी भारत या विदेशों में क्या करते हैं? यह तुरन्त स्पष्ट कर देना चाहिए कि रामकृष्ण मिशन धर्म-परिवर्तन—सामान्य बोल चाल की भाषा में जिस अर्थ में यह शब्द ग्रहण किया जाता है—में विश्वास नहीं करता। यदि कुछ भी, ये संन्यासी बनाने की कोशिश करते हैं तो वह है 'एक हिन्दू को और अधिक श्रेष्ठतर हिन्दू; एक मुसलमान को और अधिक बेहतर मुसलमान, एक ईसाई को और अधिक अच्छा ईसाई' आदि बनाने की कोशिश। दूसरे शब्दों में, वे लोगों से धर्म के मूल में जाने को कहते हैं, जो जिस किसी भी प्रकार से ईश्वर तक पहुँचने की कोशिश करना है, न कि उसके सम्बन्ध में केवल गप लड़ाना। वे विभिन्न संत-पैगम्बरों और विभिन्न धर्मशास्त्रों को यह दिखाने के लिए उद्धृत करते हैं कि किस प्रकार वे सार रूप में एक ही वस्तु का उपदेश देते हैं। उनकी भाषा में भिन्नता होती है, किन्तु उनका तात्पर्य एक समान ही होता है। वे किसी मत को बदलना नहीं चाहते, बल्कि इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि एक मत और मत के बीच काफी अधिक समानता है। धर्म के विषयों में उनका दृष्टिकोण आदर और सहानुभूति का इस दृष्टिकोण के कारण, गैर हिन्दू भी उनके साहचर्य अपनापन का अनुभव करते हैं, वस्तुतः वे इन संन्यासि को चाहते हैं तथा उनकी सेवा के लिए उन्हें प्रायः आ त्रित किया करते हैं। आजकल ईसाई जगत में एकता एक सक्रिय शक्ति बन गया है। यह कभी नहीं भूल चाहिए कि इसे पोप जॉन द्वारा औपचारिक आशी देने के काफी पहले, श्रीरामकृष्ण ने इसका उपदेश दि और इसे आचरित किया था। यद्यपि साथ ही उन सार्वभौमिकतावाद या ऐक्यवाद अधिक व्यापक था क्योंकि इसने केवल कुछ सम्प्रदायों को ही नहीं बल्कि सा धर्मों के सभी सम्प्रदायों को अंगीकार किया।

आज रामकृष्ण-भावान्दोलन इस देश में और बाह के देशों में भी शान्ति और सुख के लिए एक महान शक्ति बन गया है। भारत में जहाँ विभिन्न धार्मिक सम्प्रदा और समुदाय रहते हैं, एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता औ भ्रातृत्व का भाव बहुत प्रासंगिक हो गया है। दूसरा कारण, जो इसकी लोकप्रियता में बहुत अधिक योगदा करता है, वह है जीवन की प्रत्येक मार्मिक समस्या के प्रति इसके द्वारा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का प्रयोग करना। श्रीरामकृष्ण से प्रभावित लोग धर्म को एक प्रकार का विज्ञान मानते हैं जो अध्ययन एवं अन्वेषण के लिए सर्वथा मुक्त है। वे यह नहीं मानते कि धार्मिक सत्यों को विश्वास के बल पर स्वीकार करना होगा; बल्कि वे घोषणा करते हैं कि किसी चीज को अंतिम रूप से तब तक स्वीकार करने की जरूरत नहीं है जब तक उसका परीक्षण नहीं हो जाता और उसकी सत्यता नहीं प्रमाणित हो जाती। व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष अनुभूति ही धर्म को स्वीकार करने योग्य एकमात्र प्रमाण है।

यह तथ्य भी कि यह भावान्दोलन ईश्वरानुभूति के साधन के रूप में निःस्वार्थ सेवा को बड़ा महत्व देता है, अनेक लोगों को आकर्षित करता है। जाति या

सम्प्रदाय या भाषा का लिहाज किए बिना इसके द्वारा की जाने वाली सेवा सब के लिए खुली हुई है। न केवल रामकृष्ण मिशन, बल्कि सैकड़ों संस्थाएँ जो आज सम्पूर्ण देश में उठ खड़ी हुई हैं, इस प्रकार की सेवा कर रही हैं। बुद्ध के काल से ही भारत में यह लगभग अतुलनीय है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से अधिकांश श्रीरामकृष्ण के नाम से जुड़ी हुई हैं और उनसे प्रेरणा ग्रहण करती हैं।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, रामकृष्ण भाव-आन्दोलन और अधिक शक्तिशाली होता जाता है। सारे देश में लोग चाहते हैं कि मिशन और अधिक शाखा—केन्द्र—स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, अनाथालय आदि-आदि—खोले, क्योंकि वे जानते हैं कि जिस प्रकार की सेवा वे मिशन से पायेंगे, वह दूसरी जगहों से पाने वाली सेवा से अधिक अच्छी होगी। प्राय: सदैव उनके अनुरोध मुद्रा, भूमि और भवनों के प्रस्ताव से संलग्न रहते हैं, किन्तु मिशन सावधानी से आगे बढ़ता है और प्रचुरता के उद्भव को तबतक टालता रहता है जब तक कि उसके पक्ष में बाध्य कर देने वाला कारण नहीं होता। इस तथ्य के अलावे कि इसे कार्यकर्ताओं (manpower) का अभाव है, यह इस बात को प्रश्रय देता है कि लोग स्वयं नि:स्वार्थ सेवा की भावना से भरकर ऐसी संस्थाओं की स्थापना के लिए आगे आवें। प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि यह भावना तेजी से फैलती जा रही है।

ज्यों-ज्यों भाव-आन्दोलन फैलता जाता है, धर्म के सामान्य लोगों की प्रवृत्ति भी बदल रही है। पहले धर्म को धार्मिक अनुष्ठान के बराबर माना जाता था, लेकिन अब लोग अनुभव करते हैं कि धर्म सार रूप में 'अस्तित्व और संभावना' का विज्ञान है, यह ऐसी कोई चीज है जिसका मनुष्य की आन्तरिक-प्रकृति से सम्बन्ध है। प्रार्थना की आदत अच्छी है, किन्तु यदि इसके साथ-साथ मनुष्य की प्रकृति में तदनुरूप उन्नति नहीं होती, तब इसका कोई अधिक मूल्य नहीं है। दूसरा परिवर्तन जो आजकल स्पष्ट दिखाई देता है, वह है—अपने धर्म के अलावे दूसरों के धर्म के प्रति आदर का भाव। पहले दूसरों के धर्म के प्रति लोगों की मनोवृत्ति में अधिक अक्खड़पन था, किन्तु अब यदि श्रद्धा नहीं भी हो, तो विनम्रता और पूछताछ का भाव है।

रामकृष्ण-भावान्दोलन की शक्ति रुपये-पैसों या मनुष्यों या संगठन में नहीं, बल्कि उन भावों में है जिन्हें प्रस्तुत करने का यह प्रयास करता है। ये भाव तेजी से फैलते जा रहे हैं, और जहाँ कहीं भी ये फैल रहे हैं, वहाँ एक गहरा प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। चुपचाप किन्तु अनिवार्य रूप से, ये उन लोगों के मानस को बदल रहे हैं जो इनके प्रभाव में आते हैं। ये उनलोगों के व्यक्तित्वों के रूपान्तरण में उत्प्रेरक कारण की भाँति कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण जो भाव दे गये, वे किसी दिशा से संरक्षण के कारण नहीं बल्कि, अपनी अन्तर्निहित शक्ति के कारण, अब संसार के सुदूर कोनों में पहुँच रहे हैं। जिस दिन उनका आविर्भाव हुआ उसी दिन से मनुष्य के धार्मिक दृष्टिकोण में एक नया मोड़ आया है। यह वह मोड़ है जो एकता, शान्ति और धन्यता की ओर जाता है।

श्रीरामकृष्ण संघ-आदर्श एवं वैशिष्टय

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
वाराणसी।

विश्वव्यापी आध्यात्मिक एवं स्वयंसेवी संस्था रामकृष्ण मिशन का जिन लोगों ने केवल नाम भर सुना है, तथा उससे घनिष्ठ रूप से परिचित न होकर जिन्होंने केवल उसकी कुछ गतिविधियों को ही देखा है, वे सामान्यत: इसे सर्वत्यागी संन्यासियों द्वारा परिचालित एक समाजसेवी संस्था ही समझते हैं। इसके विपरीत रामकृष्ण मिशन के सभी वरिष्ठ संन्यासी जनसाधारण को यह बताने का हर संभव प्रयत्न करते नहीं चूकते कि यह एक समाज कल्याणकारी संस्था मात्र न होकर एक आध्यात्मिक संघ है। अत: लोगों के मन में इस संघ के आदर्श, स्वरूप एवं कार्यप्रणाली के विषय में प्रश्न उत्पन्न हो सकता है। प्रस्तुत लेख में रामकृष्ण मिशन के आदर्श एवं आध्यात्मिक स्वरूप की स्पष्ट धारणा प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

संघ के आदर्श—श्रीरामकृष्ण :

सामाजिक संस्थाओं की स्थापना एक अप्राप्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए की जाती है, लेकिन आध्यात्मिक संस्थाओं की प्रतिष्ठा एक ऐसे लक्ष्य के अनुकरण के लिए की जाती है जो किसी व्यक्ति विशेष के जीवन में चरम उत्कर्ष को प्राप्त हो चुका होता है, तथा जिसकी उपलब्धि एवं पूर्ण अभिव्यक्ति पहले ही हो चुकी होती है। सामान्य सामाजिक संस्थाओं में लक्ष्य के परिवर्तन के अनुसार समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। आध्यात्मिक संघों में भी परिवर्तन होते दिखाई देते हैं, लेकिन ये परिवर्तन आदर्श में परिवर्तन के द्योतक न होकर आदर्श प्राप्ति के मार्ग में उत्पन्न बाधाओं को दूर करने के लिए किये गये परिवर्तनों के कारण होते हैं। ये परिवर्तन संघ के मूल ढाँचे को कभी नहीं छूते, केवल उसके बाहरी आवरण में अस्थायी फेर-बदल मात्र होते हैं। ईसाई, इस्लाम तथा बौद्ध धर्म संघों के विषय में भी यह बात प्रयुक्त होती हैं। अत: इन संघों के स्वरूप को समझने के लिए इनके आदर्श के घनीभूत विग्रह स्वरूप महापुरुष के चरित्र को समझना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीरामकृष्ण मिशन के प्राण, प्रेरणा एवं आदर्श हैं—श्रीरामकृष्ण।

श्रीरामकृष्ण की जीवनी एवं उपदेशों से आज प्राय: सभी परिचित हैं। उनके उपदेशों के विभिन्न अर्थ एवं भाष्य किये जा सकते हैं, लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जिनके संबंध में कोई शंका या दो-मत नहीं हो सकते और ऐसी असंदिग्ध बातें ही इन महापुरुषों के जीवन एवं उपदेशों का सार सर्वस्व होती हैं।

श्रीरामकृष्ण के जीवन का सारतत्व है—भगवद्-तन्मयता। अर्ध-शताब्दी के अपने जीवन-काल में श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर के अतिरिक्त न कुछ चाहा, न पाया, न संजोया। उनके मन में, वाणी में, प्राणों में तथा क्रिया-कलापों में भगवान के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। और इसी का उन्होंने उपदेश दिया—भगवान को देखना ही जीवन का लक्ष्य है, उन्हें पाना, उनसे वार्तालाप करना, उनके साथ एक हो जाना—बस, यही एकमात्र करणीय कार्य, स्मरणीय ध्यान एवं चिन्तनीय विचार है। जिस बात का उन्होंने उपदेश दिया, वे स्वयं उसके उत्कृष्टतम उदाहरण थे। भगवान के साथ उनका तादात्म्य इतना गहरा था कि उन्होंने कभी यह अनुभव ही नहीं किया कि उनकी स्वयं की कोई पृथक् सत्ता है, अथवा वे स्वयं कोई कार्य कर रहे हैं। जब श्रीरामकृष्ण का जीवन ऐसा भगवद्मय था तो क्या रामकृष्ण संघ इससे भिन्न हो सकता है? उनका जीवन समग्र मानव

जाति के लिए यह सन्देश, प्रेरणा एवं प्रेममय आह्वान है कि वह ईश्वरोन्माद के आनन्द का रसास्वाद कर अपने को धन्य करे। इस भगवदाकारता की प्राप्ति का ही सन्देशवाहक है--रामकृष्ण मिशन।

ईश्वर साक्षात्कार के आदर्श का ही दूसरा पक्ष है ईश्वर-प्राप्ति के लिए व्याकुलता एवं उनके प्रति पूर्ण समर्पण। श्रीरामकृष्ण परवर्ती जीवन में लोकहितार्थ लोगों को उपदेश देने के लिए व्यग्र एवं व्यस्त दिखाई पड़ते थे। लेकिन क्या उन्होंने स्वयं की इच्छा से ऐसा किया था? नहीं, वे तो माँ जगदम्बा के हाथों के यंत्र मात्र थे। उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने विभिन्न धर्मों की साधना की थी, तथा इस सत्य का आविष्कार किया था कि सभी धर्म सत्य हैं तथा परमात्मा को पाने के विभिन्न मार्ग हैं। रामकृष्ण मिशन भी इसी महान सत्य का प्रतिनिधित्व करता है।

माँ जगदम्बा ने ही श्रीरामकृष्ण को यह बताया कि उनके बहुत से अन्तरंगभक्त आएँगे। उन्हीं की प्रेरणा से वे अपने शिष्यों के लिए उन्हें पाने एवं उन्हें अपने अनुभवों को बताने तथा उनका उनमें वितरण करने के लिए व्यग्र हो उठे थे। इसके बाद प्रारंभ हुआ रामकृष्ण संघ के इतिहास का नया अध्याय—गुरु द्वारा शिष्य की शिक्षा एवं उनमें शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द का संचार। आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरु-शिष्य परंपरा क्रम से ज्ञान एवं शक्ति का प्रवाह बनाए रखना रामकृष्ण-मिशन की भाव धारा का एक अविभाज्य अंग है। लेकिन जब यह गुरु-शिष्य संप्रदान अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ, तभी श्रीरामकृष्ण को बुलावा आ गया और अपनी लीला का संवरण कर वे अपने नित्य धाम को लौट गये।

संघ-जननी माँ सारदा

इसके बाद रामकृष्ण मिशन के इतिहास में जो नया अध्याय प्रारम्भ हुआ उसमें माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द की प्रमुख भूमिका थी। माँ सारदा ने संघ के आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने तथा उसकी कार्यप्रणाली निर्धारित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अपनायी है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उन्हीं के मन में श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद संघ की एक स्पष्ट रूप-रेखा विद्यमान थी जिसकी कल्पना श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों में से कोई भी नहीं कर सका था।

श्रीरामकृष्ण के तिरोधान के बाद उनके अंतरंग संन्यासी शिष्यगण इधर-उधर बिखर गये। वाराहनगर मठ की स्थापना हुई अवश्य, पर अधिकांश युवक-संन्यासी आन्तरिक तीव्र आध्यात्मिक व्याकुलता एवं भगवत प्रेरणा से प्रेरित हो परिव्राजक के रूप में तीर्थ भ्रमण एवं तपस्या के लिए निकल पड़े। लगा, मानो श्रीरामकृष्ण का आगमन एवं दिव्य लीला कुछ शिष्यों को भगवद्दर्शन के मार्ग पर अग्रसर कराने के साथ ही समाप्त हो जायगी। लेकिन माँ सारदा की धारणा कुछ और थी। रामकृष्ण संघ के इतिहास के इन प्रारंभिक दिनों में जब जगत-कल्याण की महान भावी संभावनाओं वाले इस संघरूपी विशाल वृक्ष का अंकुर अंकुरित होते ही विनष्ट हो जाता, माँ सारदा ने प्रभु से प्रार्थना की, "ठाकुर, तुम आए, भगवद् प्रेमोन्माद में नृत्य-कीर्तन किया और चले गए; क्या इसी के साथ सब कुछ समाप्त हो जायेगा; यदि ऐसा ही था तो इतना कष्ट उठाकर अवतार ग्रहण करने की आवश्यकता ही क्या थी? काशी-वृन्दावन में मैंने अनेक साधु देखे हैं, जो भिक्षा करके खाते हैं, और पेड़ के नीचे सोते हैं। ऐसे साधुओं की तो कमी नहीं है। तुम्हारे नाम से जो संसार त्याग करें वे अन्न के दो दानों के लिए इधर-उधर भटकते रहें यह मैं देख नहीं पाऊँगी। मेरी प्रार्थना है, तुम्हारे लिए जो संसार त्याग करें उन्हें मोटे अन्न-वस्त्र का अभाव न हो। वे सब तुम्हारे एवं तुम्हारे भाव एवं उपदेशों को आश्रय करके एकत्र रहेंगे, तथा संसार-ताप-दग्ध लोग उनके पास आकर तुम्हारी वाणी सुनकर शान्ति पायेंगे। इसी लिए तो तुम्हारा आगमन हुआ है।" रामकृष्ण संघ के उद्देश्य के विषय में कितना स्पष्ट मन्तव्य है यह! यही कारण है कि परवर्ती

काल में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी सारदानन्द आदि रामकृष्ण संघ के सभी वरिष्ठ संन्यासी एवं संचालक वृन्द संघ सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण विषयों में माँ सारदा का परामर्श प्राप्त करते थे, एवं उनके आदेशों को विचाररहित हो शिरोधार्य करते थे।

एक बार एक आश्रम के अध्यक्ष ने माँ सारदा से शिकायत की कि आश्रम के अन्य कार्यकर्ता उनकी बात नहीं सुनते और चूंकि वे सब माँ सारदा के स्नेहपात्र थे, अतः अगर, माँ उन्हें दण्ड दें एवं उनके पास न आने दें तो अच्छा हो। इसपर माँ ने रुष्ट होकर उस आश्रम के अध्यक्ष से कहा कि जोर-जबरदस्ती एवं दण्ड द्वारा कभी किसी को अपने काबू में नहीं किया जा सकता। प्रेम ही हमारा मूल मंत्र है, प्रेम ही संघ के कर्मियों, ब्रह्मचारियों एवं संन्यासियों को बाँधकर रखने वाली कड़ी है तथा इसी से संघ परिचालित होता है।

दूसरी घटना वाराणसी में घटी थी। स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों से प्रभावित हो वाराणसी में स्वामीजी के कुछ शिष्यों ने एक सेवाश्रम की स्थापना की थी जहाँ 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' के भाव से साधु-ब्रह्मचारी रोगियों की सेवा करते थे। मास्टर महाशय आदि, श्रीरामकृष्ण के कुछ भक्त स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित इन विभिन्न सेवा कार्यों को श्रीरामकृष्ण के उपदेशों के अनुरूप नहीं समझते थे। काशी प्रवास के समय एक दिन माँ सारदा काशी सेवाश्रम देखने आयीं। वहाँ के सेवाकार्य को देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं तथा बोलीं कि ठाकुर स्वयं यहाँ विराजित हैं। कार्य के प्रति अपनी सहमति एवं सहयोग प्रदर्शित करते हुए उन्होंने सेवाश्रम को दान स्वरूप दस रुपये का एक नोट दिया जो आज भी आश्रम में सुरक्षित है। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रारंभ किये गये ये कार्य श्रीरामकृष्ण के भाव के अनुरूप हैं, इस बात पर माँ सारदा ने अपने इस आचरण द्वारा मुहर लगा दी एवं मास्टर महाशय को अपना मत परिवर्तित करने के लिए बाध्य किया।

इन सब घटनाओं के माध्यम से संघ को सही दिशा में परिचालित करने के अलावा माँ सारदा निरन्तर भगवान से संघ के कल्याण के लिए प्रार्थना किया करती थीं और संघ के सदस्यों की यह मान्यता है कि उनकी प्रगति एवं समृद्धि मूलतः माँ के आशीर्वाद एवं प्रार्थना के ही फल हैं। और यही प्रार्थना—प्रभु से मार्गदर्शन एवं संरक्षण के लिए कातर प्रार्थना—आज भी संघ के परिचालन एवं कल्याण का सबसे प्रभावशाली उपाय है।

संचालक स्वामी विवेकानन्द :

स्वामी विवेकानन्द एक ध्यानसिद्ध महायोगी थे। उनका अन्तर्मुखी मन स्वाभाविक रूप से समाधि में निमग्न रहना चाहता था। श्रीरामकृष्ण के पूछने पर उन्होंने शुकदेव की तरह निरंतर समाधिस्थ रहने की इच्छा व्यक्त की थी। इस पर उनकी भर्त्सना करते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा था कि निर्विकल्प समाधि में विलीन हो पड़े रहना उनके जैसे उच्चतम अधिकारी के लिए अत्यन्त तुच्छ बात है। सर्वत्र ब्रह्मदर्शन करना तथा जीवन्त-जाग्रत ब्रह्म की सेवारूप आराधना करना उससे भी श्रेष्ठतर अवस्था है। श्रीरामकृष्ण चाहते थे कि वे स्वयं की मुक्ति मात्र की इच्छा न करके एक वटवृक्ष की तरह संसार के असंख्य दुःख-संतप्त लोगों को आश्रय प्रदान करें। अपने तिरोधान के पूर्व श्रीरामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द में अपनी शक्ति का संचार कर एक प्रकार से जगत् कल्याण के लिए उन्हें बाध्य किया था।

श्रीरामकृष्ण के तिरोधान के बाद स्वामी विवेकानन्द ने परिब्राजक के रूप में भारत का भ्रमण किया और जनसाधारण की गरीबी एवं अज्ञान से प्रत्यक्ष रूप में परिचय प्राप्त किया। उन्हें श्रीरामकृष्ण की उक्तियाँ, "भूखे पेट धर्म नहीं होता" तथा "शिव ज्ञान से जीव सेवा" आदि याद हो आयीं। उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि जिस ब्रह्म का वे आँखें बन्द करके ध्यान करना चाहते थे, वही दरिद्र, पीड़ित, रोगी अज्ञानी भारतवासी के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। इसीलिए वे कह उठे थे कि मानवदेह ही

भगवान का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है एवं मानव की सेवा ही भगवान की सर्वश्रेष्ठ पूजा है। रामकृष्ण मिशन के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द की विश्व को जो महती देन है, वह है यह 'युगधर्म'—"शिवज्ञान से जीव सेवा।"

स्वामी विवेकानन्द के जीवन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था श्रीरामकृष्ण के सर्वसंतापहारी, शान्तिदायक, कल्याणकारी सन्देश का विश्व में प्रचार करना। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। लेकिन उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि घोर तमोगुण में डूबे भारतवासी उस उदार एवं उच्चतम आध्यातिक सन्देश को सही ढंग से समझ नहीं सकेंगे। इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यक है रजोगुण। उसके बाद ही सत्व गुण का उद्रेक हो सकता है। अत: स्वामीजी ने भारत में सेवाकार्यों का सूत्रपात किया। लेकिन रजोगुण बहुल पाश्चात्य देशों में उन्होंने लोक-हितार्थ वेदान्त का प्रचार किया।

रामकृष्ण मिशन के आध्यात्मिक आदर्श को स्वामीजी ने मिशन के प्रतीक-चित्र के माध्यम से प्रकट किया है। चित्र के मध्य स्थित हंस परमात्मा का प्रतीक है। तरंगायित सागर कर्मयोग का, कमल भक्तियोग का, उदयोन्मुख सूर्य ज्ञानयोग का तथा चित्र को आवेष्ठित कर रहा सर्प राजयोग का प्रतीक है। ज्ञान, भक्ति, कर्म एवं राजयोग द्वारा आत्मा के ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। यही इस चित्र का अर्थ है। इन चारों योगों का पूर्ण एवं संतुलित विकास श्रीरामकृष्ण में हुआ था, एवं यही रामकृष्ण मिशन का आदर्श भी है।

संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द

रामकृष्ण मिशन के आदर्श एवं उद्देश्य निर्धारित करने एवं उसकी विधिवत प्रतिष्ठा करने के बाद स्वामी विवेकानन्द अधिक दिन जीवित नहीं रहे। उनके लीला-संवरण के बाद संघ के संचालन का भार स्वामी ब्रह्मानन्दजी या राजा महाराज पर आ पड़ा। वस्तुत: स्वामीजी ने अपने जीवनकाल में ही स्वामी ब्रह्मानन्दजी को मिशन के अध्यक्ष पद पर आरूढ़ कर दिया था। और रामकृष्ण मिशन का सबसे अधिक विस्तार राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) के अध्यक्षता-काल में ही हुआ था। रामकृष्ण मिशन का जो रूप हमें आज दीख रहा है, उसके निर्माण में राजा महाराज का बहुत बड़ा हाथ है। स्वामीजी तो सैद्धान्तिक रूपरेखा देकर चले गये। उन्हीं आदर्शों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का, उन्हें कार्य में परिणत करने का महत् कार्य राजा महाराज को ही करना पड़ा था।

राजा महाराज एक महान आध्यात्मिक शक्ति एवं संपदा संपन्न महापुरुष थे। स्वयं स्वामी विवेकानन्द उन्हें Spiritual dynamo कहते थे। उन्होंने दीर्घ बीस वर्षों तक मिशन के सेवा-कार्यों को आध्यातिक दिशा प्रदान करने का, स्वामी विवेकानन्द द्वारा जागरित रजोगुण को संयत कर ऊर्ध्वगामी करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। स्वामी जी एवं राजा महाराज की कार्य-प्रणाली में आपातत: विरोधाभास प्रतीत होता है। स्वामीजी कर्मयोग पर बल देते थे, तो राजामहाराज ध्यान-जप आदि पर। इसका कारण यह है कि बिना साधना के कर्म को कर्मयोग में परिणत नहीं किया जा सकता। बिना आराधना के कर्म को सही दृष्टिकोण से करना संभव नहीं है। जबतक कर्म हमारे लिए कर्म ही है, पूजा में परिणत नहीं हुआ है, तबतक पृथक् रूप से पूजा एवं उपासना की आवश्यकता है। अन्यथा कर्म चित्त शुद्धि का कारण न होकर अहंकार की वृद्धि एवं बन्धन का कारण बन जाता हैं। अत: संघ के सदस्यों के लिए स्वामी ब्रह्मानन्दजी का निर्देश था : कर्म प्रारंभ करने के पूर्व भगवान को याद करो। कर्म के बीच भी यही करो और कर्म के समाप्त होने पर भी भगवान को याद करो।"

स्वामी ब्रह्मानन्दजी की दूसरी विशेषता यह थी कि वे संघ की विभिन्न समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान खोजते थे, जो अधिक स्थायी हुआ करते थे। एक बार

मिशन के एक बड़े सेवाश्रम में कार्यकर्ताओं के दो दलों में गमगुटाव के कारण एक विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, जिसका समाधान स्वयं स्वामी तुरीयानन्दजी एवं स्वामी सारदानन्दजी भी नहीं कर सके थे। आखिरकार, समस्या राजा महाराज के सामने रखी गयी। उन्होंने उस मिशन-केन्द्र में स्वयं जाकर समस्या की बात तक उठाये बिना आध्यात्मिक उपदेशों भजन, कीर्तन एवं ध्यान-जप द्वारा एक ऐसे आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण किया कि समस्या अपने आप बिना किसी प्रयत्न के समाप्त हो गयी।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने एक और महत्वपूर्ण कार्य किया था--यह था अपने व्यक्तिगत संरक्षण एवं मार्गदर्शन में कुछ संन्यासियों को श्रेष्ठतम आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्रदान कर मिशन के उत्कृष्ट कार्यकर्ताओं के रूप में तैयार करना। कौन सा व्यक्ति किस कार्य के लिए उपयुक्त है इसका अंकन करने की उनमें अद्‌भुत् क्षमता थी। उनके द्वारा प्रशिक्षित इन वरिष्ठ संन्यासियों ने मिशन के अनेक महत्वपूर्ण केन्द्रों का कई वर्षों तक सुचारु रूप से संचालन किया था।

महाध्यक्ष स्वामी प्रेमानन्द

अत्यन्त शुद्ध सत्व प्रेममय महापुरुष, स्वामी प्रेमानन्दजी या बाबूराम महाराज, श्रीरामकृष्ण के एक ईश्वरकोटि अन्तरंग शिष्य थे। अध्यक्ष होते हुए भी स्वामी ब्रह्मानन्दजी अधिकांश समय बेलुड़ मठ से बाहर ही रहते थे, एवं ब्रह्मचारियों के रूप में मठागत नवीन युवकों के प्रशिक्षण का भार स्वामी प्रेमानन्दजी पर ही पड़ा था। वे ब्रह्मचारियों से जितना प्रेम करते थे, उतना ही उन लोगों से कार्य करवाने में कठोर भी थे। उनके प्रशिक्षण की विशेषता यह थी कि वे मठ के सभी कार्यों को श्रीरामकृष्ण के कार्य, भगवत आराधना के कार्य के रूप में करने की प्रेरणा देते थे। बाबूराम महाराज की वाणी एवं कार्यों से यह स्पष्ट प्रतीत होता था मानो मठ के प्रत्येक धूलि-कण में परमात्मा विद्यमान हैं। झाड़ू लगाना, पानी भरना, तरकारी काटना आदि से लेकर पूजा करना, स्वाध्याय, ध्यान-जप करना—ये सभी कार्य प्रभु के ही हैं, प्रभु के निमित्त ही किये जा रहे हैं—यह मात्र उनके व्यक्तित्व से निर्झरित होता था तथा अन्य संन्यासियों में संचारित भी होता था।

स्वामी प्रेमानन्दजी ने जो दूसरा महत्वपूर्ण कार्य किया, वह था—'भक्त-सेवा'। वे मठ में आये सभी भक्तों, अतिथि-अभ्यागतों का हार्दिक स्वागत करते, उन्हें भोजन कराते एवं उनसे प्रेमपूर्ण संभाषण करते थे। श्रीरामकृष्ण के मठ में आने वाला कोई भी व्यक्ति, चाहे वह श्रीरामकृष्ण का भक्त हो, अथवा सैर सपाटे के लिए आया यात्री हो, अथवा उत्सुकतावश समय बे समय मठ में टपक पड़ा कोई अजनबी ही क्यों न हो, सभी उनके लिए सेव्य थे। उनकी इस आन्तरिक, प्रेमपूर्ण सेवा से न जाने कितने ही अभ्यागतों का हृदय-परिवर्तन हुआ था एवं वे मठ के शुभचिन्तक एवं भक्त बन गये थे।

संघ सचिव स्वामी सारदानन्द

स्वामी सारदानन्दजी एक अत्यन्त शान्त प्रकृति के धीर-स्थिर गंभीर महापुरुष थे। वे किसी भी विषम परिस्थिति में विचलित नहीं होते थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना की थी कि उन्हें सर्वत्र, संसार के सभी प्राणियों में ब्रह्मदर्शन, भगवद्‌दर्शन हो सके। उनकी दूसरी विशेषता यह थी कि वे संसार की सभी नारियों में माँ जगदम्बा को देखने में समर्थ हुए थे। ये दो आध्यात्मिक मनोभाव उनकी रामकृष्ण मिशन को विशेष देन हैं।

स्वामी सारदानन्दजी को उनके सेवाभाव एवं शान्त प्रकृति के कारण स्वामी विवेकानन्द ने संघ के सचिव-पद के लिए विशेष रूप से चुना था। उनके लिए संन्यासी होते हुए भी माँ सारदा के परिवार के सदस्यों की सांसारिक समस्याओं का समाधान करना, जैसे राधू का विवाह, माँ के लिए भूमिक्रय करके भवन निर्माण से लेकर रामकृष्ण मिशन के संचालन से सम्बन्धित सभी कार्य भगवदाराधना ही थे। अत्यन्त व्यस्तता के बीच एवं

कोलाहलमय वातावरण में भी वे शान्त बने रहते थे। किसी भी संस्था के संचालन के लिए यह गुण विशेष रूप से आवश्यक है। वे कभी भी मठ के छोटे से छोटे सदस्य पर अपने पद का दबाव डालने का प्रयत्न नहीं करते थे, बल्कि प्रेम एवं विनम्रतापूर्वक अपने आदेश का पालन करने को बाध्य करते थे।

स्वामी शारदानन्दजी के कार्यकाल में रामकृष्ण मिशन को एक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के आध्यात्मिक संदेश से प्रभावित हो तत्कालीन बंगाल के कई क्रान्तिकारी आतंकवादी युवक संघ में योगदान करते थे। इससे उस समय की अंग्रेज सरकार को यह भ्रम हो गया कि रामकृष्ण संघ क्रान्तिकारियों को प्रोत्साहित करता है। भारत के तत्कालीन गवर्नर ने अपने एक भाषण में इसका उल्लेख किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि लोग मठ में आने से घबड़ाने लगे। लोगों ने परामर्श दिया कि शासन के कोप से बचने के लिए उन युवक-संन्यासियों को मठ से निकाल दिया जाय जो पूर्व-जीवन में क्रान्तिकारी थे। लेकिन एक बार जिसे आश्रय दिया है, उसे कैसे निकाल दें! विशेषकर ऐसी स्थिति में, जब वे त्याग एवं सेवा का जीवन व्यतीत कर भगवत्लाभ करना चाहते हों। स्वामी शारदानन्दजी ने माँ सारदा से इस विषय में परामर्श लेकर लाट साहब (गवर्नर) से स्वयं भेंट कर उन्हें वस्तुस्थिति एवं मिशन के वास्तविक स्वरूप तथा उद्देश्य को समझाया एवं उन्हें अपने वक्तव्य को वापस लेने के लिए बाध्य किया।

उपसंहार

उपर्युक्त विवरण से पाठकों का रामकृष्ण मिशन के आध्यात्मिक स्वरूप को समझने में कठिनाई नहीं होगी। रामकृष्ण संघ के उद्देश्य एवं लक्ष्य आध्यात्मिक हैं, उसकी कार्यप्रणाली आध्यात्मिक है, एवं उसका समग्र स्वरूप ही आध्यात्मिक है। इसका प्रत्येक सदस्य जीवन के चरम लक्ष्य—भगवद् प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, एवं इसी प्रयत्न के अंग के रूप में वह सभी प्राणियों की भगवद् बुद्धि से सेवा करने का प्रयत्न करता है। वह इस प्रयास में कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग—इन चार योगों में से एक, अनेक या सभी का अनुष्ठान करता है। अपनी साधना के साथ ही साथ वह श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों का, जिनका वह स्वयं पालन करने का प्रयत्न करता है, प्रचार-प्रसार भी करता है, जिससे संसार के समस्त लोग शान्ति प्राप्त कर सकें। समाज कल्याण के विभिन्न कार्य जो लोगों को दिखाई देते हैं, वे तो इन सभी संन्यासी साधकों की साधना के गौण उप-परिणाम मात्र हैं। रामकृष्ण मिशन के आध्यात्मिक स्वरूप को समझने पर भारत के आध्यात्मिक एवं भौतिक पुनरुत्थान में उसकी भूमिका भी समझी जा सकती है।

*

जितने मत हैं, उतने ही पथ हैं। जैसे इस काली मन्दिर में आने के लिए कोई तो नाव में, कोई गाड़ी से और कोई पैदल आता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न मतों के द्वारा भिन्न-भिन्न लोगों को सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

— श्रीरामकृष्ण देव

रामकृष्ण मठ-मिशन

—श्री द्वारका प्रसाद शर्मा
वृन्दावन।

चन्द्रामणि-खुदिराम के हुए गदाधर लाल।
भारतवासी पा उन्हें मन में हुए निहाल ॥१॥

बने गदाधर विश्व के रामकृष्ण भगवान।
दिया विवेकानन्द-सा जग को शिष्य महान ॥२॥

रामकृष्ण, माँ शारदा, स्वामि विवेकानन्द।
इस त्रिमूर्ति से विश्व को मिला परम आनन्द ॥३॥

रामकृष्ण मठ-मिशन के हुए शुरू सब कार्य।
जीवमात्र को शिव समझ सेवाव्रत अनिवार्य ॥४॥

औषध-भोजन-वस्त्र के खुले अनेकों वास।
करते दीन-अनाथ औ रोगी जहाँ निवास ॥५॥

संन्यासी औ' गृहीजन रामकृष्णगत प्राण।
तन-मन-धन से रात्रि-दिन करते जन-कल्याण ॥६॥

रामकृष्ण भव-तीर्थ हैं बेलुड़ मठ संस्थान।
त्याग-कर्म-संन्यासव्रत लेते मनुज सुजान ॥७॥

मत जितने प्रभु-पथ सकल परम लक्ष्य है एक।
रामकृष्ण मठ में सदा सम्मानित सविवेक ॥८॥

ईसा-शङ्कर-गौर प्रभु-कृष्ण राम औ बुद्ध।
रामकृष्ण के सहित सब हैं अवतार विशुद्ध ॥९॥

तिथि-पूजा मठ मिशन में करते इनकी लोग।
विश्व धर्म-बन्धुत्व का ऐसे बनता योग ॥१०॥

दीक्षा ले गुरु-मंत्र की सभी वर्ण के व्यक्ति।
रामकृष्ण में देखते निज-निज प्रभु की शक्ति ॥११॥

गुरु भाई-बहनें सभी सुन निज गुरु से उक्ति।
करते साधित जगत्-हित और स्वयं की मुक्ति ॥१२॥

रामकृष्ण भावान्दोलन नूतन दृष्टि : अखण्ड दर्शन

—स्वामी सोमेश्वरानन्द

[स्वामी सोमेश्वरानन्द रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में कार्यरत एक तरुण किन्तु प्रबुद्ध संन्यासी हैं। उन्होंने अंग्रेजी और बंगला भाषा में अबतक प्रायः एक दर्जन पुस्तकों की रचना की है, जिन्हें राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली है। प्रखर चिन्तन, प्रगतिशील विचार एवं स्पष्ट दृष्टिभंगी—स्वामी सोमेश्वरानन्द की विशेषताएँ हैं। रामकृष्ण भावान्दोलन के वैशिष्ट्य के संदर्भ में 'विवेक शिखा' की ओर से डॉ० केदारनाथ लाभ ने उनसे एक साक्षात्कार लिया था, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।-सं०]

के० ना० लाभ : महाराज, भारत में प्राचीन काल में हजारों सन्त-महापुरुष अविर्भूत हुए। आधुनिक युग में इसी भाँति श्रीरामकृष्ण-स्वामी विवेकानन्द का अवतरण हुआ। क्या इन दोनों महापुरुषों ने भी वे ही बातें कहीं जो पूर्व के सन्तों ने कही थीं या इनकी वाणियों में कुछ मौलिक बातें भी हैं ?

सोमेश्वरानन्द : कई मौलिक बातें हैं। देखिए, बुद्ध ने निर्वाण को अंतिम अवस्था कहा। आचार्य शंकर के अद्वैत दर्शन में ब्रह्मज्ञान को अंतिम अवस्था कहा गया है। पतंजलि ने निर्विकल्प समाधि को अंतिम अवस्थान माना। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने कहा—'ज्ञानेर पर विज्ञान' अर्थात् ज्ञान ही अंतिम अवस्था नहीं हैं, इसके आगे भी एक अवस्था है—विज्ञान।

के० ना० लाभ : यह तो मौलिक बात हुई। किन्तु यह विज्ञान की अवस्था क्या है, इसे कृपया स्पष्ट करें।

सोमेश्वरानन्द : इसे स्वयं ठाकुर ने स्पष्ट किया है। हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) को एक बार ठाकुर ने कहा था कि ज्ञान के आगे विज्ञान है। ज्ञान है ब्रह्मानुभूति। किन्तु वहीं रुकना नहीं है। इसके बाद उस ज्ञान का लोक-मंगल के लिए उपयोग करना विज्ञान है।

के० ना० लाभ : किस तरह ?

सोमेश्वरानन्द : ठाकुर ने ही कहा है कि एक आदमी सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़कर दीवार के उस पार पहुँचा। वहाँ उसने महल के नीचे झाँक कर देखा कि महल में नाच-गान हो रहा है। रस और आनन्द की वर्षा हो रही है। वह आनन्द से भरकर नीचे कूद गया। स्वयं आनन्द में डूब गया। यह ज्ञान है। दूसरा आदमी भी दीवार पर जाता है और मनोरम दृश्य देखकर छलांग लगा देता है। किन्तु एक तीसरा व्यक्ति ऐसा है जो दीवार पर जाता है, नीचे के सम्मोहक दृश्य का आनन्द-रस पान करता है परन्तु स्वयं उसमें सम्मिलित हो जाने के लिए नीचे कूद नहीं जाता है। वह दीवार से फिर इस पार नीचे उतरता है और लोगों को अपने अनुभव के आधार पर बताता है कि देखो देखो, दीवार के उस पार आनन्द की वर्षा हो रही है। जाओ-जाओ, तुम सब भी वहाँ जाकर उस परम आनन्द का भोग करो। वह दूसरों को अपने आनन्द का भागीदार बनाने की चेष्टा करता है। यही विज्ञान है। फिर, दीवार के उस पार जाकर जो आनन्द हुआ, ब्रह्मानुभूति हुई वह ज्ञान है, और नीचे उतरकर अब जगत् को मिथ्या नहीं मान-कर सर्वत्र और सभी जीवों में ब्रह्मदर्शन करना विज्ञान है। यानी जो आनन्द महल के भीतर है उसे बाहर भी देखना विज्ञान है।

के० ना० लाभ : क्या ठाकुर ने और कभी यह बात कही ?

सोमेश्वरानन्द : कई बार। आप जानते होंगे कि काशीपुर उद्यान भवन में श्रीरामकृष्ण ने एक बार नरेन्द्र

नाथ (स्वामी विवेकानन्द) से पूछा था, 'नरेन, तुम क्या चाहते हो?' जब नरेन्द्र ने कहा कि ठाकुर, मेरी इच्छा है कि शुकदेव की भाँति सदा निर्विकल्प समाधि में डूबा रहूँ, तो श्रीरामकृष्ण ने उन्हें फटकारते हुए कहा 'छि: छि:। एर चेओ ऊँचू अवस्था आछे। छादे उठे नेमे आसा— इससे भी ऊँची अवस्था है। छत पर जाकर फिर नीचे उतर आना और सब में ब्रह्म का दर्शन करना। एक तिनका भी नदी में बहकर उस पार जा सकता है। किन्तु एक चींटी भी यदि उस पर चढ़ जाय तो वह डूब जाता है। लेकिन उसी नदी में एक विशाल वृक्ष बहता रहता है। वह स्वयं तो उस पार जाता ही है साथ ही कितने पशु-पक्षियों को भी अपने ऊपर रख कर उस पार ले जाता है। तुम वैसे ही विशाल वट-वृक्ष बनो। अर्थात् स्वयं ईश्वरानुभूति प्राप्त कर लोक कल्याण के लिए उस ज्ञान का उपयोग करो। इसी से स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ का आदर्श वाक्य रखा—'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' अर्थात् अपनी मुक्ति और फिर विश्व मंगल—लोक-कल्याण के लिए कार्य करो। ज्ञान के उपरान्त विज्ञान में प्रवेश करो। यह श्रीरामकृष्ण की मौलिक देन है—विश्व के आध्यात्मिक चिंतन को। इनके पूर्व ऐसी बात किसी संत-महापुरुष ने नहीं कही थी।

के० ना० लाभ : क्या यही एक मौलिकता है, महाराज ?

सोमेश्वरानन्द : नहीं। अब तक के धर्माचार्यों ने आध्यात्मिकता के आगे समाज की उपेक्षा कर दी थी। श्रीरामकृष्ण प्रथम धर्म-गुरु हैं जिन्होंने कहा—'खाली पेटे धर्म हय ना'—भूखे पेट से धर्मसाधना नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने घोषणा की—'शिव ज्ञाने जीव सेवा' अर्थात् मानव को शिव मानकर, ईश्वर समझकर उनकी सेवा करो।

के० ना० लाभ : यह तो, महाराज, विलक्षण शिक्षा है। क्या आप इसकी कुछ विस्तृत व्याख्या करेंगे ?

सोमेश्वरानन्द : इसे ऐसे समझिए; ब्रह्म सूत्र में कहा गया है—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। ब्रह्म सत्य है और संसार

एक झूठ है। इसमें संसार जिस रूप में है उसकी ... जाती है। बुद्ध ने कहा, सर्वं दुःखं—दुःख है और उसके ... का उपाय भी है। अपने स्वरूप को नहीं जानना ही ... का कारण है। और निज स्वरूप को जानकर निवृ... हो जाना ही दुःख से निवृत्ति का उपाय है। स्वामी ... दुःख से छुटकारा के लिए आध्यात्मिक उपाय ... सुझाया।

किन्तु स्वामीजी ने दुःख का वर्गीकरण किया। ... कहा कि दुःख तीन प्रकार के होते हैं। आधिदैविक, आ... भौतिक और आध्यात्मिक।

आधिदैविक दुःख बाह्य प्रकृति का ... है। ... शीत, ताप, भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष आदि। विज्ञान ... तकनीक ऐसे दुःखों पर ध्यान देकर उन्हें दूर करने ... उपाय प्रस्तुत करते हैं।

आधिभौतिक दुःख है—समाज की दुष्ट या अशु... शक्तियाँ जो समाज में विषमता और शोषण को ज... देती हैं। इन पर विजय पाने के लिए इतिहास, समा... शास्त्र और अर्थशास्त्र आदि की जरूरत है।

तीसरा दुःख है आध्यात्मिक। समाज पुरोहितवा... से ग्रस्त हो जाता है। वह धर्म के नाम पर अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों में जकड़ दिया जाता है।

स्वामीजी का कथन है कि मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों स्तरों पर विकास आवश्यक है। आध्यात्मिक विकास तो अंतिम अवस्था है। शारीरिक विकास के लिए भोजन, वस्त्र और भवन की जरूरत है। मानसिक विकास के लिए समुचित शिक्षा और संस्कृति आवश्यक है तथा आध्यात्मिक विकास के लिए साधना की आवश्यकता है। तीनों स्तरों पर विकसित होकर ही मनुष्य एक पूर्ण विकसित मानव हो सकेगा। इस प्रकार स्वामीजी ने सर्वाङ्गीण जीवन-दर्शन की प्रस्तुति की, जैसा पहले के आचार्यों ने नहीं किया।

के० ना० लाभ : यहाँ स्वामीजी श्रीरामकृष्ण से कुछ भिन्न विचार प्रस्तुत करते नहीं दिखाई पड़ते हैं क्या?

सोमेश्वरानंद : नहीं। ठाकुर सूत्र थे और स्वामीजी उनके सूत्र के भाष्य। ठाकुर ने इन तीनों स्तरों के विकास का संकेत किया है। खाली पेट से धर्म साधना नहीं हो सकती—इस कथन से दैहिक विकास की जरूरत की ओर उन्होंने संकेत किया है। लाटू महाराज को पढ़ाने की कोशिश कर उन्होंने मानसिक विकास की अपेक्षा की ओर संकेत किया है, और शिव भाव से जीव-सेवा का उपदेश देकर तथा 'ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य है'—ऐसा कहकर उन्होंने आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता पर जोर दिया है। स्वामीजी ने इन्हीं सूत्रों का भाष्य अपने प्रवचनों में किया है।

के० ना० लाभ : अच्छा महाराज, पश्चिमी देशों में भी अनेक दार्शनिक उत्पन्न हुए हैं, जिनमें कई आस्तिक थे, जैसे—स्पिनोजा, बर्कले, लाइब्निज, हेगेल आदि। श्रीरामकृष्ण ने भी ईश्वर के अस्तित्व को माना है। तो इस पृष्ठभूमि में श्रीरामकृष्ण की विशेषता क्या है?

सोमेश्वरानन्द : स्पिनोजा, बर्कले आदि के दर्शन तर्क सम्मत हैं। वे बुद्धि पर आधारित हैं। श्रीरामकृष्ण की धारणा अनुभूति पर आधारित है। तर्क पर आधारित दर्शन की कठिनाई यह है कि मेरा तर्क मेरे और आपका तर्क आपके ज्ञान पर निर्भर करेगा। मनुष्य कितना भी ज्ञानी हो, ससीम होने के कारण उसका ज्ञान भी सीमित होगा और तब उसका तर्क भी सीमित होगा। फलत: जब कोई नया ज्ञान आयगा तो पुराना ज्ञान कट जायगा। तर्कपूर्ण होने पर भी वह खण्डित हो जायगा।

पश्चिम के इन आस्तिक दार्शनिकों ने स्वयं ईश्वर की अनुभूति नहीं प्राप्त की। ईश्वर के सम्बन्ध में उनका मात्र बौद्धिक विवेचन है। किन्तु श्रीरामकृष्ण के विवेचन में प्रत्यक्ष अनुभूति का बल है। अत: इसका कभी खण्डन नहीं हो सकता और न इसमें कभी परिवर्तन हो सकता है। यह सतत, एकरस एवं अद्वितीय ज्ञान है।

के० ना० लाभ : यह तो आस्तिक दर्शन की बात हुई। किन्तु नास्तिक यदि मानव-समस्या के समाधान में सफल हो जाय तो आस्तिक दर्शन की क्या जरूरत है?

सोमेश्वरानन्द : काफ्का ने 'द ट्रायल', 'द कैसल' आदि अपने उपन्यासों में कहा है कि मानव जीवन का तात्पर्य कुछ नहीं है। कामू के 'मिथ आफ सिसिफस' (सिसिफस ग्रीक शास्त्र का एक चरित्र है) में सिसिफस पत्थर को पहाड़ के शिखर पर ले जाना चाहता है पर वह कभी वहाँ पहुँचता नहीं। कामू कहता है कि सिसिफस की भाँति हम आदर्श के शिखर पर कभी पहुँच नहीं पाते, आदर्श को कभी प्राप्त नहीं करते। यही मनुष्य की त्रासदी है। सार्त्र Being and nothingness (अस्तित्व और शून्यता) में कामू की ही बात प्रकारान्तर से कहता है कि त्रासदी समझकर भी काम करना है। बेकेट का का एक नाटक है "वेटिंग फॉर गोडो'। गोडो एक पात्र है उस नाटक का। उस नाटक में ऐसी मान्यता है कि गोडो के आ जाने से मनुष्य की सारी समस्याएँ हल हो जायेंगी। किन्तु, गोडो कभी आता नहीं; जब कि समाचार आता है कि गोडो आ रहा है। बेकेट का कहना है कि जैसे गोडो कभी आता नहीं वैसे ही आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती। आशा व्यर्थ है। गोडो आशा का साकार रूप है।

स्वामीजी कहते हैं कि पश्चिमी विचारकों का लक्ष्य है कुछ प्राप्त करना। शिल्पी, साहित्यकार भी कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। आशा को पूर्ण करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। मान लीजिए कि 'अ' हमारी स्थिति है; 'ब' हमारा लक्ष्य है। यदि 'अ' में हमारा मन उलझा है तो 'ब' में भी हमारे उलझन पूर्ण मन का ही प्रक्षेपण होगा। अत: 'अ' की उलझन को दूर करने का प्रयास करो। स्थिति उलझन रहित होने पर हमारी आशा—आकांक्षा भी उलझन से रहित होगी। इसी से श्रीरामकृष्ण कहते हैं—तोमार चैतन्य होय—तुम्हें चैतन्य प्राप्त हो। बोध या ज्ञान नहीं होने से मानव की समस्या कभी हल नहीं हो सकती। इसीलिए आस्तिक दर्शन की आवश्यकता है।

के. ना. लाभ : ऐसा लगता है कि श्रीरामकृष्ण ने ईश्वर-लाभ करने पर अधिक जोर दिया था। लेकिन

स्वामीजी ने समाज सेवा पर जोर दिया। क्या यह सही है कि ईसाई मिशनरियों से प्रभावित होकर स्वामीजी ने समाज सेवा पर जोर दिया और इस प्रकार अपने गुरु की वाणी से भिन्न आदर्श का प्रचार किया ?

सोमेश्वरानन्द : संघबद्ध होकर समाज-सेवा करना भारतीय आदर्श है। ईसाई मिशनरियों से बहुत पहले बुद्ध ने संन्यासियों के समक्ष संघबद्ध होकर बहुजन हिताय बहुजन सुखाय सेवा करने का आदर्श रखा था। अतः यह प्राचीन भारतीय आदर्श है। ईसाइयों ने इसी आदर्श से प्रेरणा ली। फिर बौद्ध और ईसाई दोनों दया और करुणा से प्रेरित होकर कार्य करते हैं, किन्तु ठाकुर कहते हैं 'शिव ज्ञाने जीव सेवा' करो। उन्होंने गौरी माँ से कहा, 'तुमने बहुत तपस्या की, अब काम करो।' इसी प्रकार उन्होंने श्री माँ से कहा, 'क्या मैं ही करूँगा, तुम कुछ नहीं करोगी ?' जब माँ ने कहा, 'मैं क्या कर सकती हूँ !' तो ठाकुर ने कहा, 'कलकत्ते के लोग कीड़े की तरह किलबिला रहे हैं। उनके लिए काम करो। तुम्हें मुझसे और अधिक करना है।' ये सब ठाकुर के ही सूत्र हैं जिनका स्वामीजी ने भाष्य किया है। अतः स्वामीजी ने अपने गुरु की वाणी से किसी भिन्न आदर्श का कभी प्रचार नहीं किया।

के० ना० लाभ : सभी धर्म एक ही ईश्वर के पास ले जाते हैं—यह बात भारत के कई सन्तों ने कही है। फिर श्रीरामकृष्ण के 'यत मत तत पथ' कथन की क्या विशेषता है ?

सोमेश्वरानन्द : यह सही है कि श्रीरामकृष्ण के पूर्व भी भारत के कई सन्तों ने कहा है कि सभी धर्म एक ही ईश्वर के पास ले जाते हैं, यथा, 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' (वेद) 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्।' (गीता) आदि। किन्तु, ब्रह्मसूत्र भाष्य में शंकराचार्य कहते हैं कि एकमात्र ज्ञान ही मुक्त कर सकता है। रामानुज और भास्कराचार्य कहते हैं कि भक्ति ही एकमात्र पथ है। योग दर्शन में कपिल ने योग को ही एकमात्र पथ बताया है। इन सब से श्रीरामकृष्ण के कथन में स्पष्ट अन्तर है। वे आचरण में भी भिन्न साधकों को भिन्न पथ का निर्देश करते हैं। [...] स्वामीजी को ज्ञान, राजा महाराज (स्वामी [...] को भक्ति और काली महाराज (स्वामी अभेदानन्द [...] योग की शिक्षा दी। मानो उन्होंने व्यवहार से भी [...] कि सभी पथ एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं।

मध्यकालीन भारत में कबीर, दादू, तुलसीदास [...] अन्य सभी संतों ने भी उदारता पूर्वक कहा कि सभी [...] एक ही ईश्वर के पास ले जाते हैं, परन्तु उन [...] प्रत्यक्ष अनुभूति एक-एक पथ की ही थी, सभी पथों [...] नहीं। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने स्वयं सभी पथों की [...] कर ईश्वरानुभूति की। यहाँ तक कि ईसाई और इस[...] धर्म की भी उन्होंने साधना की। यही अन्तर है। उन्[...] एक सच्चे वैज्ञानिक की भाँति विभिन्न धर्म-पथों [...] सत्यता का प्रायोगिक पद्धति से परीक्षण किया, और [...] 'जितने मत उतने पथ' की घोषणा की। वस्तुतः उन्[...] धर्म को विज्ञान के निकट ला दिया।

के० ना० लाभ : आज देश में राष्ट्रीय एकता [...] बड़ी जरूरत है। क्या इस दिशा में श्रीरामकृष्ण की वा[...] कोई पथ-प्रदर्शन कर सकती है ?

सोमेश्वरानन्द : राजनैतिक एकता के लिए सांस्[...] तिक एकता का होना आवश्यक है। एक संस्कृति [...] आरोपित कर हम राष्ट्र में एकता नहीं ला सकते। [...] सभी संस्कृतियों और धर्मों को आदर देना होगा [...] श्रीरामकृष्ण की बहुधर्म-साधना का यह सामाजि[...] तात्पर्य है कि प्रकृत भारत की पहचान के लिए सभी ध[...] और संस्कृतियों की जरूरत है। इस आदर्श के आधार [...] पर सभी धर्मों को मान्यता देकर यदि दूसरों की संस्कृति [...] के प्रति हम श्रद्धा दिखायें तो सांस्कृतिक एकता हो सकती [...] है। अनेकता में एकता के आधार पर राजनैतिक एकता [...] कठिन नहीं होगी। अभी तो झारखण्ड, गोरखा, पंजाबी [...] आदि डरते हैं कि वे अपनी सांस्कृतिक पहचान खो सकते [...] हैं। इसलिए संघर्ष हो रहा है।

के० ना० लाभ : आज भारत में धार्मिक विरोध [...]

...है। पंजाब में देखिए या अहमदाबाद में, कश्मीर में ...दिल्ली में। क्या रामकृष्ण विवेकानन्द वाणी में इस ...स्या का कोई समाधान मिल सकता है?

सोमेश्वरानन्द : धार्मिक विरोध का कारण है अंध-...वास और मतान्धता। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि ...सी सम्प्रदाय में जन्म ग्रहण करना ठीक है, परन्तु उसमें ...ना ठीक नहीं है। अत: आवश्यकता आज इस बात ...है कि हम मतान्धता से ऊपर उठें। सम्यक् विचार ...र वैज्ञानिक मानसिकता आवश्यक है। धर्म में युक्ति ...र विचार को ले आना जरूरी है। धर्म को वैज्ञानिक ...क्षा की तरह कसौटी पर कस कर ग्रहण करना ...गा। तब हम देखेंगे कि सभी धर्म मूलत: एक हैं। ...विचार के अभाव में ही धार्मिक संघर्ष हो रहे है।

के० ना० लाभ : रामकृष्ण भाव-आन्दोलन किस ...कार तीव्रता से फैल सकता है? इस संदर्भ में हमें क्या ...रना चाहिए?

सोमेश्वरानन्द : हमारे पास विभिन्न देवताओं की ...तिमाएँ पहले से ही मन्दिरों में प्रतिष्ठित है। उनके ...थान पर केवल रामकृष्ण—विवेकानन्द की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर देना उपयुक्त नहीं है। केवल प्रतिमा परिवर्तन से कुछ नहीं होता। रामकृष्ण विवेकानन्द का भाव ग्रहण करना होगा। उनके आदर्श और उद्देश्य को समझना जरूरी है।

के० ना० लाभ : क्या है वह आदर्श और उद्देश्य?

सोमेश्वरानन्द : आदर्श है मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों स्तरों पर विकास करना। 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।' को व्यावहारिक रूप देना ही रामकृष्ण भाव का क्रियान्वयन करना है। केवल रामकृष्ण संघ के साधु ही रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव को आगे ले जायेंगे, यह बात ठीक नहीं है। इसे आगे ले जाने के लिए गृहस्थ, छात्र, शिक्षक, मजदूर, किसान सब की जरूरत है। यह एक बहुमुखी आन्दोलन है। छात्रों-शिक्षकों को सोचना है कि ठाकुर-स्वामीजी के आदर्श के संदर्भ में हमें शैक्षणिक नीति कैसी बनानी चाहिए। इसके लिए कैसे कदम उठाने हैं। तरुणियों और महिलाओं को सोचना है कि ठाकुर-माँ-स्वामीजी के आदर्श को नारीजीवन में कैसे उतारा जा सकता है। नारी स्वाधीनता का वास्तविक कार्यक्रम क्या होगा। किसान-मजदूरों को सोचना है कि स्वामीजी ने शूद्र जागरण पर जो इतना अधिक जोर दिया था उस शूद्र जागरण के लिए कौन सा कदम उठाना है। राजनीतिज्ञों और अर्थशास्त्रियों को सोचना है कि स्वामीजी के भावानुसार किस प्रकार दरिद्रता मिटायी जाय। रामकृष्ण-विवेकानन्द के अनुरागियों को सोचना है कि व्यक्ति और समष्टि जीवन में रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव का वास्तविक प्रयोग कैसे होगा और इसके लिए क्या करना होगा?

के० ना० लाभ : रामकृष्ण संघ पुस्तकालय, औषधालय या राहत कार्यों के द्वारा क्या सरकार की सहायता ही नहीं कर रहा है? ये कार्य तो सरकार को करने हैं। फिर रामकृष्ण संघ की क्या प्रयोजनीयता है?

सोमेश्वरानन्द : देखिए, एक तो रामकृष्ण संघ केवल भौतिक सेवा का कार्य नहीं करता। इसके कार्य का दर्शन ही भिन्न है। यह सेवा नहीं है। यह अराधना है। इसमें अनासक्ति है। अनासक्त कर्म चित्त को शुद्ध करता है। और जैसा ठाकुर ने कहा है शुद्धचित्त और शुद्ध ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। अत: कर्म के द्वारा आत्मोपलब्धि ही इसका लक्ष्य है। दूसरी बात यह है कि दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी कार्य यदि हम सरकार पर ही सौंप दे तो (१) सरकार के हाथ में शक्ति केन्द्रीभूत हो जायगी जो गणतंत्र के लिए हितकर नहीं है। (२) स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा साधारण आदमी अपनी शक्ति का परिचय देता है और साथ-साथ इससे शक्ति का विकेन्द्रीकरण होता है। इसलिए सारे कार्य सरकार को सौंपना ठीक नहीं है। फिर, देश में पुनर्जागरण तभी आयगा जब हर आदमी यह सोचेगा कि देश की भलाई कैसे हो और अपने स्वाधीन चिन्तन के बाद कार्यक्रम में वह हाथ देगा।

रामकृष्ण मिशन दिखाता है कि कोई चाहे तो अपना दायित्व अपने ऊपर ले सकता है और सामाजिक हित के लिए काम कर सकता है। इससे सरकार पर निर्भरता का भाव दूर होगा।

तीसरे-विश्व के विकासशील देशों में अधिकतर तानाशाही या अधिनायकवाद है। इसका कारण सरकार पर अधिक निर्भरता और सरकार से अधिक अपेक्षाओं का होना है। स्वामीजी कहते थे कि किसी एक गाँव के विकास में यदि सारी दुनिया का धन लगा दो तो भी उसकी प्रकृत उन्नति नहीं होगी, जब तक कि उस गाँव के लोग स्वयं इसके लिए तत्पर नहीं हों। अतः रामकृष्ण संघ के सेवा कार्यों के मूल में एक वृहत् कल्याणकारी भावना कार्य करती है न कि सरकार की मदद करने की भावना।

के० ना० लाभ : स्वामीजी ने प्राचीन भारत की गरिमा लौटाने पर विशेष जोर दिया है। क्या रामकृष्ण संघ इक्कीसवीं सदी में भी प्राचीन भारत को ही लाना चाहता है?

सोमेश्वरानन्द : कभी नहीं। प्राचीन भारत में बहुत कुछ अच्छा था। खराबी भी थी। लेकिन प्राचीन भारत को जानना जरूरी है, क्योंकि इतिहास के ज्ञान के बिना शिक्षा पूर्ण नहीं होती। स्वामीजी कहते हैं कि इतिहास की शिक्षा लेकर आगे बढ़ो और नया भारत गढ़ो, ऐसा भारत जो प्राचीन भारत से भी अधिक महिमान्वित हो। स्वामीजी रूढ़िवादी नहीं थे, पुनरुत्थानवादी नहीं थे। वे सत्य युग से नवयुग--पौराणिक भारत नहीं—का निर्माण करना चाहते थे, जो भारत सर्वाङ्गीण जीवन को वरण करे, साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास भी करे। यह नया धर्म सार्वजनीन धर्म होगा, सबके बहिर्न्तर के पूर्ण विकास और सबके सुख, शान्ति और कल्याण का धर्म होगा।

के० ना० लाभ : स्वामीजी, मैंने आपका बहुत समय लिया। कृपया मेरी कृतज्ञता स्वीकार करें।

सोमेश्वरानन्द : धन्यवाद।

□

अवश्य पढ़िए !!

पढ़िए !

पुनर्जन्म-क्यों और कैसे ?

लेखक—स्वामी सत्प्रकाशानन्द

प्रस्तुत पुस्तक रामकृष्ण मठ के वरिष्ठ संन्यासी स्वामी सत्प्रकाशानन्द के बहुप्रशंसित लेख HOW IS A MAN REBORN ? का हिन्दी रूपान्तर है, जिसे सर्वसाधारण के लाभार्थ पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसमें पुनर्जन्म के सिद्धान्त की विश्वव्यापी स्वीकृति का कारण, पुनर्जन्म की स्मृति और उसकी सत्यता, आनुवंशिकता का अर्थ, व्यक्ति का जन्म कैसे होता है आदि कई जानने योग्य विषयों पर गंभीरता से विचार किया गया है। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। आकर्षक गेट अप ! सुन्दर छपाई !

मूल्य : ४.००

अद्वैत आश्रम
५, डिही इन्टाली रोड,
कलकत्ता—७०० ०१४

अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, रांची।

ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः॥

इस प्रणाम-मंत्र की रचना स्वामी विवेकानन्दजी ने १८९७ ई० में श्रीयुक्त नवगोपाल घोष के मकान में रामकृष्ण की मूर्ति-प्रतिष्ठा के अवसर पर पूजा के आसन पर बैठकर, मौखिक रूप से की थी। आज यह प्रणाम-मंत्र संसार के कई स्थानों पर, रामकृष्ण संघ के सभी केन्द्रों पर, श्रीरामकृष्ण की आरती के समय असंख्य व्यक्तियों द्वारा उच्चारित होता है। स्वाभावत: हमारे मन में यह प्रश्न उपस्थित होता है—स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण को 'अवतारवरिष्ठ' कहकर क्यों सम्बोधित किया? क्या यह सम्बोधन स्वामीजी के मुख से वैसे ही अचानक निकल गया? या, यह सम्बोधन स्वामीजी ने भावावेश में अपने गुरु के प्रति अतिशयोक्ति के रूप में किया था? अपने गुरु को तो सभी श्रेष्ठ कहते हैं—'मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः'। क्या यह सम्बोधन भी स्वामीजी की कट्टरता एवं अन्धविश्वास का प्रतीक है?

यदि हम रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो ऐसे कुछ प्रसंग और भी मिलते हैं, जहाँ पर स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण को 'अवतारवरिष्ठ' के रूप में स्पष्टत: स्वीकार किया है; वह भी भावावेश में आकर या अन्धविश्वास पर आधारित होकर नहीं, अपितु अपनी स्वानुभूति एवं विचार-बुद्धि के आधार पर। एकबार स्वामीजी का अपने शिष्य श्रीशरतचन्द्र चक्रवर्ती के साथ जो वार्तालाप हुआ था, उसके कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं; जो इस बात की पुष्टि करते हैं: [1]—

स्वामीजी—"वे (श्रीरामकृष्ण) कौन थे, और कितने बड़े थे, यह हम कोई भी अभी तक समझ नहीं सके। इसीलिए मैं उनकी बात जहाँ-तहाँ नहीं कहता हूँ। वे क्या थे, वह वे ही जानते थे, उनकी देह ही केवल मनुष्य की थी, आचरण में तो उन्हें देवत्व प्राप्त था।

शिष्य—अच्छा महाराज, क्या आप उन्हें अवतार मानते हैं?

स्वामीजी—पहले यह बता कि तेरे 'अवतार' शब्द का अर्थ क्या है?

शिष्य—क्यों? जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीगौरांग, बुद्ध आदि पुरुष।

स्वामीजी—तूने जिनका नाम लिया, मैं श्रीरामकृष्ण को इन सबसे बड़ा मानता हूँ—मानना तो छोटी बात है—जानता हूँ।

एकबार और इसी शिष्य के साथ वार्तालाप करते समय स्वामीजी ने कहा था,—"श्रीरामकृष्ण क्या हैं, वे कितने ही पूर्व अवतारों के जमे हुए भावराज्य के अधिराज हैं—इस बात को प्राणपण से तपस्या करके भी मैं रत्तीभर नहीं समझ सका। इसलिए उनके सम्बन्ध में संयत होकर ही बात करना उचित है।·· सर्व भावों का इस प्रकार समन्वय जगत् के इतिहास में क्या और कहीं भी ढूँढने पर मिल सकता है? इसीसे समझ ले, इनके रूप में कौन देह धारण करने आये थे। अवतार कहने से तो उन्हें छोटा कर दिया जाता है।[2]

१. वि० के संग में (षष्ठ संस्करण) पृष्ठ संख्या-२२३
२. वही-पृ० संख्या ३७८

'हिन्दू धर्म और श्रीरामकृष्ण' नामक प्रबंध में स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के बारे में लिखा है—"बारम्बार यह भारतभूमि मूर्च्छापन्न अर्थात् धर्मलुप्त होती रही है तथा भारत के भगवान अपनी आत्माभिव्यक्ति के द्वारा बारम्बार उसे पुनरुज्जीवित करते रहे हैं। किन्तु·· ···किसी भी अमावस्या की रात्रि ने इस पुण्यभूमि को इस प्रकार आच्छादित नहीं किया था। इस पतन की गंभीरता के सम्मुख पूर्व के सब पतन गोष्पद-चिह्न सदृश हैं। अतः इस प्रबोधन की समुज्ज्वल कान्ति में आर्यजाति के पूर्व-पूर्व युगों के प्रबोधन सूर्य के आलोक में नक्षत्रों की भाँति महिमारहित दिखायी देंगे तथा भारत के इस पुनरुत्थान के महान् शौर्य के समक्ष पूर्व-पूर्व युगों के एतादृश प्राचीन प्रताप बालकों की लीला जैसे प्रतीत होंगे।······इसी के निदर्शन स्वरूप परम-करुणा-सिन्धु श्रीभगवान वर्तमान युग में समस्त युगों की अपेक्षा अधिक सम्पूर्ण, सर्वभाव समन्वित, सर्वविद्या सम्पन्न युगावतार के रूप में प्रकट हुए हैं।"[3]

१८९४ ई० में, स्वामीजी ने अपने गुरुभाई स्वामी शिवानन्दजी को एक पत्र में लिखा था—"भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं और बुद्ध, चैतन्य इत्यादि एकदेशीय हैं, पर श्रीरामकृष्णदेव the latest and most perfect (सबकी अपेक्षा आधुनिक और सबसे पूर्ण) हैं—ज्ञान, भक्ति, 'वैराग्य, उदारता और लोक-हितैषणा—इन सब गुणों के वे मूर्तिस्वरूप हैं। किसी दूसरे के साथ क्या उनकी तुलना हो सकती है?······परन्तु क्षुद्र संकीर्णता उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध है, इसीसे मुझे दुःख होता है।[4]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वामीजी का श्रीरामकृष्ण के प्रति 'अवतारवरिष्ठ' सम्बोधन आकस्मिक नहीं था, और न ही वह अंधगुरुभक्ति का द्योतक है। हाँ, इतना अवश्य है कि वे धर्म के नाम पर संकीर्णता के विरोधी थे, इसीलिए उन्होंने श्रीरामकृष्ण के अनुयायी बनने के लिए यह शर्त रखी कि वे उन्हें अवतार के रूप में मानें। फिर, वे हमलोगों के संशयात्मक मन की दुर्बलता को भी जानते थे, जो हमें अवतार में विश्वास करने नहीं देती। जब उनके एक शिष्य ने उनसे कहा कि बहुतों का अभी श्रीरामकृष्ण पर अवतार के रूप में विश्वास नहीं हुआ है, तब स्वामीजी ने कहा था—"इस बात पर विश्वास करना क्या तूने ऐसा सुगम समझ रखा है? हमने उनको सब प्रकार से जाँचा, उनके मुँह से यह बात बारम्बार सुनी, चौबीस घण्टे उनके साथ रहे, फिर भी बीच-बीच में हमको सन्देह होता है, तो फिर औरों को क्या कहें?······हमारे ही समान देहधारी एक मनुष्य को ईश्वर कहकर निर्देश करना और उनपर विश्वास रखना बड़ा ही कठिन है।·····उनको चाहे जो कुछ कहो, चाहे जो कुछ समझो, महापुरुष मानो या ब्रह्मज्ञ, इसमें क्या धरा है? परन्तु श्रीगुरुदेव जैसे पुरुषोत्तम ने इससे पहले जगत् में और कभी जन्म नहीं लिया। संसार के घोर अन्धकार में अब यही महापुरुष ज्योतिःस्तम्भ स्वरूप हैं। उनकी ही ज्योति से मनुष्य संसार समुद्र के पार चले जायेंगे।"[5]

स्वामीजी ने इस प्रकार हमें छूट दी है कि हम श्रीरामकृष्ण को अवतार के रूप में मानें या न मानें, उनके गुणों का अनुध्यान करना भी यथेष्ट है। एक और कारण से स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण का अवतार के रूप में प्रचार नहीं किया। जब उनके शिष्य ने उनसे पूछा कि "आप श्रीरामकृष्ण को अवतार कहकर घोषित क्यों नहीं करते? आपमें तो शक्ति······भाषणशक्ति काफी है।" तब स्वामीजी ने उत्तर में कहा,—"इसका कारण उनके सम्बन्ध में मेरी अल्पज्ञता है। मुझे वे इतने बड़े लगते हैं कि उनके सम्बन्ध में कुछ भी कहने में मुझे भय है कि कहीं सत्य का विपर्यास न हो जाय, कहीं मैं इस

---

३. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, तृतीय भाग (तृतीय संस्करण) पृ० संख्या—७८

४. पत्रावली (चतुर्थ संस्करण) पृष्ठ संख्या २५९

५. वि० के संग में (पृष्ठ संस्करण) पृष्ठ संख्या-७२-७३

...के अनुसार उन्हें बड़ा करने के यत्न में उनका ...अपने ढाँचे में खींचकर उन्हें छोटा न कर डालूं ।"[६]

एक अन्य अवसर पर जब श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग गृही ...बंगाल के सुविख्यात कवि श्रीगिरीशचन्द्र घोष ने ...स्वामीजी को श्रीरामकृष्ण पर जीवनी लिखने का प्रवल आग्रह किया तब स्वामीजी ने इस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि उनको भय है कि वे शिव की मूर्ति बनाते-बनाते कहीं वन्दर का मुख न वना दें ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में वहुत ही संयत भाव से वोलते थे, उनकी जीवनी तो उन्होंने लिखी ही नहीं, एकमात्र व्याख्यान जो उनपर उन्होंने दिया था, वह "मेरे गुरुदेव' शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है । उपर्युक्त प्राय: सभी प्रसंग, जिन में स्वामीजी के श्रीरामकृष्ण सम्बन्धी विचार उद्धृत किये गये हैं—उनके निकट के शिष्यों के साथ या गुरुभाइयों के साथ वार्तालापों में से या पत्रों से लिये गये हैं । किन्तु सार्वजनिक रूप से उन्होंने श्रीरामकृष्ण का अवतार रूप से प्रचार कभी नहीं किया । इस परिप्रेक्ष्य में उनका श्रीरामकृष्ण के प्रति वह सम्बोधन अत्यंत महत्व रखता है, जिसके अर्थ पर हम अब कुछ विस्तार से विचार करेंगे । यद्यपि यह विषय अत्यंत गूढ है, साधना सापेक्ष है, तथा हमलोगों की साधारण बुद्धि के लिए अगम्य है, फिर भी हम इसके अर्थ पर यथासम्भव चर्चा करेंगे ।

रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष, श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज ने अपने इस विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा है कि वरिष्ठ शब्द आया है—'उरु' शब्द से, जिसका अर्थ होता है—'वड़ा' । 'वरिष्ठ' शब्द का अर्थ इसप्रकार हुआ—'सवसे वड़ा' । एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है । 'वर' शब्द का अर्थ होता है—'प्रिय', 'आदरणीय', उदाहरणार्थ—'मान्यवर' । इस प्रकार 'वरतम' या 'वरिष्ठ' का अर्थ हुआ 'प्रियतम' । श्रीरामकृष्ण प्रियतम हैं, क्योंकि युगोपयोगी जीवन तथा सन्देशद्वारा उन्होंने हममें से प्रत्येक की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान किया है और अपना अहैतुक प्रेम प्रकट किया है । स्वामीजी ने भी मानो इस प्रणाम-मंत्र द्वारा महावीर की निम्नलिखित प्रार्थना के सदृश भाव प्रकट किये हैं :—

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि ।
तथापि मम सर्वस्वः रामः कमललोचनः ॥

"श्रीनाथ (लक्ष्मीनारायण) एवं जानकीनाथ (श्रीरामचन्द्र) इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है, दोनों ही परमात्मा हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं ।"

किन्तु साधारणत: हम 'वरिष्ठ' शब्द का अर्थ 'सवसे वड़े' के रूप में ही लेते हैं । तो क्या स्वामीजी कहना चाहते हैं कि श्रीरामकृष्ण अवतारों में सर्वश्रेष्ठ हैं और अन्य अवतार उनसे छोटे हैं ? तो फिर श्रीरामकृष्ण की उस उक्ति का अर्थ क्या होगा, जो उन्होंने स्वामीजी से अपनी देह छोड़ने के दो दिन पूर्व कही थी—"जो राम थे, जो कृष्ण थे, वे ही अव इस शरीर में रामकृष्ण हैं,— 'तेरे वेदान्त के मत' से नहीं ।" परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली इन उक्तियों के अर्थ का सामंजस्य ढूंढने का हम प्रयास करेंगे । इस विषय की सुन्दर मीमांसा करते हुए रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के दशम अध्यक्ष श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने अपने एक व्यख्यान में कहा है—"कोई पूछ सकता है—एक अवतार तथा दूसरे अवतार के वीच पार्थक्य कैसे हो सकता है ! एक ही दिव्य सत्ता, एक ही ईश्वर राम, कृष्ण, गौरांग तथा रामकृष्ण के रूप में आते है । उनमें भेद कैसे हो सकता है ? मैं एक उदाहरण दूंगा । उतना उपयुक्त न होने पर भी मैं उसे आप लोगों के समक्ष रखूंगा, क्योंकि यह इस प्रश्न का स्पष्टीकरण काफी हद तक करता है । एक व्यक्ति विभिन्न नाटकों में भिन्न-भिन्न

६. वही पृ०-संख्या-२२४

भूमिकाओं में अभिनय करता है, और वह समूह का श्रेष्ठ अभिनेता घोषित किया जाता है। किन्तु फिर भी हम कहते हैं कि एक विशेष भूमिका में, एक विशेष अभिनय में वह सर्वोत्तम था, सर्वश्रेष्ठ था। इसका क्या मतलब है। इसका अर्थ है, उस विशेष भूमिका में वह अपनी अन्तर्निहित कला को प्रदर्शन करने का श्रेष्ठ अवसर पाता है जबकि दूसरी भूमिकाओं में उसे यह अवसर नहीं मिला। अतएव हम कहते हैं, "इस भूमिका में वह सर्वश्रेष्ठ है!"[७] इसी प्रकार, देश तथा काल की आवश्यकताओं के अनुसार अवतारगण विभिन्न लीलाएँ करते हैं।

इस बार वर्तमान युग के प्रयोजन के अनुसार भगवान ने श्रीरामकृष्ण के रूप में जो नर-लीला की है—वह अश्रुतपूर्व है। इस बार की भूमिका में उन्होंने पूर्व के सभी अवतार पुरुषों की श्रेष्ठ लीलाओं का सम्मिलित प्रदर्शन कर दिया है। साथ ही वर्तमान युग की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार कुछ ऐसी लीला का प्रदर्शन भी किया है, जो अपूर्व ही नहीं, कल्पनातीत भी है। श्रीराम की सत्यनिष्ठा, श्री कृष्ण का प्रेम भाव, बुद्ध का त्याग, आचार्य शंकर का अद्वैतभाव, श्रीगौरांग प्रभु का महाभाव, ईसा मसीह का सेवाभाव इत्यादि, भगवान श्रीरामकृष्ण देव के लीला-चरित्र में एक साथ फूट उठे हैं।

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाय वरु बचन न जाई॥

भगवान् श्रीराम ने सत्य के पालन के लिए पिता की आज्ञा स्वीकार कर चौदह वर्षों का कठोर वनवास ग्रहण कर लिया, सत्यनिष्ठा, माता-पिता के प्रति प्रेम आदि उनके जीवन चरित्र के विशेष पक्ष हैं। भगवान् श्रीरामकृष्ण ने न केवल सत्य का सोलहों आने पालन ही किया वरन् सत्य ही मानो उनके सिर पर सवार था, जो उन्हें असत्य के मार्ग पर जाने से रोक देता था। वे स्वयं कहते थे—"माता के पादपद्मों में फूल चढ़ाकर जब मैं सब कुछ त्याग करने लगा तब कहा, 'माँ यह लो अपनी शुचिता, और यह लो अपनी अशुचिता; यह लो अपना धर्म और यह लो अपना अधर्म, यह लो अपना पाप और यह लो अपना पुण्य; यह लो अपना भला और यह लो अपना बुरा, मुझे शुद्धा भक्ति दो।' परन्तु यह लो अपना सत्य और यह लो अपना असत्य, यह मैं नहीं कह सका।"[८]

एक दिन श्रीरामकृष्ण शम्भुचन्द्र मल्लिक के बगीचे में गये हुए थे, जहाँ उनका एक दवाखाना भी था। वहाँ पहुँचने पर श्रीरामकृष्ण को पेट में पीड़ा होने लगी। शम्भुचन्द्र उनसे बोले—"आपको मैं अफीम की एक दो गोलियाँ दूँगा, उन्हें आप वापस जाने के बाद खा लीजिये, आपके पेट का दर्द बन्द हो जाएगा।" थोड़ी देर बाद बातचीत कर वे जब लौटने लगे, तब इस बात को वे भूल गये। इस बीच दस बीस कदम आगे जाते ही उन्हें गोलियों की याद आयी। शीघ्र ही वे वापस आये। पर लौटकर देखते हैं कि शम्भुचन्द्र वहाँ से चले गये हैं। तब कम्पाउन्डर के पास से अफीम की दो गोलियाँ लेकर लौट चले। रास्ते पर आने पर न जाने क्या हो गया, पैर रास्ते की ओर न जाकर नाली की ओर ही खिंचने लगे। बहुत बार प्रयत्न करने पर भी उनके पैर सीधे जाने से इन्कार करते थे। तब निराश होकर रास्ते में बैठ गये और इसका कारण सोचने लगे। एकाएक उनके मन में बात आयी—"अरे हाँ! शम्भु ने तो कहा था कि 'मेरे पास से दो गोलियाँ लेते जाना' पर वैसा न करके उसे बिना बताये ही मैं उसके कम्पाउन्डर के पास से गोलियाँ लेकर जा रहा हूँ। इसी कारण माँ मुझे यहाँ से जाने नहीं देती होगी। इस तरह गोली ले जाने में तो असत्य भाषण और चोरी दोनों ही दोष होते हैं।" यह बात मन में आते ही वे तत्काल दवाखाने में गये। वहाँ वह कम्पाउन्डर नहीं था, इसलिए उन्होंने दरवाजे में से ही उन गोलियों की पुड़िया को भीतर डालकर "ये तुम्हारी गोलियाँ भीतर डाल दी हैं।" इस तरह

---

७. प्रबुद्ध भारत जुलाई, १९७३
८ श्रीरामकृष्ण वचनामृत तृतीय भाग पृ० १८०

...ओर से चिल्लाकर अपना रास्ता पकड़ा। अब इस बार ...र ठीक चलते थे और रास्ता भी ठीक दिखायी देता था। इस प्रकार के कितने ही दृष्टान्त उनके जीवन-चरित्र में दिखायी देते हैं; जो दर्शाते हैं कि सत्य ही मानो उनके कंधों पर सवार था।

भगवान् श्रीराम के समान ही भगवान् श्रीरामकृष्ण का भी अपने माता-पिता के प्रति अत्यधिक स्नेह तथा आदर था। वृन्दावन में जब वे तीर्थयात्रा करने गये तब तय हुआ कि वे वहीं रह जायेंगे पर 'दक्षिणेश्वर' मंदिर में उनकी गर्भधारिणी माता चन्द्रामणि देवी की सेवा कौन करेगा, यह सोचकर अपना निश्चय बदलकर वे कलकत्ता लौट आये

श्रीरामकृष्ण की गदाधर के रूप में बाल-लीला मानो श्रीकृष्ण की बाल-लीला की ही पुनरावृति थी। श्रीरामकृष्ण के पार्षद् स्वामी सारदानन्दजी के अनुसार "वयोवृद्ध महिलाएँ विशेषकर धर्मदास लाहा की पुत्री प्रसन्नमयी बालक के अन्दर बालगोपाल के दिव्य प्रकाश का अनुभव कर उसे पुत्र से अधिक स्नेह करती थीं और उनसे कुछ कम आयु की महिलाएँ उसी प्रकार उसे भगवान् श्रीकृष्ण का अंशसम्भूत मानकर उसके साथ सख्य भाव से सम्बद्ध हुई थीं।"[९]

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सिंहासन पर बैठाकर, सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधकर महाभारत का गठन किया था। स्वामी शिवानन्दजी (श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग पार्षद्) ने कहा था कि इस बार श्रीरामकृष्ण संसार की ब्रह्मकुण्डलिनी शक्ति को जगाकर आये हैं। इसके कारण भारत वर्ष में तथा अन्य देशों में एक नयी आध्यात्मिक चेतना का जागरण हुआ है।

भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र की विशेषता थी उनका त्याग। श्रीमाँ सारदा देवी के अनुसार श्रीरामकृष्ण के चरित्र का मूल मन्त्र 'त्याग' ही था। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार वे थे त्यागियों के बादशाह। कांचन-त्याग श्रीरामकृष्ण के अस्थि-मांस में इतना दृढ़ हो गया था कि पैसा का, यहाँ तक कि किसी धातु का स्पर्श करने से उनका दम घुटने लगता और उनके शरीर में बिच्छू के डंक मारने के समान पीड़ा होती थी तथा हाथ पैर टेढ़े-मेढ़े हो जाते थे। स्वामी विवेकानन्द ने, इस बात पर अविश्वास होने से एक बार परीक्षा करने के लिए, श्रीरामकृष्ण की अनुपस्थिति में उनके बिछावन के नीचे एक रुपये का सिक्का रख दिया। लौटने पर श्रीरामकृष्ण बिछावन पर बैठने गये, किन्तु तुरन्त चौंककर उठ खड़े हुए—मानो बिच्छू ने डंक मारा हो! भक्तों ने जब बिछावन झटका तो सिक्का गिर पड़ा। नरेन्द्र नाथ (स्वामी विवेकानन्द) लज्जित होकर कमरे में एक ओर बैठे रहे। श्रीरामकृष्ण ने नाराज न होकर हँसते हुए कहा—"ठीक है बेटा, गुरु की परीक्षा करने के बाद ही उन्हें ग्रहण करना।"

इसी प्रकार उनके कामासक्ति के त्याग की परीक्षा उनके एक अन्य अन्तरंग पार्षद् स्वामी योगानन्दजी ने ली थी। एक बार दक्षिणेश्वर में वे श्रीरामकृष्ण के कमरे में रात्रि विश्राम के लिए रह गये थे। मध्य रात्रि में उनकी नींद भंग हो जाने पर उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण अपने बिछौने पर नहीं हैं। उनके मन में भारी सन्देह हुआ—"तो क्या वे नौबतखाने में अपनी पत्नी के पास सोने चले गये हैं?" सन्देह निवारण के लिए वे छिपकर नौबतखाने के द्वार की ओर देखने लगे। किन्तु कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण को पंचवटी की ओर से आते देख लज्जित हो गये। श्रीरामकृष्ण उनका मुख देख कर सारी बातें समझ गये और आश्वासन देकर बोले—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, साधु को दिन में देखना रात में देखना, तब विश्वास करना!"[१०] इसीप्रकार मथुर बाबू आदि अनेकों ने उनकी कामासक्ति के त्याग की परीक्षा विभिन्न उपायों द्वारा ली थी। श्रीरामकृष्ण सभी स्त्रियों को यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी मातृभाव

---

९. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग भाग १ पृष्ठ ९९
१०. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग भाग ३ पृ०-१५४

से देखते थे। माँ सारदा की उन्होंने फलहारिनी काली-पूजा की रात में जगन्माता के रूप में, षोडशी पूजा की थी।

ईसा मसीह लोगों का पाप ग्रहण कर क्रूसारोपित हुए थे। श्रीरामकृष्ण को लोगों का पाप ग्रहण करने से गले का कैन्सर हो गया। किन्तु फिर, भी करुणावश, उन्होंने अतिकष्ट में भी उपदेश देना बन्द नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्होंने लोगों को 'पापी' कहने से इन्कार किया और कहा कि सभी में—नर मात्र में—नारायण विद्यमान हैं। उनकी सेवा करो। ईसा मसीह ने कुछ कुष्ठ के रोगियों को नीरोग किया था तथा पड़ोसियों की सेवा करने का उपदेश दिया था। भगवान् श्रीरामकृष्ण ने 'शिवज्ञान से जीव सेवा' का उपदेश दिया तथा अपने जीवन में उसका आचरण किया। तीर्थदर्शन के लिए देवघर जाते समय कुछ गरीबों को देखकर उनका दिल पिघल गया और जबतक मथुर बाबू ने उनलोगों को तेल, वस्त्र तथा भोजन नहीं दिया, उन्होंने आगे जाने से इन्कार कर दिया। इसी आदर्श से अनुप्राणित होकर बाद में स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी।

इस्लाम धर्म की विशेषता है—सामाजिक सभ्यता। एकबार पंचवटी के नीचे ध्यान करते समय श्रीरामकृष्ण ने देखा, एक दाढ़ी वाला मुसलमान तश्तरी से सबको, बिना जाति के भेद-भाव के, भात दे रहा है—श्रीरामकृष्ण ने भी उसमें से कुछ खाया। अपने उच्चकुल के अभिमान का त्याग करने के लिए, श्रीरामकृष्ण, दक्षिणेश्वर में एक मेहतर के घर रात्रि में चुपके से जाकर उसका पाखाना अपने बड़े-बड़े बालों से साफ किया करते थे।

शंकराचार्य अद्वैतवादी थे। निर्विकल्प समाधि की उन्होंने उपलब्धि की थी। तोतापुरी के पास अद्वैत ज्ञान की साधना करते समय तीन दिनो में ही, श्रीरामकृष्ण को निर्विकल्प समाधि का अनुभव हुआ था। इतना ही

११. श्रीरामकृष्ण वचनामृत ३-पृ० २६०
१२. वही पृ० ६६३,

नहीं, छः मास लगातार वे इस अवस्था में रहे थे। [illegible] कृपा से किसी प्रकार उनकी देह की [illegible] रखा [illegible] थी। बाद में जगन्माता ने आदेश दिया—'तुम भावमुख में रहो।' तब कहीं इस जगत में उनका मन लौट आया।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के विभिन्न भाव, महाभाव, इत्यादि भी श्रीरामकृष्ण की देह से प्रकट हुए थे। 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' के लेखक श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त ने एक बार श्रीरामकृष्ण को कहा—"मुझे जान पड़ता है, ईशु, चैतन्य और आप एक ही हैं।" श्रीरामकृष्ण ने कहा—"एक! एक! एक ही तो! वे (ईश्वर)—देखते नहीं हो—इसमें किस तरह से हैं।" यह कहकर उन्होंने अपने शरीर की ओर उँगली से इशारा किया।[11] स्वामी विवेकानन्द ने एकबार कहा था—"उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) कितनी ही बार कहा है, 'मैं ही अद्वैत, चैतन्य और नित्यानन्द हूँ। एक ही आधार में उन तीनों का समष्टि रूप' हूँ।[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न अवतारों के श्रेष्ठ भावपुष्पों से यह श्रीरामकृष्ण लीला रूपी गुलदस्ता सुसज्जित हुआ है। किन्तु इसमें कुछ, ऐसे भी भावपुष्प हैं, जिनका वर्णन न तो इतिहास में है, न वेद वेदान्त में, न शास्त्रों में। इतना ही नहीं, वे कल्पनातीत हैं। श्रीरामकृष्ण स्वयं कहते थे—"यहाँ की अनुभूतियाँ वेद-वेदान्त को पार कर गयी हैं।" एकबार वे गंगा के किनारे पर देख रहे थे—दो मल्लाहों में आपस में झगड़ा हो रहा है। एक मल्लाह ने जब दूसरे की पीठ पर जोर से तमाचा मारा तो अद्वैत ज्ञान में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण चीख कर रो उठे। उनका वह व्याकुल क्रन्दन काली मंदिर में उनके भतीजे हृदयराम के कानों में सहसा प्रविष्ट हो गया। शीघ्र ही वहाँ आकर उसने देखा कि उनकी पीठ आरक्त हो उठी है तथा सूज गयी है। क्रोध से अधीर होकर हृदयराम बारम्बार कहने लगा, "मामजी, मुझे बता दो कि तुमको किसने मारा है, मैं उसका सिर काट लूँ।" तदन्तर श्रीरामकृष्ण देव के कुछ

...ल होने पर जब उसने यह यह सुना कि मल्लाहों ...गड़े के फलस्वरूप उनकी पीठ पर चोट का वेदनाप्रद ...शान अंकित हुआ है, तब वह स्तम्भित हो कर ...वने लगा कि क्या यह भी कभी संभव हो सकता है? ...घटना को महाकवि गिरीशचन्द्र घोष ने स्वयं ...रामकृष्ण देव के श्रीमुख से सुना था। श्रीरामकृष्ण ...के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनेक घटनाओं के ...लेख किये जा सकते है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्था :मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

(गीता ४/७-८)

"हे भारत, जब जब धर्म की हानि और अधर्म की ...द्धि होती है तब तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूँ। ...ाधुपुरुषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने ...ालों का नाश करने के लिए तथा धर्म स्थापना करने ...के लिए मैं युग युग में प्रकट होता हूँ।"

अन्य अवतारों से तुलना करने पर श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में इस धर्म स्थापन की प्रक्रिया में हम निम्म-लिखित विशेषताएँ पाते हैं—

१. अन्य अवतारों ने केवल धर्म तथा अधर्म के बीच संघर्ष का समाधान किया था। वर्तमान युग की आवश्यकता थी–विज्ञान तथा धर्म के बीच एवं धर्म तथा धर्म के बीच के संघर्ष का समाधान करना,जिसे श्रीरामकृष्ण दव ने सम्पन्न किया। श्रीराम ने रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि दैत्यों का एवं श्रीकृष्ण ने कंस, शिशुपाल आदि का वधकर धर्म की स्थापना की थी; किन्तु, श्रीरामकृष्ण दव ने आधुनिक जड़वादी सभ्यता के कारण व्याप्त संशयवाद तथा नास्तिकता रूपी असुरों पर विजय प्राप्त की, इसीलिए स्वामी विवेकानन्द, अपने एक स्तोत्र में श्रीरामकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं— 'संशय राक्षस नाश महास्त्रं। पाश्चात्य दर्शन, संशयवाद तथा तर्कवाद के प्रतीक युवा नरेन्द्र नाथ ने जब श्रीरामकृष्ण से, मानो चुनौती के रूप में, यह प्रश्न पूछा, जो वे अक्सर महात्माओं से पूछा करते थे—"महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?" तब श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया—"हाँ बेटा, मैंने ईश्वर के दर्शन किये हैं, जिस प्रकार से मैं तुझे देख रहा हूँ, उससे अधिक प्रत्यक्ष रूप से मैं उनके दर्शन करा सकता हूँ।" जिस प्रकार एक वैज्ञानिक स्वयं प्रयोग कर दूसरों को भी प्रयोग करने की प्रेरणा देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामकृष्ण इस उत्तर के माध्यम से सभी को ईश्वर दर्शन का प्रयोग करने की प्रेरणा देते हैं। इसे हम धर्म की वैज्ञानिकता कह सकते हैं। धर्म तथा विज्ञान के समन्वय के अलावा इस युग की आवश्यकता थी—पूरे संसार के विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के बीच समन्वय लाने की। भगवान् श्रीरामकृष्ण देब ने माँ भवतारिणी का दर्शन प्राप्त करने के बाद हिन्दू धर्म के विभिन्न मार्गों का अवलम्बन कर वात्सल्य भाव, मधुर भाव आदि की साधना कर श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि का दर्शन प्राप्त किया, भैरवी ब्राह्मणी के पास तन्त्रों की साधना की, तोतापुरी के पास अद्वैत वेदान्त की साधना की, इतना ही नहीं, इस्लाम धर्म की साधना कर मुहम्मद पैगम्बर का दर्शन प्राप्त किया, ईसाई धर्म की साधना कर ईसा मसीह का दर्शन प्राप्त किया और तब उन्होंने संसार के समक्ष घोषणा की—'जितने मत उतने पथ'। सभी एक ही सत्य की ओर ले जाते हैं, अत: परस्पर विरोध का प्रश्न ही नहीं होता —इस सत्य की घोषणा श्रीरामकृष्ण ने स्वयं के जीवन में प्रयोग करने के बाद की। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण देव को अपने प्रणाम मन्त्र में कहा—**'स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्म-स्वरूपिणे'**। धर्मों की अनेकता की दुविधा हल करने में श्रीरामकृष्ण के महत्व-पूर्ण अवदान को अब संसार के ख्यात इतिहासकार, वैज्ञानिक तथा विचारक स्वीकार कर रहे हैं और इस पर गवेषणा भी कर रहे हैं।[13]

---

१३. God All —By Cloude Alan Stark.

२. श्रीराम श्रीकृष्ण आदि के समय में अधर्म की समस्या व्यक्तिपरक थी—कुछ विशिष्ट असुरों के अत्याचार से पृथ्वी पीड़ित थी, किन्तु आधुनिक युग में जड़वादी सभ्यता की आसुरी शक्ति ने पूरे विश्व में फैलकर लोगों को काम-कांचन लोलुप कर दिया है। श्रीरामकृष्ण ने अपने त्याग के ज्वलन्त उदाहरण द्वारा इस समस्या का समाधान किया है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—"मेरे गुरुदेव त्याग की साकार मूर्ति थे। काम कांचन पर उन्होंने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी और इस बात के वे प्रत्यक्ष उदाहरण भी थे। वे इन दोनों बातों की कल्पना के भी परे थे और इस शताब्दी के लिए ऐसे ही महापुरुषों की आवश्यकता है। आजकल के दिनों में ऐसे ही त्याग की आवश्यकता है, विशेषकर जब लोग यह समझते हैं कि उन चीजों के बिना वे एक मास भी जीवित नहीं रह सकते हैं, जिन्हें वे केवल 'आवश्यकताएँ' ही कहते है और जिन्हें वे दिन पर दिन अत्यधिक रूप से बढ़ाते जा रहे हैं। आजकल के समय में ही यह आवश्यक है कि कोई ऐसा मनुष्य उठकर संसार के अविश्वासी पुरुषों को यह दिखा दे कि संसार में आज भी एक ऐसा महापुरुष है जो संसार भर की सम्पत्ति तथा कीर्ति की एक तृण भर भी परवाह नहीं करता।[१४]

३. धर्म की स्थापना के लिए भगवान परशुराम ने मानसिक विधि का प्रयोग किया—अहिंस्यहिंस्यापि परिपालयेत्। किसी भी विधि से धर्म की स्थापना करो, चाहे कुछ भले लोगों का भी क्यों न संहार करना पड़े।'

श्रीराम तथा श्रीकृष्ण ने राजसिक विधि का प्रयोग किया—'अहिंसयापरिपालयेत्' 'बिना किसी का संहार किये ही धर्म की स्थापना करो।' उन्होंने दुष्टों का, पापियों का संहार नहीं किया, वरन उनका हृदय-परिवर्तन कर उन्हें सन्तों में परिवर्तित कर दिया। महाकवि गिरीश घोष जैसे अनेक दुराचारी, श्रीरामकृष्णदेव के संस्पर्श में आकर सन्त बन गये। श्रीगिरीश घोष अपना उदाहरण देकर कहा करते—"अन्य अवतारों ने धनुष्यबाण, सुदर्शनचक्र आदि के द्वारा दुराचारियों पर विजय प्राप्त की किन्तु श्रीरामकृष्ण ने तो प्रणाम अस्त्र के द्वारा दुराचारियों को पराजित कर दिया।"

उपर्युक्त बातों की सम्पुष्टि हमें स्वयं श्रीरामकृष्णदेव के कथन से मिलती है। "यहाँ पर बाहर का कोई नहीं है। तुमलोगों से एक गुप्त बात करता हूँ। उस दिन देखा, मेरे भीतर से सच्चिदानन्द बाहर आकर प्रकट होकर बोले, मैं ही युग युग में अवतार लेता हूँ। देखा, पूर्ण आविर्भाव, सत्वगुण का ऐश्वर्य है।"[१५]

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्दजी को एक पत्र में लिखा था—"रामकृष्ण अवतार की जन्मतिथि से सत्य युग का आरम्भ हुआ है। .... रामकृष्ण अवतार में नास्तिकता रूप म्लेच्छ निवह ज्ञान रूपी तलवार से नष्ट होंगे और सम्पूर्ण जगत भक्ति और प्रेम से एक सूत्र में बँध जायगा। साथ ही, इस अवतार में रजस—अर्थात् नाम-यश आदि की इच्छा का सर्वथा अभाव है। दूसरे शब्दों में, उसका जीवन धन्य है, जो इस अवतार के उपदेश को व्यवहार में लाये, चाहे वह उन्हें (इस अवतार को) स्वयं माने या न माने[16]

इस प्रकार हम देखते है कि स्वामी विवेकानन्द का श्रीरामकृष्णदेव के प्रति 'अवतारवरिष्ठ' सम्बोधन उनकी कट्टरता या अन्ध गुरुभक्ति का परिचायक नहीं है। इसे हमने विभिन्न दृष्टि कोणों से समझने का प्रयास किया है?

श्रीरामकृष्णदेव 'अवतार वरिष्ठ' हैं क्योंकि:—

१. वे हमारे 'वरतम' 'प्रियतम' हैं अति निकट के हैं।

२. पूर्व के सभी अवतारों के विशिष्ठ भावों का पुनरावर्तन श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में हुआ है।

३. वर्तमान युग की सभी समस्याओं का समाधान भी उनके जीवन तथा सन्देश के माध्यम से होता है—

१४. मेरे गुरुदेव—पृ ४९

१५. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भाग ३' पृ-६२८

१६. विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खंड—पृ० ३१७.

विज्ञान-सम्मत धर्म का स्थापन

(क) विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय-स्थापन

(ख) एकत्व की अनुभूति के आधार पर सभी

(ग) प्रकार के भेद भावों को मिटाकर, विश्व-बन्धुत्व' की भावना का पोषण

(घ) श्रीरामकृष्णदेव की लीला में सत्व गुण का ऐश्वर्य—तथा पूर्ण आविर्भाव

४. उनकी अनुभूतियाँ वेद-वेदान्त को भी पार कर गयी हैं।

५. वर्तमान युग के लिए वे सर्वाधिक उपयोगी एवं ग्रहणीय हैं क्योंकि ऐतिहासिक रूप से उनकी जीवन कथा अत्यन्त प्रामाणिक है। उनके वचन लिपिबद्ध हैं। उनके द्वारा व्यवहृत वस्तुएँ स्मृति-चिह्न आदि आज भी उपलब्ध हैं तथा कैमरे से खींची हुई उनकी वास्तविक छवि भी उपलब्ध है।

किन्तु हमें भूलना न होगा कि "जो राम थे जो कृष्ण थे, वे ही रामकृष्ण हैं"। रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने अपने एक व्याख्यान में कहा है—"ईश्वर को बड़ा-छोटा नहीं किया जा सकता। अतः बड़ा-छोटा बोलने से हम मुश्किल में पड़ जाएँगे। किन्तु हाँ, अभिव्यक्ति के रूप में यदि देखें—ईश्वर स्वयं को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करते हैं—कभी श्रीराम के रूप में, कभी श्रीकृष्ण के रूप में, कभी श्रीरामकृष्ण के रूप में इस प्रकार, अभिव्यक्ति की दृष्टि से देखें तो छोटे-बड़े का कुछ अन्दाज किया जा सकता है"।[17] हमें स्मरण रखना होगा कि एक ही ईश्वर युग के प्रयोजन के अनुसार भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में लीला कर रहे हैं तथा सर्वश्रेष्ठ लीला का प्रदर्शन श्रीरामकृष्ण अवतार में हुआ है।

वास्तव में इस गूढ़ विषय की ठीक-ठीक चर्चा करना सम्भव नहीं है। स्वामी सारदानन्दजी भी लिखते हैं—"हे मानव, धर्म-जगत् में श्रीरामकृष्णदेव का उच्चासन कहाँ पर प्रतिष्ठित है, यह निर्णय करना यदि तुम्हारे लिए सम्भव हुआ हो तो बताओ; किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ कहने का हम साहस न कर सके, केवल इतना ही हम कह सकते हैं कि उनके चरण-स्पर्श से निर्जीव भारत अत्यन्त पवित्र तथा जागृत हो उठा है एवं संसार के गौरव तथा आशा के स्थल पर उसने अपना अधिकार जमा लिया है—उनके मानव शरीर धारण करने के फलस्वरूप मानव देवताओं का भी पूज्य बन गया है और उनके द्वारा जिस शक्ति का जागरण हुआ है, उस अद्भुत् लीलाभिनय के आरम्भ मात्र को ही संसार ने स्वामी विवेकानन्दजी में अनुभव किया है"।[18] इसीलिए, स्वामी विवेकानन्द मानव मात्र का आह्वान करते हैं—"इस नवीन युग धर्म के प्रवर्तक भगवान श्रीरामकृष्ण पूर्वकालीन श्री युगधर्म प्रवर्तक के पुनः संस्कृत प्रकाश स्वरूप हैं।—हे मानव, यही विश्वास करो, इसकी धारणा करो।

"हे मानव, मृत व्यक्ति फिर से नहीं जीता, बीती हुई रात फिर से नहीं आती, नदी की उतरी बाढ़ फिर से नहीं लौटती, जीवात्मा दो बार एक ही देह धारण नहीं करती। अतः हे मनुष्य, अतीत की पूजा करने के बदले तुम्हें, बीती हुई बातों पर माथा पच्ची करने के बदले हम तुम्हें प्रस्तुत प्रयत्न के लिए बुलाते हैं, मिटे हुए मार्ग के खो जाने में वृथा शक्ति क्षय करने के बदले अभी बनाए हुए प्रशस्त और सन्निकट पथ पर चलने के लिए आह्वान करते हैं। हे बुद्धिमना समझ लो।

"जिस शक्ति के उन्मेषमात्र से दिग दिगन्त में उसकी प्रतिध्वनि जागरित हुई है, कल्पना की सहायता से उसकी पूर्णावस्था का अनुभव करो एवं वृथा सन्देह, दुर्बलता, तथा दास जाति-जन्य ईर्ष्या द्वेष का परित्याग कर इस महान् युगचक्र परिवर्तन में सहायक बनो।

"हम प्रभु के दास हैं। प्रभु के पुत्र हैं। प्रभु की लीला के सहायक हैं—इस विश्वास को अपने हृदय में दृढ़तापूर्वक धारण कर कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हो जाओ"।[19] □

१७. उद्बोधन, कार्तिक १३८८ पृ० ४८१.

१८. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, द्वितीय खण्ड, पृ.५१२

१९. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, द्वितीय खण्ड-पृ०-८

रामकृष्ण मिशन और बिहार-एक सर्वेक्षण

डा० काली किङ्कर दत्त

[स्व० के० के० दत्त, भारत के एक प्रख्यात ऐतिहासिक तथा पटना एवं मगध विश्वविद्यालयों को भूतपूर्व कुलपति थे। वे अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रणेता थे। उच्च शिक्षा में उनके योगदान को व्यापक मान्यता मिली है। अंग्रेजी में लिखित उनका यह निबंध पटना रामकृष्ण मिशन की स्वर्ण जयन्ती पर प्रकाशित स्मारिका (Souvenir) में छपा था जिसके आधार पर इस लेख को अद्यतन कर डा० विमलेश्वर डे ने प्रस्तुत किया है—सं०]

रामकृष्ण मिशन मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान तथा सांस्कृतिक विकास में योगदान देनेवाली संस्थाओं में से अन्यतम गरिमा सम्पन्न (noblest) संस्थान रही है। हमारी प्राचीन संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को दुनिया के सामने इसने प्रसारित किया है तथा नयी एवं प्राचीन संस्कृतियों के समन्वय में यह सहायक भी हुआ है। दुनिया के चारों ओर इसने प्रेम, उदारता, शान्ति और समन्वय की वाणी सुनायी है—जो भारत का विश्व के लिए सर्वश्रेष्ठ उपहार मानी जाती है।

रामकृष्ण परमहंस (१८३६-१८८६) एवं उनके महान शिष्य, स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२) सब धर्मों के समन्वय में विश्वास रखते थे।

बिहार, जहाँ भारतीय सभ्यता ने स्वयं को प्रकट किया, रामकृष्ण मिशन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। श्रीरामकृष्ण १८६८ में एक ही बार बिहार में आये जब वाराणसी जाने के क्रम में वे देवघर में रुके थे। स्थानीय लोगों की गरीबी से प्रभावित होकर श्रीरामकृष्ण ने मथुर बाबू को, जो उनके भ्रमण का सारा खर्च वहन कर रहे थे, कहा कि वाराणसी जाने के पहले उन लोगों को भर पेट खिलाना है। मथुर बाबू ने उनके आदेश का, सब पीड़ितों को वस्त्र एवं भोजन दे कर, पालन किया।

श्री रामकृष्ण के अंतरंग शिष्यों में एक बिहार के बालक थे—जिनका नाम राखतू राम था, जो बाद में स्वामी अद्भुतानन्द होकर विख्यात हुए। उन्होंने छपरा जिले के किसी एक गाँव के एक गरीब भेंड़-पालक परिवार में जन्म लिया था।

अपने पिता-माता की मृत्यु के बाद, जब वे मात्र पाँच वर्ष के थे, उन्हें उनके एक परिवार के सदस्य कलकत्ता ले गये एवं श्रीरामकृष्ण के एक भक्त रामचन्द्र दत्त के घर पर नौकर के रूप में रख दिया। राखतू राम को श्रीरामकृष्ण का प्रथम दर्शन मिला जब वे जनवरी, १८८० को अपने मालिक के साथ दक्षिणेश्वर गये। उन्हें देखकर ही श्रीरामकृष्ण ने कहा, "आह, इसमें साधु के सभी लक्षण हैं—हम देख रहे हैं।" रामचन्द्रदत्त ने दूसरे महीने में फल और मिठाइयों के साथ उन्हें दक्षिणेश्वर भेजा। वहाँ के पवित्र वातावरण से वे इतने प्रभावित हुए कि फिर वे अपने मालिक के पास लौटे ही नहीं। जून १८८१ में दक्षिणेश्वर के मन्दिर में कुछ काम करने के लिए उन्हें नियुक्त किया गया। इससे श्रीरामकृष्ण की —जो उन्हें अपने पुत्रवत् मानते थे—सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। श्रीरामकृष्ण के देहान्त के बाद उन्होंने कलकत्ता में रहनेवाले सैकड़ों उत्तर भारतीयों के बीच अपने गुरु की शिक्षा एवं उपदेश का प्रचार किया। इनके प्रति स्वामी विवेकानन्द की अपार श्रद्धा थी।

स्वामीजी अप्रैल, १८८६ ई० को तारक एवं काली, जो बाद में क्रमशः स्वामीजी शिवानन्द एवं स्वामी अभेदानन्द हुए, के साथ बोधगया गये थे। बोध गया में वे चार दिन वहाँ के महन्त के अतिथि बन

कर रहे। बोधि वृक्ष के नीचे घंटों के लिए वे ध्यान पर बैठे एवं बुद्ध की करुणा को हृदयगंम किया। स्वामी विवेकानन्द अखंडानन्द के साथ भागलपुर तथा वैद्यनाथ धाम १८९० में गये थे। भागलपुर में वे कुमार नित्यानन्द के अतिथि थे जो इन दोनों से काफी प्रभावित हुए।

दूसरे दिन श्रीसिन्हा के गृह शिक्षक, मन्मथ नाथ चौधरी ने उन्हें अपने साथ रहने के लिए आमन्त्रित किया। जून, १९०६ को मन्मथ नाथ ने स्वामी विवेकानन्द के एक शिष्य को लिखा था "अगस्त, १८९० की एक सुबह, स्वामी विवेकानन्द स्वामी अखंडानन्द के साथ मेरे यहाँ अकस्मात आये। उन्हें साधारण साधु समझकर, उनके प्रति मैंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। हमलोग एक साथ बैठे थे। भोजन के बाद उन्हें अशिक्षित जानकर मैंने उनके साथ वार्तालाप नहीं किया। मैंने बौद्धमत की एक पुस्तक का अनुवाद पढ़ना शुरू किया। कुछ समय के बाद, स्वामीजी ने मुझे पूछा, "मैं कौनसी पुस्तक पढ़ रहा हूँ।' जवाब में मैंने पुस्तक का शीर्षक बतलाया और उनसे पूछा "क्या आप अंगरेजी जानते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, थोड़ी-थोड़ी"। तब उनसे मैंने वार्तालाप किया—बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में। तुरंत मुझे पता चला कि वे मुझसे हजारों गुणा अधिक शिक्षित थे। तब उनके संस्कृत के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए, जितनी उपनिषदें मेरे पास थीं, मैंने लायीं और उनसे बहुत से जटिल एवं गंभीर प्रश्न पूछे। उनके प्रबोधक उत्तरों से मैंने देखा कि शास्त्रीय ग्रन्थों के बारे में उनका ज्ञान आश्चर्य जनक था एवं जिस तरह उन्होंने उनकी आवृति की वह बहुत ही आकर्षक थी। इससे उनके अंग्रेजी, संस्कृत और योग में असाधारण ज्ञान के बारे में भी मैं दृढ़रूप से निश्चित हुआ और उनके प्रति आकृष्ट हुआ। मैं उनका इतना भक्त हो गया कि मैंने उन्हें भागलपुर में स्थायी रूप से रहने के लिए बहुत आग्रह किया। "एकबार मैं ने देखा कि वे एक सुर गुनगुना रहे हैं। मैंने पूछा, 'क्या आप गाना भी गाते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया 'थोड़ा, थोड़ा'। जब हमलोगों ने उन्हें गाने के लिए कहा तो उन्होंने गाया और सुनकर मुझे लगा कि संगीत में वे पारंगत थे। दूसरे दिन, संध्या में स्वामीजी की स्वीकृति लेकर कुछ गायकों को निमंत्रित किया गया। यह सोचकर कि ९ बजे तक संगीत समाप्त हो जायगा, मैंने उन लोगों के लिए भोजन का इन्तजाम नहीं किया था। स्वामीजी लगातार सुबह २/३ बजे तक गाते रहे। सभी श्रोता इतने मुग्ध हुए थे कि कोई जा नहीं सका। कैलास बाबू ने, जो स्वामीजी के साथ संगत कर रहे दे, आखिर में अंगुलियाँ दुःखने के कारण बजाना बन्द कर दिया। ऐसी अति मानवीय शक्ति मैंने कभी नहीं देखी, न पुनः देखने की आशा है।

एक दिन मैंने प्रस्ताव किया कि मैं उनको भागलपुर के सम्पन्न व्यक्तियों के साथ परिचय करा दूँगा और मैं उन्हें अपनी गाड़ी में ले जाऊँगा। लेकिन उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि "यह संन्यासी का धर्म नहीं है कि वे धनी लोगों से मिलें।" उनके इस त्याग ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

स्वामीजी जानते थे कि मैं उन्हें आसानी से भागलपुर छोड़ने नहीं दूँगा। अतः, एक दिन जब मैं बाहर था, वे मौका देखकर चले गये। लौटने के बाद मैंने उन्हें ढूँढ़ने की बहुत चेष्टा की, लेकिन कहीं भी वे नहीं मिले।

मेरी इच्छा थी कि फिर एकबार उनके अमेरिका से लौटने के बाद उन्हें भागलपुर लाऊँ। लेकिन समय एवं सुविधा के अभाव में वे नहीं आ पाये।

भागलपुर छोड़ने के पहले, स्वामीजी का स्थानीय कुछ जैन विद्वानों से दीर्घकालीन पांडित्य पूर्ण विचार-विनिमय हुआ। स्वामीजी वैद्यनाथ धाम भी गये थे जहाँ श्री अरविन्द के नाना, राजनारायण बसु से उनका साक्षात्कार हुआ था। स्वामीजी दिसम्बर १०, १८९८ को पुनः वैद्यनाथ धाम गये और १८९९ की जनवरी के अंत तक रहे। वहाँ उन्होंने अपने गुरु के दृष्टान्त का अनुकरण किया कि मनुष्य ईश्वर का वास्तविक प्रकाश है और मानव सेवा ही धर्म है।

अपने जीवन काल के अन्तिम वर्ष १९०२ में विवेकानन्द बोधगया दुबारे गये और कुछ ऐतिहासिक

एवं सांस्कृतिक भूमि से महत्वपूर्ण स्थानों को देखा जिससे वे गंभीर रूप से प्रभावित हुए। ९ फरवरी, १९०२ ई० के एक पत्र में उन्होंने लिखा था: "मैंने बहुत से नये तथ्यों का संग्रह एवं बौद्ध साहित्य से संग्रह किया है। बौद्ध धर्म एवं नव-हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे मन में एक सम्पूर्ण क्रांति हो गयी है। १९०४ ई० की जनवरी में उनके प्रति गहरी श्रद्धा रखने वाली आइरिश शिष्या भगिनी निवेदिता (कुमारी मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल) ने पहली बार बोध गया का दर्शन किया। यह तात्पर्यपूर्ण है कि सर्व-प्रथम बिहार में ही भगिनी निवेदिता ने श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की वाणियों का प्रचार किया। १९०४ में उन्होंने बांकीपुर में भाषण दिया था।

१९०९ में रामकृष्ण मिशन पंजीकृत संस्था बनी। सारे भारत और बाहर के कई देशों में इसके केन्द्र हैं। बिहार के पटना, जमशेदपुर, राँची, जामताड़ा, देवघर, डुमरी एवं कटिहार में इसके केन्द्र हैं।

बिहार में मिशन का सबसे पहला केन्द्र १९२० ई० में जमशेदपुर में स्थापित हुआ। धार्मिक प्रवचनों, ध्यान, उपासना, कीर्तन आदि यहाँ नियमित रूप से होते हैं। यह केन्द्र ५ उच्च विद्यालय, ४ माध्यमिक, ३ उच्च प्राइमरी और २ निम्न प्राइमरी विद्यालयों का संचालन करता है।

जामताड़ा में १९२१ ई० में दूसरा केन्द्र स्थापित हुआ। देवघर में १९२२ ई० में केन्द्र स्थापित हुआ। रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ यहाँ का एक आदर्श आवासीय विद्यालय है जहाँ से अनेकानेक स्वार्थ त्यागी सामान्य लोगों के कल्याण कार्य में प्रशिक्षित हुए।

पटना में रामकृष्ण मिशन आश्रम १९२२ में स्थापित हुआ। आश्रम उन दिनों एक "मॉर्निंग स्टार" नामक पत्रिका प्रकाशित करता था जिसकी एक संख्या में मैंने एक लेख लिखा था। इस आश्रम के छात्रावास की नींव १९२७ में डाली गयी थी। इसमें उन दिनों कुल १२ छात्र रहते थे

रामकृष्ण मिशन श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के वार्षिक जन्मतिथि-उत्सव मनाता रहा है। इन अवसरों पर सभाएँ होती हैं जिन्हें जाने माने भक्त सम्बोधित करते हैं। भजनों, खेल-कूदों की प्रतियोगिताओं तथा दरिद्र नारायणों की सेवा आदि के उल्लेखनीय कार्यक्रम होते हैं। इन अवसरों पर सर्व धर्म समन्वय का एक शानदार जुलूस भी सड़कों से निकाला जाता था जिसमें हर धर्म के लोग शामिल होते थे।

स्वामी शिवानन्द १५ फरवरी १९२८ को पटना पधारे थे। उनके आध्यात्मिक प्रवचनों ने बिहार के अनेकानेक लोगों को आध्यात्मिक प्रेरणा से भर दिया था।

१९२९ में पटना आश्रम ने "राष्ट्र निर्माता: विवेकानन्द" नामक एक धार्मिक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें विभिन्न, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का सिंहावलोकन किया गया—स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं के दृष्टिकोण से। इस समय आश्रम द्वारा कई नैश विद्यालय पटना और पटना के बाहर-चलाये जाने लगे। इसी वर्ष आश्रम में कालीपूजा का शुभारंभ हुआ।

स्वामी अखंडानन्द, मठ एवं मिशन के तृतीय अध्यक्ष तथा स्वामी विज्ञानानन्द-चतुर्थ अध्यक्ष, कभी-कभी पटना आते थे।

कटिहार में केन्द्र १९२६ में स्थापित हुआ और राँची केन्द्र मोराबादी पहाड़ के नीचे १९३० ई० में स्थापित हुआ।

पटना केन्द्र को नये एवं स्थायी स्थान में दिसम्बर ८, १९३० में लाया गया, जब आश्रम ने एक आम के बगीचे को, जिसमें ७ बीघा जमीन थी १४,०००/-रुपये में इसके मालिक, अब्दुल गफूर, से खरीदा। इस रकम का अधिकांश स्व० भुवनेश्वर दत्त की विधवा पत्नी ने दान किया था। इसके दो वर्षों में कुछ सेवाओं का कार्य आरम्भ हुआ जैसे स्व० भुवनेश्वर दत्त की स्मृति में एक दातव्य

होमियोपैथिक चिकित्सालय, अद्भुतानन्द की स्मृति में एक उच्च प्राथमिक विद्यालय, और स्वामी तुरीयानन्द की स्मृति में एक लोक पुस्तकालय।

कोष के अभाव में आश्रम के मासिक पत्र "मॉर्निंग स्टार' का प्रकाशन दिसम्बर १९३२ में बन्द हो गया। किन्तु आश्रम का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक योगदान १९३३ में "इन्डिया इन द मेकिंग" नामक पुस्तक के प्रकाशन के रूप में हुआ।

लोगों में धार्मिक चेतना के विकास के लिए एवं उन्हें मानवीय सभ्यता के सही-आदर्शों को समझने में समर्थ करने के लिए, आश्रम नियमित रूप से धर्मशास्त्रों पर कक्षाओं का आयोजन करता रहा। पटना और इसके बाहर भाषणों एवं विचार-गोष्ठियों के आयोजन करता रहा। १९४९ में रामकृष्ण के जन्मतिथि-उत्सव की अध्यक्षता करते हुए उस समय के बिहार के राज्यपाल, श्री एम० एस० अणे ने जो एक सदाचारी एवं धार्मिक व्यक्ति थे, अपने भाषण में कहा "मुझे कोई सन्देह नहीं कि स्थानीय आश्रम ने अपनी स्थापना के २७ साल के दौरान बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अब पटना के निवासियों पर यह अपना नैतिक तथा औचित्यपूर्ण दावा कर सकता है कि वे आश्रम के कार्यों को भली-भाँति और विस्तृत पैमाने पर चलाने के लिए इसे हर प्रकार से सहायता प्रदान करें।"

साधारण शल्य रोगों तथा प्राथमिक सहायता (first-aid) के रोगियों के लिए ६ नवम्बर, १९४९ से पटना आश्रम में एक शल्य तथा प्राथमिक सहायता विभाग खोले गये। इनका उद्घाटन बिहार के स्वास्थ मंत्री श्री जगलाल चौधरी ने किया। रेड क्रास सोसाइटी के अध्यक्ष श्री एम० एस० अणे ने इस कार्य के लिए ३५५० रुपयों का अनुदान दिया। इसके अलावे कुछ जनसाधारण से भी रुपये लिये गये। इसके लिए कर्नल एस०के० वोस का दान उल्लेखनीय है।

पटना केन्द्र के सम्बन्ध में एक तात्पर्यपूर्ण घटना यह थी कि स्वर्गीय डॉ० टी० एन० बनर्जी, जो एक बहुत ख्यातिपूर्ण चिकित्सक थे, के उदार दान से एक मन्दिर एवं उससे संलग्न उपासना हाल का निर्माण हुआ। उन्होंने इस कार्य के लिए १०,००० रुपये दिये थे। इससे बहुत दिनों की एक आकांक्षा की पूर्ति हुई। श्रीमत् स्वामी विरजानन्दजी महाराज, मिशन के छठे अध्यक्ष, ने इसका उद्घाटन किया एवं मन्दिर तथा उपासना हाल को मार्च २९, १९५० को लोक-मंगल के लिए समर्पित किया। श्रीरामकृष्ण की संगमर्मर की मूर्ति की प्रतिष्ठा मिशन के ७वें अध्यक्ष, श्रीमत् स्वामी शंकरानन्दजी ने १६ मार्च, १९५३ ई० को की। इसका व्यय पटना के श्रीनरेन्द्र नाथ के दान से सम्पन्न हुआ। इस पावन अवसर पर बहुत सी सभाएँ आयोजित हुईं। वक्ताओं में मुख्य थे मिशन के महासचिव, स्वामी माधवानन्दजी, स्वामी ओंकारानन्दजी एवं स्वामी रंगनाथानन्दजी।

श्रीमत् स्वामी शंकरानन्दजी ने तुरीयानन्द ग्रन्थागार एवं निःशुल्क वाचनालय की नींव सितम्बर' १९५४ को डाली। निर्माण कार्य १९५६ ई० में सम्पूर्ण हुआ एवं इसका उद्घाटन तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० एस. राधाकृष्णन् ने २१ मार्च, १९५६ को किया। पुस्तकालय भवन के निर्माण में १ लाख, ९ हजार रुपये खर्च हुए, जिनमें केन्द्रीय एवं राज्य सरकार ने क्रमशः ६०,००० एवं १०,००० रुपये दिये। शेष रुपये जन साधारण से संग्रह किये गये। पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की पुस्तकें हैं।

पटना मिशन की एक उल्लेखनीय उपलब्धि १९५७-५८ में हुई जब छात्रावास की स्थिति में प्रगति हुई। १९२७ से ही यह अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई कर रहा था। इसकी स्थिति में स्थायित्व प्रदान करने के लिए, जिससे गरीब तथा प्रतिभाशाली छात्रों की सहायता हो, पटना के एक प्रमुख निवासी, श्री लोली सेन ने अपनी पत्नी स्व० श्रीमती प्रतिभा सेन की स्मृति में एक स्थायी अनुदान दिया। श्री लोली सेन ने इसके अतिरिक्त, आश्रम की जमीन की दक्षिण दिशा में छात्रावास के लिए सरकार के माध्यम से एक भूखंड क्रय

करने के लिए १२००० रुपये दिये। अगस्त २०,१९५८ को छात्रावास भवन का शिलान्यास मिशन के तत्कालीन उपाध्यक्ष स्वामी विशुद्धानन्दजी ने किया। इसका निर्माण १९५९ में सम्पूर्ण हुआ।

एक बड़े ही प्रभावोत्पादक अनुष्ठान में ,९ अक्टूबर, १९५९ ई० को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने छात्रावास-भवन का उद्घाटन करते हुए कहा कि रामकृष्ण मिशन से मेरा पहले से सम्पर्क है। मिशन की सेवाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि ये सेवाएँ मनुष्य तथा चरित्र निर्माण के साथ जुड़ी हैं। उन्होंने आशा व्यक्त की "रामकृष्ण मिशन नैतिक वाता-वरण का केन्द्र बनेगा और यहाँ से ऐसा आलोक विकीर्ण होगा जिससे युवजन अपना चरित्र गढ़ेंगे ताकि देश एवं जाति की सेवा के लिए वे अच्छे मनुष्य बन सकें"। सचमुच, यह एक बहुत महत्वपूर्ण संदेश था।

प्राकृतिक दुर्घटनाओं से ग्रस्त हो जाने पर लोगों के दुःख, कष्ट के निवारण में, व्यापक राहत कार्यों को चला कर, आश्रम ने एक उल्लेख-नीय योगदान दिया है। दुर्भिक्ष में संताल परगना में (१८९७), बाढ़ में (भागलपुर जिला १८९९) एवं पटना में (१९२३), प्लेग रोग फैल जाने के समय भागलपुर (१९०४,१९०५), भूकम्प से विध्वस्त पटना, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, छपरा, दरभंगा (१९३४), पूर्व बंगला देश से आये शरणार्थियों (१९५०) की सहायता में मिशन का सेवाकार्य सर्वविदित है।

राँची से ९ मील दूर डुंगरी में स्थित रामकृष्ण मिशन टी० बी० सेनेटोरियम में रोगियों की चिकित्सा होती है। २८२ एकड़ जमीन पर स्थित इस चिकित्सा केन्द्र में बहुत आधुनिक उपकरण हैं जिनके कारण चिकित्सा वैज्ञानिक विधियों द्वारा की जाती है। १९५१ में केवल ३२ शय्याओं के साथ इसका प्रारम्भ हुआ और बाद में संख्या बढ़कर २८० तक पहुँची। इसके सम्पोषण के लिए एक दानशील व्यक्ति ने दान दिया जिससे प्रति वर्ष ४०,००० रुपये प्राप्त होते हैं। यह रामकृष्ण मिशन के इतिहास में एक प्रेरणादायी घटना है।

स्वामी विवेकानन्द का जन्मशती उत्सव १७ जनवरी १९६३ से शुरू हुआ और जनवरी १९६४ में समाप्त हुआ। भारत के भूतपूर्व प्रधान न्यायधीश, श्री बी० पी० सिन्हा ने इसका उद्घाटन किया एवं बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल, श्री ए. एस. आयंगर ने समापन सभा की अध्यक्षता की। यह वर्ष-व्यापी उत्सव पटना आश्रम के सचिव स्वामी वीतशोकानन्द की देख-रेख में बड़े उत्साह एवं उद्दीपन से सुसम्पन्न हुआ।

जन्मशताब्दी समारोह के उपलक्ष में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने संदेश में कहा 'इस धरातल में महान आत्माएँ सर्वदा प्रेरणा का स्रोत रही हैं एवं स्वामी विवेकानन्द ने अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के द्वारा लोगों को जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया है। जो आदर्श उनके जीवन का लक्ष्य था उसने मानवीय भाईचारे के बोध को दुनिया के लिए तात्पर्यमय किया—जो दुनिया रंग-भेद के पूर्वाग्रह में ग्रस्त थी एवं जिसका स्रोत मनुष्य का दासत्व था। उनके आध्यात्मिक विचारों ने सारी दुनिया के सम्प्रदायों तथा मानव के विवेक को जागृत किया। वे प्राचीन वैदिक सभ्यता की महानता को पाश्चात्य देशों को समझाने में सफल हुए। ......स्वामी विवेकानन्द की जन्म-शताब्दी ने जो कुछ भी उत्तम तथा श्रेष्ठ हैं उनके बारे में याद दिलायी है"

श्री गंगाशरण सिंह एम० पी० ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द शंकराचार्य जैसे महान थे। वे दुनिया के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे।.....

पटना का रामकृष्ण मिशन बिहार के अनेक व्यक्तियों के लिए प्रेरणा का एक विलक्षण स्रोत रहा है। इसके विभिन्न धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्य ही इस स्रोत के आधार हैं। अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि कुछ वर्ष पहले स्वामी वीतशोकानन्द (तत्कालीन सचिव) को उनके प्रगाढ़ पांडित्य, समर्पित

जीवन एवं उदार दृष्टिकोण के लिए सबका प्रेम एवं श्रद्धा मिली। वे अब इस दुनिया में नहीं हैं। उनकी आत्मा को शाश्वत शान्ति मिले—यह मेरी कामना है।

१९६२ ई० में स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज इस आश्रम में सचिव के रूप में आये। उन्होंने १९८६ के १४ अप्रैल को अवकाश ग्रहण कर लिया। उनके कार्यकाल में लगभग प्रतिवर्ष ऐतिहासिक महत्व की स्मारिका का प्रकाशन होने लगा। साथ ही ५ साधुओं के लिए आवासीय भवन का निर्माण हुआ। श्रीरामकृष्ण के पुराने मंदिर को परिष्कृतकर एक बड़े और भव्य नाट्य मंदिर का निर्माण किया गया। फिर आश्रम के कार्यालय-भवन का भी निर्माण इन्होंने किया। कई कारणों से यह निर्णय लिया गया कि पटना मिशन-प्राङ्गण से पुराने विद्यालय को हटाकर यहाँ एक एलोपैथी चिकित्सालय खोला जाय। मिशन के सहायक सचिव, स्वामी शक्तिदानन्दजी महाराज ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनके अथक प्रयास से ही विद्यालय को हटाकर चिकित्सालय का निर्माण किया जा सका। पियरलेस कम्पनी के रजत जयन्ती स्मारक द्वारा १ लाख रुपये के अनुदान से अब यह चिकित्सालय लगभग तैयार है।

स्वामी वेदान्तानन्दजी की प्रेरणा और रांची रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन सचिव स्वामी बुद्धानन्दजी तथा सहायक सचिव स्वामी वेदानन्दजी के सक्रिय सहयोग से इससे पूर्व ही सन् १९६४ ई. के २२ अगस्त (श्रावणी पूर्णिमा) को रामकृष्ण आश्रम की स्थापना हुई जिसे रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के सत् परामर्श पर बाद में श्रीरामकृष्ण-अद्भुतानन्द आश्रम के नाम से रूपान्तरित कर दिया गया क्योंकि छपरा ही श्रीरामकृष्ण के एक मात्र गैर-बंगाली अंतरंग शिष्य लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) का जन्म-नगर है।

स्वामी वेदान्तानन्द के कार्यकाल में आश्रम में अनेक साधु-संतों एवं मनीषियों के प्रवचन तथा सम्मेलनों एवं विचार गोष्ठियों के आयोजन हुए। 'विवेक शिखा' (मासिक पत्रिका) के प्रकाशन में भी यह आश्रम महत्वपूर्ण सहयोग करता रहा है।

१४ अप्रैल, १९८६ से स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज यहाँ सचिव के रूप में कार्यरत हैं। इन्होंने पुराने सभी कार्यक्रमों को चलाये रखा है। इनके गत्यात्मक व्यक्तित्व (Dynamic Personality) से आश्रम के विकास की अनेक संभावनाएँ हैं। ●

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, रांची

स्थापना :

कलकत्ता के सुप्रसिद्ध टैगोर परिवार की एक उदार महिला के द्वारा प्रदत्त ०.३ एकड़ भूमि पर एक छोटे से होमियोपैथिक चिकित्सालय के रूप में श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज, जिन्होंने आगे चलकर रामकृष्ण मठ एवं मिशन के अष्टम महाध्यक्ष के पद को सुशोभित किया, के द्वारा सन् १९२७ ई० में इस आश्रम की शुरुआत हुई। सन् १९३० ई० में रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ की अंगीभूत ईकाई के रूप में इस आश्रम को मान्यता मिली।

सुदीर्घ २५ वर्षों तक स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराज ने एकान्तवास एवं कठोर आध्यात्मिक साधना तथा दीन-दुःखी मरीजों की सेवा करते हुए यहाँ निवास किया। श्री श्री माँ के सच्चे शिष्य के रूप में उन्होंने अपने चतुर्दिक लोगों के हृदय को जीत लिया था, क्योंकि लोगों ने उनके प्रेम में मातृत्व की भावना का स्पर्श पाया था। आश्रम की ओर आनेवाली एक सड़क का नामकरण उन्हीं के नाम पर हुआ है, जो उनके प्रति लोगों की महान श्रद्धा के प्रमाण स्वरूप है। रांची में रहते हुए उन्होंने डुगरी स्थित टी० बी० सेनिटोरियम की स्थापना में भी एक मुख्य भूमिका निभायी थी।

पुस्तकालय :

स्वामीजी के शब्दों में "शिक्षा मानव के अन्दर निहित पूर्णत्व की अभिव्यक्ति है।" इस उद्देश्य की प्राप्ति

हेतु जन साधारण की सेवा में सन् १९२७ ई० में आश्रम के द्वारा एक पुस्तकालय खोला गया। सन् १९६९ में एक पाठ्य पुस्तक विभाग भी अलग से खोलकर पुस्तकालय का विस्तार किया गया। अभी इसमें १८०० पुस्तकें, १४० पत्रिकाएँ (११ दैनिक-पत्र) उपलब्ध हैं जो विविध विषयों जैसे धर्म, मनोविज्ञान, विज्ञान, भाषा, इतिहास, भूगोल, समाज विज्ञान, उपन्यास आदि से संबंधित हैं। पुस्तकालय ने इतनी प्रसिद्धि पा ली है कि इसके ८८० सदस्य बन चुके हैं। सदस्यों की संख्या की अप्रत्याशित वृद्धि को देखते हुए १२.५ लाख रुपये की लागत पर आश्रम के सामने एक वृहत् पुस्तकालय एवं श्रोता-कक्ष के निर्माण की योजना बनायी गयी है। प्रस्तावित तीन मंजिल भवन की प्रथम मंजिल का निर्माण कार्य पूरा कर लिया गया है। श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज (महाध्यक्ष,रामकृष्ण मठ एवं मिशन) ने २० फरवरी १९८६ ई० को नये भवन का उद्घाटन किया। उन्होंने ही इस भवन की नींव २४ जनवरी १९८४ में डाली थी, जब वे सहाध्यक्ष थे। भारत सरकार (आदिवासी एवं अनुसूचित जनजाति विभाग) नियमित सहायता प्रदान करती है और नये भवन के लिए १.८९ लाख रुपये आबंटित किये हैं। बाकी राशि उदार लोगों के दान के रूप में जमा की जा रही है।

दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र :

श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "खाली पेट धर्म नहीं होता।" स्वामी विवेकानन्द ने इसी सूत्र को पकड़कर आगे चलकर घोषणा की थी, "भारत में सर्वप्रथम कार्य निम्न वर्गों के बीच शिक्षा एवं आध्यात्मिकता का प्रसार करना है। जब तक भोजन की व्यवस्था नहीं हो जाती, तबतक भूखे लोगों के द्वारा आध्यात्मिकता-ग्रहण असंभव है। अतएव, उन्हें उत्पादन के तौर-तरीकों एवं साधनों का ज्ञान देना प्रथम कार्य है।" स्वामी विवेकानन्द की यह इच्छा थी कि भारत में अनेक ऐसे केन्द्र खोले जाएँ जहाँ कृषि संबंधी शोध एवं प्रयोग हो और कृषकों को कृषि-उत्पादन में वृद्धि करने का प्रशिक्षण दिया जाय। एक पत्र में उन्होंने लिखा था, "हम सर्वप्रथम प्रत्येक राज्य की राजधानी में एक केन्द्र चाहते हैं, जहाँ से सम्पूर्ण भारत वर्ष शनैः-शनैः फैल जायेंगे।... धीरे-धीरे इन मुख्य केन्द्रों में कृषि, उद्योग आदि की शिक्षा दी जायगी साथ ही कार्यशाला भी खोला जायगा। इन सारे विचारों से ही रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची को सामान्य-जनता के लिए दिव्यायन नामक एक प्रशिक्षण केन्द्र खोलने की प्रेरणा मिली। दिव्यायन का अर्थ होता है 'ईश्वर की ओर ले जाने वाला मार्ग।' दिव्यायन के पीछे दोहरा उद्देश्य है, युवा कृषकों के मन में ईमानदारीपूर्वक परिश्रम करके अपना जीविकोपार्जन करने की भावना का विकास करना तथा उन्हें शाश्वत मूल्यों का बोध कराना। दिव्यायन की नींव २१ नवम्बर, १९६८ ई० में श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज ने डाली और १६ मार्च १९६९ ई० में स्वामी आदिनाथानन्दजी महाराज (सचिव, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर) ने इसका उद्घाटन किया। मात्र तीन महीनों के परीक्षण काल (Trial period) हेतु चलाये गये इस प्रायोगिक उद्योग (Experimental enterprize) ने प्रथम वर्ष के अन्त तक इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि इसका विस्तार करना पड़ा और इसने एक स्थायी कार्य का रूप ले लिया। प्रारम्भ में केवल २ एकड़ जमीन पर एकमात्र भवन के साथ शुरू की गयी इस संस्था ने अब एक वृहत् प्रशिक्षण केन्द्र का रूप धारण कर लिया है। इसमें अभी प्रशिक्षणार्थियों के रहने के लिए एक तीन मंजिला भवन, बीज खाद, एवं पक्षी-उत्पादक भंडार गृह, शिक्षण-कक्ष, भवन, आधुनिक मशीनों एवं औजारों से युक्त एक कारखाना, ६००० पक्षियों वाला एक पक्षी-उत्पादन गृह, ४५ गौओं की एक गोशाला, भ्रम्यमान चल चित्र इकाई (16 m. m. film projectors, slide projectors, overhead projector, slide and films VCR, T. V.) सहित ९ एकड़ से अधिक भूमि पर अवस्थित इस संस्था के पास ३५ किलोमीटर दूर गेतालसुद एवं महेशपुर नामक गाँव में करीब ३५ एकड़ खेत

...हैं जहाँ फसल-उत्पादन, बीज-उत्पादन (seed multi-plication), शोध, सामाजिक वन-रोपन आदि कार्यों का अभ्यास एवं प्रदर्शन कराया जाता है।

६ महीने के प्रशिक्षण कोर्स के अन्तर्गत कृषि के आधुनिक तरीकों, फार्म मशीनरी, बागवानी, सब्जी उत्पादन, पक्षी-पालन, दुग्ध-उत्पादन, ग्रामीण मित-व्ययिता के साथ ही, समाजविज्ञान एवं भारतीय सभ्यता-संस्कृति आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। समय-समय पर कई अल्पावधि कोर्स एवं रिफ्रेसर कोर्स भी चलाये जाते हैं। ये सभी कोर्स पूर्णतः निःशुल्क हैं, साथ ही प्रशिक्षणार्थियों के ठहरने एवं भोजनादि की भी व्यवस्था है। ग्रामीणों के लिए उनके ही खेतों में अल्पावधि के लिए विशेष प्रशिक्षणों का भी आयोजन किया जाता हैं। ऐसे ३७७६ कृषकों को अभी तक प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

सभी प्रशिक्षणार्थियों को एक साथ मिलजुलकर काम करते हुए अनुशासन का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। धर्म, जाति एवं समुदाय आदि का बिना कोई भेदभाव किए सभी एक साथ खाते-पीते, रहते, और उपासना करते हैं। गाँव के भोले-भाले युवक शीघ्र ही जान जाते हैं कि वे सभी भेदभाव जो मानव को अलग करते हैं, कितने व्यर्थ एवं कृत्रिम हैं।

चूँकि प्रशिक्षण सामान्य स्तर के कृषकों के लिए है, अतएव इसके लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं की गयी है। १६ से ३० वर्ष की आयु वाले कोई भी कृषक जिनके पास थोड़ी सी जमीन है या जिन्हें अन्य लघु उद्योगों में अभिरुचि है, प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। प्रशिक्षण मुख्यतया दक्षता-अभिमुखी (Skill oriented) है। प्रशिक्षण की समाप्ति पर प्रशिक्षणार्थी गण अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं और वहाँ कृषिकार्य जारी रखते हैं। यहाँ भी आश्रम के उत्तरदायित्व का अन्त नहीं होता। आश्रम के प्रतिनिधिगण बीच बीच में उनसे मिलकर उन्हें प्रोत्साहित करते हैं, उनकी समस्याओं को दूर करते हैं एवं नए-नए तकनीकी तरीकों से उन्हें अवगत कराते हैं। उन्हें बैंकों एवं सरकारी योजनाओं के माध्यम से आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है।

स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में लिखा था, "संसार का सम्पूर्ण वैभव भी एक छोटे से गाँव की सहायता नहीं कर सकता यदि लोगों को आत्मनिर्भरशील न बनाया जाय।" अतएव, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ ग्रामीणों को आत्मनिर्भरशील बनाने की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। राँची एवं निकटवर्ती इलाकों में 'विवेकानन्द सेवासंघ' के माध्यम से नेतृत्व की भावना का विकास कराया जाता है। रात्रि-पाठशाला (२००० बालकों के लिए), चर्चा-मंडल, पाठ-चक्र, ग्रामीण पुस्तकालय, आदि के रूप में ऐसे ५० से अधिक केन्द्र चल रहे हैं। ये सभी केन्द्र भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थियों द्वारा आश्रम की सहायता से चलाये जाते हैं। कुछ केन्द्रों के भारतीय शिक्षा अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के द्वारा CAPE (Comprehensive access to Primary education) कार्यक्रम के अन्तर्गत मान्यता मिल रही है। श्रीरामकृष्ण सेवा केन्द्र नामक एक अलग पंजीकृत संस्था भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थियों की देख-रेख करती है और इसने अपनी कई क्षेत्र-इकाइयाँ स्थापित कर ली हैं।

समय-समय पर मूल्यांकन भी किया जाता है ताकि प्रशिक्षण-कार्यक्रम की सफलता का पता लग सके तथा इसे और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सके। भारत सरकार (समाज कल्याण विभाग) के एक मूल्यांकन विवरण (Evaluation study) के अनुसार प्रथम तीन वर्षों के ३२ प्रशिक्षणार्थियों ने अपनी भूमि-उत्पादन में काफी वृद्धि कर ली है, जिसमें २९% ने ३०% से ३००% तक का उत्पादन बढ़ा लिया है। पिछड़े लोगों के लिए यह एक बहुत ही प्रोत्साहनपूर्ण उपलब्धि है। इस निर्धन इलाके के लघु कृषक अपनी बंजर भूमि के प्रति लगभग उदासीन ही हैं। यह स्पष्ट देखा जाता है कि भूतपूर्व प्रशिक्षार्थीगण द्वि-फसली ज्ञान (Knowledge

of double cropping), खाद का प्रयोग, सिचाई के साधन के तरीकों, फसल के नये प्रकार, आदि के कारण कृषि कार्य में काफी अभिरुचि ले रहे हैं जिससे वहाँ एक नयी जागृति आ गयी है। अन्य कृषकों ने प्रशिक्षणार्थियों के निर्देशानुसार अपना कृषि-कार्य करना शुरू कर दिया हैं। प्रशिक्षण के कारण दलित एवं पीड़ित लोगों के मध्य से नये विचारों का विरोध प्रबल गति से हटता जा रहा है। आर्थिक स्तर पर परम्परागत किसानों द्वारा वैज्ञानिक तकनीकियों को स्वीकृति एक महत्वपूर्ण परिवर्त्तन है। युवकों के अन्दर समाज सेवा की भावना के विकास हेतु समान महत्व दिया जाता है। कुछ भूतपूर्व-प्रशिक्षणार्थी-गण अपने गाँवों में रात्रि-पाठशाला चला रहे हैं, अन्य एक साथ मिलकर एक स्वतंत्र संस्था के माध्यम से प्रशिक्षण-कार्यक्रम के विस्तार एवं उपयोग के लिए कार्य कर रहे है।"

फोर्ड फाउण्डेशन दिव्यायन के मूल्यांकन का विवरण प्रस्तुत करता है। इस विवरण की अनुशंसाओं के आधार पर भूतपूर्व-प्रशिक्षणार्थियों के वार्षिक सम्मेलन के माध्यम से कार्यों में तीव्रता लायी जाती है। वार्षिक सम्मेलन में भूतपूर्व-प्रशिक्षणार्थियों एवं सरकारी अफसर, बैंक कर्मचारी तथा तननिकी विशेषज्ञों के बीच सीधी बातचीत होती है। इसके अलावा भूतपूर्व-प्रशिक्षणार्थियों का मासिक सम्मेलन प्रत्येक महीने की पहली तारीख को होता है जिसमें वे अपने द्वारा किये गये ग्रामीण विकास कार्यों का विवरण प्रस्तुत करते हैं और अपनी समस्याओं को भी रखते हैं। दिव्यायन के द्वारा 'दिव्यायन समाचार' नामक एक हिन्दी मासिक-पत्र भी प्रकाशित एवं वितरित किया जाता है। वार्षिक किसान मेलों का आयोजन किया जाता है जिसमें कृषकों को आधुनिक तकनीकियों से अवगत कराया जाता हैं। साथ ही तकनीकी विशेषज्ञ भी खेतों में जाकर कृषकों से भेंट करते है। भूतपूर्व-प्रशिक्षणार्थी क्लब द्वारा खाद्य-आपूर्ति केन्द्रों का संचालन एवं मार्केटिंग सुविधाएं भी प्रदान की जाती है। मधुमक्खी पालन एक महत्वपूर्ण सहायक पेशा बनता जा रहा है, खासकर छोटानागपुर के किसानों के लिए। मध्यम वर्ग के द्वारा भूतपूर्व-प्रशिक्षणार्थियों के शोषण को रोकने के लिए उनके द्वारा उत्पादित मधु की बिक्री दिव्यायन के बिक्री केन्द्रों से ही होती है। पिछले वर्ष करीब २ टन मधु की बिक्री हुई।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा चलाये गये 'प्रयोगशाला से खेत तक' कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न गाँवों के करीब ४८० लघु किसानों को चुना गया है ताकि उन्हें प्रदर्शनी के माध्यम से समुचित एवं सस्ती तकनीकियों के संबंध में निर्देश दिया जाय। साथ ही आवश्यक वस्तुओं की भी आपूर्ति की जायगी। फोर्ड फाउण्डेशन की सहायता प्राप्त 'सामाजिक वन योजना' के अन्तर्गत करीब ८०,००० अर्जुन-वृक्ष आश्रम के तथा कृषकों के खेतों में लगाये गये हैं। इसके अलावे 'प्रत्येक बच्चे के लिए एक वृक्ष' कार्यक्रम के अन्तर्गत राँची जिले के करीब ३० गाँवों में १०,००० से अधिक फलों के वृक्ष रोपे गये हैं।

दिव्यायन की उपलब्धियों से प्रभावित होकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने १९७७ ई० में कृषि विज्ञान केन्द्र के रूप में इसकी मान्यता प्रदान कर दी जिससे दिव्यायन की गतिविधियों में एक स्थायित्व आ गया है क्योंकि उक्त परिषद् के द्वारा स्थायी सहायता दी जाने लगी। सन् १९६९ से भारत सरकार (गृह विभाग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति) भी नियमित सहायता दे रही है। (unitarian service committee) कनाडा के द्वारा प्रदत्त सहायता के कारण ही यह योजना शुरू-शुरू में अपना अस्तित्व कायम रख सकी। Swiss Development Corporation, फोर्ड फॉउण्डेशन एवं उदार लोगों के मुक्त हस्तदान के फलस्वरूप कार्यक्रमों में वृद्धि एवं तीव्रता लायी जाती है।

भारत जैसे विशाल देश की असीम आवश्यकता की तुलना में दिव्यायन जैसी संस्थाओं द्वारा गरीबों के उद्धार के लिए की जा रही सेवा यद्यपि बहुत ही अल्प है फिर

भी इन सेवाओं के द्वारा जीव के रूप में शिव की आराधना का प्रयोग एवं स्वामी विवेकानन्द के आदर्श 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' को व्यवहार में उतारने की सफल कोशिश की जा रही है।

दिव्यायन की उपलब्धियाँ : एक झलक

(१९६९-८५)

१. ६ सप्ताह के कोर्स में प्रशिक्षित कृषकों की संख्या — १७७६
२. विशेष प्रशिक्षण कोर्स में प्रशिक्षित कृषकों की संख्या — ११११
३. प्रांगण के बाहरी कार्यक्रमों की संख्या — २८६
४. प्रांगण के बाहर प्रशिक्षित कृषकों की संख्या — ११८७७
५. प्रशिक्षणार्थियों में पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन जातियों की संख्या — ७५%
६. गाँवों में चित्र-प्रदर्शनी एवं कार्यक्रमों की संख्या — १७६
७. भ्रमणमान चलचित्रों के कार्यक्रमों की संख्या — १५६९
८. चलचित्र प्रदर्शन — १८२८
९. ग्रामीण बैठकों की संख्या — ३७६
१०. गाँवों की संख्या जहाँ भ्रमणमान चलचित्र प्रदर्शन हुआ — ८३२
११. भूतपूर्व प्रशिक्षणार्थियों द्वारा चलाये गये रात्रि पाठशालाओं की संख्या — ५०
१२. रात्रि पाठशालाओं में बच्चों की संख्या — २०००
१३. अल्पावधि कोर्स (एक सप्ताह) में प्रशिक्षित कृषकों की संख्या — १३६
१४. एक दिवसीय कार्यक्रम के अन्तर्गत मेलों में प्रशिक्षित कृषकों की संख्या — १७३२
१५. युवा कार्यकर्ताओं के मासिक सम्मेलन की संख्या — ३२

Love is the gate of all the secrets of the universe.

—Swami Vivekananda

With Best Compliments From:

dealer :

UNIVERSAL AUTO AGENCIES

Indian Oil Corporation Ltd
DUMKA-814101
BIHAR

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

आदर्श : 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'— 'अपनी मुक्ति के लिए और जगत् के कल्याण के लिए।'

ध्येय : श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन और संदेश द्वारा अभिव्यक्त सनातन धर्म।

मंत्र : 'त्याग और सेवा' 'जितने मत उतने पथ', 'जीव ही शिव'।

उपाय : कर्म, उपासना और विचार—

गतिविधियाँ : उपासना, संन्यासी कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, धर्म-प्रचार, धर्म की पृष्ठभूमि के साथ सामान्य और आभियांत्रिक शिक्षा, औषधालय और अस्पताल, अकाल और अन्य सेवा कार्य, ग्राम-सेवा, विभिन्न सांस्कृतिक कार्य।

अंगीभूत शाखाएँ :

मठ—४७
मिशन—५२
संयुक्त मठ एवं मिशन—२२

कुल—१२१

भारत एवं विदेशों में संघ की शाखाएँ :

आन्ध्र प्रदेश	३
अरुणाचल प्रदेश	३
आसाम	३
बिहार	७
गुजरात	१
केरल	९
मध्य प्रदेश	१
महाराष्ट्र	३
मेघालय	२
नई दिल्ली	१
उड़ीसा	३
पंजाब एवं हरियाणा	१
राजस्थान	१
तामिलनाडु	११
उत्तर प्रदेश	११
पश्चिम बंगाल	२९
कुल	९०

अर्जेन्टीना	१
बंगलादेश	१०
फिजी द्वीप	१
फ्रांस	१
जापान	१
मारीशस	१
सिंगापुर	१
श्री लंका	१
स्विटजरलैंड	१
ब्रिटेन	१
अमेरिका	१२
कुल	३१

रामकृष्ण मठ और मिशन द्वारा अनुष्ठित प्रमुख कार्यों की तालिका (१९८३-८४)—

(क) आपात-सेवा कार्य (Relief work)

१. दुर्भिक्ष पीड़ित सेवा कार्य
२. बाढ़-पीड़ित सेवा कार्य
३. तूफान पीड़ित सेवा कार्य
४. कुम्भ मेला एवं सागर मेला में सामयिक सेवा कार्य
५. दंगा-पीड़ित-सेवा कार्य
६. पुनर्वसन का कार्य

प्राथमिक सेवाकार्य में खर्च—४१,९४'०३१.६७ रुपये
पुनर्वास कार्य में खर्च—१६,०८,६१८.०७ रुपये

(ख) चिकित्सा सेवा कार्य :

१. रुग्णालय—(Indoor Hospitals) १३ (१७८३ शय्याएँ हैं एवं ५४६२८ मरीजों की चिकित्सा हुई)
२. औषधालय (Outdoor Dispensaries)—७९ (४४५२३९६ मरीजों की चिकित्सा हुई)
३. चल-औषधालय (Mobile Dispensaries)—१४ (४३८१४७ मरीजों की चिकित्सा हुई)
४, सेनिटोरियम (Sanitorium)—१
५. टी० बी० क्लीनिक १
६. मातृ एवं शिशु सेवा केन्द्र १
७. व्यावसायिक (Vocational) प्रशिक्षण केन्द्र १
८. स्नातकोत्तर कोर्स १
९. पशुचिकित्सालय १

(ग) सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक :

१. पुस्तकालय एवं मुफ्त पठन कक्ष
२. व्याख्यान एवं सेमिनार
३. प्रदर्शनी एवं चलचित्र, प्रदर्शन
४. पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तिका, बुलेटिन आदि का प्रकाशन।

(घ) शैक्षणिक कार्य :

१. स्नातक महाविद्यालय	५
२. बी० एड० कालेज	३
३. बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय	१
४. स्नातकोत्तर बेसिक प्रशिक्षण महा विद्यालय	१
५. जुनियर प्राथमिक प्रशिक्षण केन्द्र	४
६. शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय	१
७. कृषि विद्यालय	४
८. पोलिटेकनिक	४
९. जुनियर अभियांत्रिकी एवं औद्योगिक विद्यालय	९
१०. छात्रावास	९२
११. हायर सेकेन्डरी एवं उच्च विद्यालय	४२
१२. सिनियर बेसिक एवं एम० ई० स्कूल	२५
१३. जूनियर बेसिक एवं प्राथमिक विद्यालय	४४
१४. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र एवं सार्वजनिक केन्द्र	२२
१५. चिकित्सा विज्ञान केन्द्र	१
१६. नर्स एवं धाई (मिड वाइफ) के लिए प्रशिक्षण केन्द्र	३
१७. भाषा विद्यालय	२
१८. अन्ध शिक्षण संस्थान	१
१९ वाणिज्य संस्थान	१
२०. ग्रामीण मजदूर प्रशिक्षण केन्द्र	१
२१. कृषि कार्य प्रशिक्षण केन्द्र	१
२२. ग्रामीण पुस्तकालयाध्यक्ष प्रशिक्षण केन्द्र	१

लाभान्वित व्यक्तियों की कुल संख्या

लड़के	८७१६८
लड़कियां	२५०७८

संघ में प्रवेश पाने के नियम : कोई भी नवयुवक, जो अविवाहित रहकर आध्यात्मिक जीवन जीता हुआ अपने आपको सेवा-कार्य में लगाना चाहता है; रामकृष्ण मिशन का अन्तरंग सदस्य बन सकता है। मैट्रिक तक की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता, आयु २५ वर्ष से कम (स्नातकों के लिए सीमा ३० वर्ष) एवं अच्छा स्वास्थ्य भी इसमें प्रवेश के लिए आवश्यक है। संन्यास दीक्षा के पहले उसे कम से कम नौ वर्ष तक पूजा-अध्ययन, सेवा-कार्य आदि में बिताने होंगे।

यह मठ साधन, भजन एवं ज्ञान चर्चा का प्रधान केन्द्र होगा—यही मेरी इच्छा है। यहां से जिस शक्ति की उत्पत्ति होगी वह पृथ्वी भर में फैल जायगी और वह मनुष्य के जीवन की गति को परिवर्तित कर देगी। ज्ञान भक्ति, योग, कर्म के समन्वय-स्वरूप मानव-हितकर उच्च आदर्श यहाँ से प्रसूत होंगे। इस मठ के पुरुषों के इशारे पर एक समय दिग्-दिगन्त में प्राण का संचार होगा। समय पर यथार्थ धर्म के सब प्रेमी यहाँ आकर एकत्रित होंगे—मन में इसी प्रकार की कितनी ही कल्पनाएँ उठ रही हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

❀

ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म—इन चारों की समष्टि से चरित्र गढ़ना ही इस मठ का प्रधान उद्देश्य है। इसके लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वे ही इस मठ की साधनाएं समझी जायँगी।...............

और यह भी एक बात याद रखने की आवश्यकता है कि जो अपनी मुक्ति की चेष्टा करते हैं, उनकी अपेक्षा वे पुरुष महान हैं जो दूसरों के कल्याण की चेष्टा करते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

डाक पंजीयित संख्या सी० एच० पी० १४—८२ अंक —[illegible]

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य एवं अन्य आध्यात्मिक प्रकाशन

जीवनी

श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग स्वामी सारदानन्द
भाग १ १६.००
भाग २ २२.००
भाग ३ १७.००

श्रीरामकृष्णलीलामृत भाग १ ८.५०
भाग २ ८.५०

श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश —स्वामी अपूर्वानन्द ३.००

श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ— „ १०.००

माँ सारदा — „ १७.००

श्रीसारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश ३.००

श्रीरामकृष्णभक्तमालिका — स्वामी गम्भीरानन्द
भाग १ २८.००
भाग २ १०.००

विवेकानन्द-चरित सत्येन्द्रनाथ मजूमदार १५.००

स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवन तथा उपदेश —स्वामी अपूर्वानन्द ३.००

स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) ६.००

शिवानन्द-स्मृतिसंग्रह भाग १ ७.५०
भाग २ ८.५०
भाग ३ १०.००

स्वामी विज्ञानानन्द ३.००

साधु नागमहाशय ६.५०

आचार्य शंकर ९.५०

धर्म-दर्शन-अध्यात्म

श्री रामकृष्णवचनामृत— श्री 'म'
अनुवादक : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
भाग १ २५.००
भाग २ २०.००
भाग ३ २५.००

अमृतवाणी (श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों का वृहत संग्रह) [illegible]

भगवान रामकृष्ण : धर्म तथा संघ [illegible]

ध्यान, धर्म तथा साधना —स्वामी ब्रह्मानन्द १०.००

आनन्दधाम की ओर— स्वामी शिवानन्द [illegible]

अध्यात्ममार्गप्रदीप स्वामी तुरीयानन्द [illegible]

गीतातत्त्व— स्वामी सारदानन्द [illegible]

भारत में शक्तिपूजा— „ [illegible]

वेदान्त : सिद्धान्त और व्यवहार —„ [illegible]

परमार्थ-प्रसंग— स्वामी विरजानन्द [illegible]

धर्मजीवन तथा साधना— स्वामी यतीश्वरानन्द [illegible]

श्रीरामकृष्णपूजापद्धति [illegible]

स्तवनांजलि (मूलमात्रम्) [illegible]

उपदेशमाला (पॉकेट साईज)

श्री रामचन्द्र की वाणी [illegible]
भगवान श्रीकृष्ण की वाणी [illegible]
भगवान बुद्ध की वाणी [illegible]
श्री शंकराचार्य की वाणी [illegible]
गुरुनानक की वाणी [illegible]
ईसामसीह की वाणी [illegible]
मुहम्मद पैगम्बर की वाणी [illegible]
श्रीरामकृष्णदेव की वाणी [illegible]
श्रीसारदादेवी की वाणी [illegible]
श्रीरामकृष्ण-उपदेश [illegible]

विविध

रामकृष्ण संघ : आदर्श और इतिहास— (पॉकेट साइज) [illegible]

मातृभूमि के प्रति हमारा कर्त्तव्य —स्वामी वीरेश्वरानन्द [illegible]

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग)

धनतोली, नागपुर—४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा [illegible] प्रेस [illegible] टोला, पटना—४ में मुद्रित।